घुमरिया

गोलाई में घूमने की क्रिया। इसे 'चक्कर', 'फिरकनी' या 'चक्र' भी कहते हैं। शास्त्रीय परिभाषा में इसे 'भ्रमरी' कहा जाता है जिसके अनेक भेद हैं, जैसे—उत्प्लवन, एक पाद-कुंचित, चक्र-विपरीत, अर्द्ध, अर्द्ध-विपरीत तथा चक्र इत्यादि।

चंड

तांडव का एक भेद। इसमें वीर तथा रौद्र रस मिश्रित रूप में प्रयुक्त होते हैं। इसमें कर्ण एवं अंगहारों का विलम्बित लय में प्रयोग होता है।

चंक्रमण या चक्रमण

लगातार चक्कर लगाने की क्रिया। इस क्रिया को तभी प्रस्तुत किया जाता है। जब अनेक 'धा' वाली चक्रदार तिहाइयों को प्रस्तुत किया जाता है।

चक्र

भ्रमरी का एक प्रकार। हाथों को त्रिपताका मुद्रा में स्थित करके चारों ओर घूमा जाता है। संयुक्त हस्त की मुद्रा में जब हथेलियों को समकोण या 'क्रास' की स्थिति में रखा जाता है तो उसे भी 'चक्र' कहते हैं।

चक्रदार

जब किसी बोल समूह को तीनबार प्रस्तुत किया जाए तो उसे 'चक्रदार' कहते हैं।

चक्र भ्रमरी

चक्र के समान घूमना।

चतुरंग

यह उत्तर भारतीय संगीत की एक गायन शैली है। इसमें ख़याल, तराना और त्रिवट (कुछ संगीतज्ञों के अनुसार पद, सरगम, तराना और त्रिवट) ऐसे चार अंग सम्मिलित रहते हैं। लेकिन गायन ख़याल की तरह प्रस्तुत किया जाता है और तानों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है।

चतुर्दण्डि

आलाप, गीत, प्रबन्ध और ठाय का समन्वित रूप।

चतुर्विध अभिनय

आहार्य अभिनय, आंगिक अभिनय, सात्विक अभिनय और वाचिक अभिनय इन चारों प्रकार के अभिनय को 'चतुर्विध' अभिनय कहते हैं।

चतुरस्र

नाट्य मण्डल या 'थियेटर'। जो छियानब्बे वर्ग फीट का होता है; एक नृत्त हस्त; एक वैष्णव स्थानक।

चपक

तबला और पखावज की परन बजाते समय तंतुवाद्यों पर बाँये या दाँये हाथ से चाँटी अर्थात् उंगलियों के आघात द्वारा जब बोल बजाये जाते हैं तो उस वादन क्रिया को 'चपक' या 'चपक के बोल' कहते हैं। चपक के बोल बजाते समय कोण, जवा अथवा मिज़राब सम्बन्धी आघात बन्द रखे जाते हैं।

चरण

गीत का तीसरा भाग।

चल ठाठ या थाट

जिस वाद्य में परदों को या सारिकाओं को खिसकाकर स्वरों को ऊँचा-नीचा किया जाता है उसे 'चल ठाठ' वाला वाद्य कहते हैं।

चलन

एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए चलने की क्रिया को 'चलन' या 'चाल' कहते हैं।

चलनचारी

संचरण की क्रिया।

चल स्वर

वे स्वर जो अपने स्थान से ऊँचे या नीचे होते हैं अर्थात् जिन्हें कोमल या तीव्र बनाया जा सकता हो।

चारण

किंकिणी वाद्यमंजु, विकट नृत्य करनेवालों से युक्त तथा समस्त रागों में कुशल व्यक्ति 'चारण' कहलाता है।

चारण (गीत)

गीत में पल्लवी और अनुपल्लवी के पश्चात् वाला तीसरा भाग।

चारी

निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार चलने की चेष्टा या क्रिया को 'चारी' कहते हैं। इसके दो भेद बताये गए हैं—भूमिचारी और आकाशचारी। भूमिचारी में पैर पृथ्वी से लगे रहते हैं जबकि आकाशचारी में उन्हें ऊपर आकाश की ओर उछाला जाता है। भरत के अनुसार दोनों चारियों के सोलह-सोलह भेद होते हैं। भूमिचारियों को करणों के आश्रित होकर तथा आकाशचारियों को ललित अंग-क्रिया से युक्त रूप में करना चाहिए। मार्कण्डेय ने 'नृत्तसूत्रम्' में 'चारी' के दो भेद बताये हैं—चारी (सुकुमार अंग चेष्टा से युक्त) व महाचारी (उद्धत अंग चेष्टा से युक्त)।

चालन

चारी, जिसके अन्तर्गत टहलने की भाँति पैरों को आगे बढ़ाया जाता है। भयानक रस प्रदर्शित करने वाले नेत्रों की स्थिति को भी 'चालन' कहा गया है।

चिकारा

सितार वाद्य में चिकारी के तार से पहले वाला तार 'चिकारा' कहलाता है।

चिकारी

वीणा या सितार जैसे तार वाद्यों में अन्तिम तार सप्तकीय तार को उत्तर भारतीय संगीत में 'चिकारी' या 'चिकारी का तार' कहते हैं।

चिट्ट स्वर

दाक्षिणात्य कृति में प्रयुक्त स्वर-समूह।

चिन्दु

तमिल भाषा में रची गई शृंगार रस प्रधान ऐसी रचना जो साधारण जन को प्रिय लगती है।

चिन्नमेलम्

कर्नाटिक संगीत में छोटी नृत्य सभा को 'चिन्नमेलम्' कहते हैं।

चूर्णिक

ईश्वर, राजा, कला अथवा विद्वान की स्तुति के लिए प्रयुक्त श्लोक या वचन, जिसे मैसूर सम्प्रदाय में आरभि राग में नाट्य के प्रारम्भ में विशेष ढंग से प्रस्तुत किया जाता है; इसे 'चूर्ण पद' भी कहते हैं।

चूर्ण पद

छन्दोहीन गद्य-गीत। दे० चूर्णिक।

चैलांचल

वस्त्र का अंचल।

चैती

उत्तर भारत के पूर्वी अंचल की एक गायन शैली। इसकी भाषा विरह वर्णन से युक्त रहती है। इसे चैत (चैत्र) मास का गीत समझा जाता है।

छंद

वर्ण या मात्रा के अनुसार निर्मित पद 'छंद' कहलाता है। वर्णाक्षरों के अनुसार पद्य-रचना को 'वार्णिक छंद' और केवल मात्राओं की गणना के आधार पर पद्य-रचना को 'मात्रिक छंद' कहते हैं। इनके अनेक भेद हैं; शब्दों की गति का संयम ही 'छंद' कहलाता है; बंगाल में ताल को 'छंद' कहते हैं।

छल

'वीथी' का एक भेद। जहां कोई पात्र बाहर से प्रिय लगने वाले, किन्तु वस्तुतः अप्रिय वाक्यों के द्वारा दूसरों का विलोभन करके उनके साथ छल करे, उसे 'छल' कहते हैं।

छाया नृत्य

रोशनी के विपरीत पर्दे पर छाया द्वारा दिखाया जानेवाला नृत्य 'छाया नृत्य' (शंडो प्ले) कहलाता है।

छायालग

वह राग जिस पर अन्य रागों की छाया हो, मध्यकालीन रागों का एक प्रकार।

छिन्न

तोड़ी के संचालन का एक प्रकार; एक करण; कमर-गति का एक भेद।

छुरित

लास्य नृत्य का भेद जिसमें नाना भावों का प्रदर्शन करते हुए नायक व नायिका परस्पर आलिंगन, चुम्बन करते हुए नृत्य करते हैं।

जक्किनी

सादिर नाच में प्रयुक्त एक नृत्य रचना। इसमें स्वर, साहित्य और जाति को विभिन्न लयों में प्रस्तुत किया जाता है जो यवन काल में प्रचलित हुए। 'एलेला लेला' जैसी शब्दावली का प्रयोग इसमें होता है। तंजावूर के महाराज सर्फ़ोजी के दरबार में जक्किनी की संगीत रचना को तेलगू और मराठी में प्रस्तुत किया जाता था। आन्ध्र प्रवेश, कर्नाटक और तमिलनाडु में भी यह काफ़ी लोकप्रिय रही।

जर्जर

पूर्व रंग, जिसमें इन्द्र के आयुध 'जर्जर' की पूजा की जाती है। इसे समस्त आसुरी शक्तियों और आपदाओं से रक्षा करने वाला कवच माना जाता है। राजा की विजय, गऊओं व ब्राह्मणों की सुख-समृद्धि तथा नाट्य की सफलता के लिए 'जर्जर' का विधान प्राचीन काल से चला आ रहा है।

जति स्वर

स्वर जिताइ की तरह की संगीत रचना। जति स्वर के तीन भाग होते हैं—पल्लवी, अनुपल्लवी और चरण।

जनक

मेल राग; मेल कर्ता; थाठ या थाट।

जनक राग

कर्नाटिक संगीत में प्रारम्भिक जनक रागों के ७२ प्रकार बताए गए हैं जिन्हें मेलकर्ता भी कहते हैं।

जन्य राग

कर्नाटिक संगीत के ७२ जनक राग अथवा मेलकर्ताओं से भिन्न-भिन्न 'जन्य राग' उत्पन्न होते हैं। कुछ प्रमुख व मधुर रागों के नाम हैं—शंकराभरण, हरिकाम्बोधि, कल्याणी, खरहरप्रिया, मायामालवगौल, भैरवी और हनुमत्तोड़ि। इन जन्य रागों से अन्य उपरागों की उत्पत्ति भी होती है, जैसे—शंकराभरण राग से ३२ प्रकार के राग उत्पन्न हुए हैं यथा—आरभि, अड़ाना, बिल्हरी, नीलाम्बरी, बिहाग, बेगड़, दरबारी, हंसध्वनि, शुद्धशावेरी, देवगांधारी, केदार, कुरंजी, कन्नड़ और नवरोध।

ज़मज़मा

वाद्य में स्वर को आन्दोलित करने की क्रिया 'जमज़मा' कहलाती है।

जमनका (यवनिका)

रंगमंच का वह पर्दा जिसकी ओट में पात्र रहते हैं, 'जमनका' कहलाता है। नर्त्तकी के लम्बे घूँघट जिसे प्रारम्भ में लगाकर वह रंगमंच पर प्रवेश करती है या बैठती है को भी 'जमनिका' या 'जवनिका' कहते हैं।

ज़रब

उत्तर भारत में वाद्य संगीत के अन्तर्गत आघात युक्त स्वरों की वादन क्रिया या बोलों के वज़न को 'जरब' कहते हैं।

जवारी

तार वाद्यों की घुरच, घोड़ी या ब्रिज के ऊपर स्थापित तारों के नीचे एक धागे का टुकड़ा ध्वनि के प्रकम्पन या गुंजन को बढ़ाने के लिए लगाया जाता है। इसी को 'जवारी', 'ज्वारी', 'सूत' या 'जीवा' भी कहते हैं।

जाति

१. ध्रुपद तथा प्रबन्धगान से पूर्व का एक प्राचीन गान प्रकार। जाति को दस लक्षणों से युक्त विशिष्ट स्वर-सन्निवेश कहा गया है और इसे प्राचीन राग के रूप में समझा जा सकता है।

२. तालाक्षरों को दिया जाने वाला नाम; ताल के विभागों में जब मात्राओं की संख्या बदल जाती है तो ताल दूसरी जाति की हो जाती है। जातियाँ पाँच प्रकार की होती हैं—१. त्र्यश्र, २. चतुरस्र, ३. खंड, ४, मिश्र, ५. संकीर्ण। ताल के पहले विभाग में यदि तीन मात्राएँ हों तो उसे 'त्र्यश्र जाति की ताल कहते हैं। चार मात्राएँ हों तो उसे 'चतुरस्र जाति' की, पाँच मात्राएँ हों तो उसे 'खंड जाति' की, सात मात्राएँ हों तो उसे 'मिश्र जाति' की और नौ मात्राएँ हों तो उसे 'संकीर्ण जाति' की ताल कहते हैं।

जाति साधारण

विभिन्न जातियों की सामान्य स्वरावली को 'जाति साधारण' कहते हैं।

जातीय हस्त

'अभिनय दर्पण' में विभिन्न जातियों के अन्तर्गत राक्षस, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हस्त इत्यादि बताते हुए कहा है कि अठारह जातियों के कर्मानुसार तथा देश-भेद से विभिन्न हस्तों का प्रयोग किया जाता है। इन्हीं हस्त मुद्राओं को 'जातीय हस्त' कहते हैं।

जावलि

१. शृंगार रस प्रधान छोटे प्रबन्ध को 'जावलि' कहते हैं। इसे मध्य लय और द्रुत लय में प्रस्तुत किया जाता है।

२. कर्नाटक सङ्गीत का एक प्रकार जो उत्तर भारत के ठुमरी गायन के समान उपशास्त्रीय सङ्गीत के अन्तर्गत गिना जाता है।

जिगर

गायन-वादन का सहज गुण।

जीव जन्तु हस्त

विभिन्न जीव जन्तुओं को प्रस्तुत करने वाले हाथ या हस्त मुद्राएँ।

जीव स्वर

राग का सूचक स्वर। इसे 'अंश स्वर' भी कहा जा सकता है।

जुगल बन्दी

दो विभिन्न कलाकारों द्वारा एक ही समय किया गया प्रदर्शन 'जुगलबंदी' कहलाता है। अंग्रेजी में इसे 'ड्यूएट' कहते हैं।

जोड़

तंतुवाद्यों में आलाप को जब तालबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो इस क्रिया को 'जोड़' कहते हैं। तारवाद्यों में एकसी मोटाई और धातु वाले तारों को जब एक ही स्वर (प्रायः मंद्र सप्तक के षड्ज या आधार स्वर) में मिलाया जाता है तो इन्हें 'जोड़' या 'जोड़ी के तार' कहा जाता है। इनकी स्थिति प्रायः बाज अर्थात् 'नायकी के तार' के निकट होती है। जोड़ के तार पर की जाने वाली वादन क्रिया को 'जोड़ का काम' कहते हैं।

झाला

तंत्री वाद्य पर मुख्य तार एवं चिकारी के तार पर द्रुत लय में की जाने वाली धारावत वादन क्रिया को 'झाला' कहते हैं।

टप्पा

उत्तर भारतीय संगीत की एक गायकी। इसमें शृंगार रस प्रधान पंजाबी भाषा का प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रयुक्त तानें वक्र गति से बहुत तैयारी के साथ की जाती हैं।

टीप

तार सप्तक का षड्ज। इसे उच्चतर प्रधान स्वर भी कहते हैं। उत्तर भारतीय संगीत में जब षड्ज या आधार स्वर को उसके द्विगुणित तारसप्तक में प्रयुक्त किया जाता है, तो उसे 'टीप का स्वर' कहते हैं। यह प्राचीन 'टीपा' शब्द का अपभ्रंश है।

टुकड़ा

सम से सम तक एक आवृत्तिवाले बोल-समूह को 'टुकड़ा' कहते हैं। इसमें सम तक आने के लिए छोटे-छोटे बोलों की दुहरी या तिहरी आवृत्ति की जाती है।

टैंगो

एक विदेशी नृत्य-पद्धति।

टेक

दुहराये जाने वाली काव्य-पंक्ति।

टोनिक

स्थाई स्वर; आरम्भक स्वर।

थाट (ठाठ)

थाट या ठाठ स्वरों की एक विशेष रचना होती है जिसमें सात स्वर क्रम पूर्वक प्रयुक्त होते हैं। कर्नाटिक संगीत में इसे 'मेल' और अंग्रेज़ी में 'स्केल' कहते हैं। 'कथक नृत्य' के आरम्भ में शरीर की विशेष मुद्रा भी 'थाट' कहलाती है।

ठाय

छोटे संचार को 'ठाय' कहते हैं जिसका संस्कृत नाम 'स्थाय' है। इससे राग के स्वरूप को प्रदर्शित किया जाता है।

ठुमरी

उत्तर भारत में प्रचलित एक संगीतमय काव्य-विधा, जिसमें नायिका की प्रकृति या स्थिति या वर्णन होता है। 'ठुमरी' की रचनायें प्रायः शृंगार प्रधान होती हैं जिनके आधार पर नर्तक नृत्य-प्रधान अभिनय द्वारा भाव-प्रदर्शन करते हैं।

ठेका

किसी ताल को खाली और भरी (ताली) के आधार पर मापने की क्रिया। ताल वाद्यों पर बजने वाले ताल-समूह के बोल।

ठोक झाला

वीणा जैसे ततवाद्यों में आलाप के सम्पूर्ण अंग को चिकारी के तार का प्रयोग करते हुए द्रुत लय में प्रस्तुत करना। वाद्य के बोल और स्वर मिलकर विशिष्ट लय का निर्माण करते हुए 'ठोकझाला' को उत्पन्न करते हैं।

डाँड

तार वाद्यों में जिस हिस्से पर वादन क्रिया की जाती है, उसे 'डाँड' कहते हैं। इसे 'दंड' भी कहा जाता है; वीणा दण्ड को 'प्रवाल' कहते हैं और उसके वक्र भाग को 'प्रसेव' कहते हैं। 'दण्ड' के ऊपर परदे या 'सारिकाएँ' लगाई जाती हैं। अँग्रेज़ी में इसे 'फिंगर बोर्ड' कहते हैं।

डाट

ऊंचे स्वर से नीचे स्वर तक बीच की श्रुति-ध्वनि के साथ भीड़ सहित जाना।

डाय टोनिक

द्विस्वरक (मेल)।

डिम

रूपक के दस भेदों में से एक। 'डिम' का अर्थ है 'संघात'। इसमें नायकों के कार्य-संघात' (समूह) का प्रदर्शन होता है अतः इसे 'डिम' कहा जाता है। हेमचन्द्र ने 'डिम' के लिए 'विद्रोह' तथा 'डिम्ब' शब्द का प्रयोग भी किया है।

डिस्को

एक विदेशी नृत्य पद्धति।

डोम्बी

नृत्य भेद (रूपक) का एक प्रकार।

ढाड़ी

गायन के साथ-साथ संगीत का ज्ञान रखनेवाला गायक ढाड़ी कहलाता है।

तत्कार

कथक नृत्य में पैर के आघातों द्वारा जो बोल (शब्द) प्रकट किए जाते हैं, उन्हें 'तत्कार' या 'तथकार' कहते हैं। ताथेई, तत्थेई यह एक ऐसा तत्कार है, जिस पर पूरा कथक नृत्य निर्भर करता है। इस तत्कार को हजारों ढंग से उलट-पलटकर प्रदर्शित किया जा सकता है। तबले के क़ायदे की तरह तत्कार का कितना ही विस्तार किया जा सकता है। तत्कार शब्द ७०० वर्ष से भी प्राचीन है। भरत के पुत्र कोहल ने 'नामावली' नामक देशी नृत्य की चर्चा में कहा है—'भवेदादितालेन तत्कारपूर्वक्रमोयं सदा देवनामावलीनां' और १६-वीं शताब्दी के ग्रंथकार वेद ने तत्कार का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—'थैथै तत तत थं जगजग तथ तथ जग जग तत्थथ इति नामावली तत्कारः'। 'विनोद' नामक प्राचीन नृत्य में भी 'तत्कार' होती थी।

तत्तुकोलु

भरत नाट्यम् नृत्य के अभ्यास में ताल का संचालन करने वाली लकड़ी या डंडा जो लगभग एक फुट लम्बा होता है। एक लकड़ी के टुकड़े पर इसका आघात करके नर्तक को ताल गति से संचालित अथवा निर्देशित किया जाता है।

तत्तुमने

लकड़ी के जिस टुकड़े पर तत्तुकोल से आघात किया जाता है उसे 'तत्तुमने' कहते हैं। यह लगभग दो इंच मोटा और बारह इंच लम्बा तथा छह इंच चौड़ा होता है।

तत्व

गीत के साथ-साथ मिलकर उसका पूर्व अनुकरण 'तत्व' कहलाता है।

तनियावर्तनम्

कर्नाटिक संगीत में प्रस्तुत किया जाने वाला ताल वाद्यों पर आधारित कार्यक्रम। इसे कभी-कभी संगीत कार्यक्रम के प्रारम्भ में भी प्रस्तुत कर दिया जाता है।

तनीय वर्तनम्

ताल वाद्य का एकल वादन।

तबली

तूंबा; तार वाद्यों में तूंबे के ऊपर का भाग (ढक्कन), जिस पर 'घुड़च' या 'ब्रिज' जमी रहती है। इसके वादन के समय तूम्बे में अनुनाद या गूंज उत्पन्न होती है।

तरब

तत् वाद्यों में गूंज बढ़ाने की दृष्टि से मुख्य तारों के नीचे जो सहयोगी या उपतार लगाए जाते हैं उन्हें 'तरब', 'तरफ़' या 'तरब' के तार कहा जाता है।

तराना

उत्तर भारतीय संगीत की एक गायन शैली। इसमें निरर्थक शब्दों का प्रयोग होता है। इन शब्दों को शुष्काक्षर या स्तोभाक्षर भी कहते हैं। 'तराना' और कर्नाटिक संगीत के 'तिल्लाना' में बहुत साम्य है।

तांडव

नृत्य का वह भेद 'तांडव' कहलाता है, जिसमें उद्धत करणों, उद्धत अंगहारों तथा आरभटी वृत्ति से युक्त गीतकाल में प्रयुक्त नृत्य का प्रदर्शन हो। यह चंड (विलम्बित लय प्रधान), प्रचंड (मध्य लय प्रधान) तथा उच्चंड (द्रुत लय प्रधान) के भेद से तीन प्रकार का होता है; 'भरतार्णव' के अनुसार 'तांडव' के दो रूप हैं—शुद्ध व देशी; भगवान् शंकर द्वारा प्रवर्तित नृत्य का एक भेद, जो रौद्र रस-प्रधान है।

तान

राग को विस्तार देने वाला द्रुत लय में बद्ध स्वर समूह इसे 'पलटा' भी कहा जाता है। कर्नाटिक संगीत में इसे 'तानम्' कहते हैं।

तान क्रिया

तंत्री पर दो प्रकार की तान क्रिया बताई गई है—'प्रवेश' और 'निग्रह'। अधर-स्वर के प्रकर्ष और उत्तर-स्वर के मार्दव से 'प्रवेश' या 'प्रवेशन' होता है। असंस्पर्शी 'निग्रह' कहलाता है।

तानम्

मनोधर्म संगीत की एक शाखा। रागम्, तानम् और पल्लवी के प्रस्तुतीकरण में राग आलापना से जुड़ा हुआ ऐसा स्वर समूह, जिसमें लय और स्वर दोनों विद्यमान रहते हैं। और जो गायक की कल्पना पर आधारित रहता है। 'तानम्' को 'कटक' भी कहते हैं।

तानवर्णम्

कर्नाटिक संगीत की एक संगीत प्रस्तुति। इसे प्रायः आदिताल या अट्‌ताल में कार्यक्रम के प्रारम्भ में प्रस्तुत किया जाता है।

तापे

'दासी अट्टम्' नृत्य के लिए प्रयुक्त कन्नड़ भाषा का शब्द।

तार गहन

तार वाद्यों में खूँटियों के नीचे की पट्टिका जिसके सुराखों में से तार (तंत्रियाँ) खूँटियों तक आते हैं। वॉयलिन वाद्य में इसे 'टेल-पीस' कहते हैं।

तारपरन

जब तत् वाद्य यंत्रों में तबला और पखावज जैसे अवनद्ध वाद्यों से सम्बन्धित परन के बोलों का अनुसरण किया जाता है, तो उसे 'तारपरन' कहते हैं।

तारस्थायी

मध्य सप्तक से ऊपर का सप्तक, जिसे उत्तर भारतीय संगीत में 'तार सप्तक' कहते हैं।

ताल

किसी समय को नापने की क्रिया 'ताल' कहलाती है, जिसका निर्माण विभिन्न मात्राओं के जोड़ने से होता है। गीत, वाद्य तथा नृत्य इत्यादि 'ताल' और 'लय' के ही आश्रित रहने पर शोभा पाते हैं; घनवाद्य का एक प्रकार; ताल की सशब्द क्रिया।

ताल क्रिया

ताल देने की पद्धति या प्रणाली।

तालधारी

ताल देने वाला व्यक्ति 'तालधारी' कहलाता है। शास्त्र में तालधारी के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं—गीत, संगीत और नृत्य में कुशल; ताल शास्त्र में निपुण, भरत के 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित अभिनय के प्रकारों का ज्ञान रखनेवाला, आकर्षक व्यक्तित्व वाला, पूर्वानुमान में कुशल और नृत्य में प्रयुक्त विभिन्न लयकारियों में निष्णात्। उसे गुरु के प्रति आज्ञाकारी और विभिन्न तालों एवम् उनसे सम्बन्धित लयकारियों के उच्चारण में कुशल होना चाहिए।

ताल प्राण

ताल के लघु, गुरु इत्यादि अंग 'ताल के प्राण' या 'तालाङ्ग' कहलाते हैं।

ताल माला

अनेक तालों से युक्त संगीत रचना।

तालाट्टु

पालना या हिंडोला-गान।

ताली (भरी)

ताल के ठेकों में जिस स्थान पर हाथ अथवा अन्य किसी माध्यम से आघात किया जाता है, तो उसे 'ताली', 'भरी' या 'पात' का स्थान कहते हैं।

तिरप या तिरिप

नृत्य में तिरछा भ्रमण; भरत कोष के अनुसार पैरों को स्वस्तिक (क्रॉस) दशा में रखकर तिरछे घूमने की क्रिया को 'तिरिप भ्रमरी' कहा गया है।

तिरमानम्

कर्नाटिक संगीत में वर्णों का लयात्मक प्रयोग को नट्टुवनार द्वारा केवल मंजीरों के साथ गाया जाता है। इसी पर आधारित होकर 'अडवु' तथा 'जति' का प्रदर्शन किया जाता है। मृदंगम् के साथ 'तिरमानम्' की अनेक आवृत्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं। 'तिरमानम्' का अन्त प्रायः तीन पुनरावृत्तियों द्वारा किया जाता है, जिसे 'आरिडी' या (इति) कहते हैं।

तिरवट या त्रिवट

उत्तर भारतीय संगीत की एक गायन शैली, जिसे 'तराना' गायन शैली, की तरह गाया जाता है। इसके पद में शुष्काक्षरों के साथ पखावज के बोलों का प्रयोग किया जाता है।

तिरश्चीना ग्रीवा

दोनों पार्श्वों और ऊपर की ओर सर्प-गति से चलती हुई गर्दन।

तिरुप्पुकल्

विभिन्न तालों में तमिल और संस्कृत पदों से रचित प्रबन्ध।

तिरुप्पुगल

कर्नाटिक संगीत में पन्द्रहवीं शताब्दी के अरुनगेरिनातर द्वारा प्रचलित संगीत रचना। इसे प्रायः संगीत कार्यक्रम के अन्त में रचना को जीवन्तता प्रदान करने लिए प्रस्तुत किया जाता है। 'तिरुप्पुगल' के शब्द विभिन्न रागों में प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

तिरोभाव

मुख्य राग को छिपाकर अन्य सम्प्राकृतिक रागों को प्रदर्शित करने की क्रिया 'तिरोभाव' कहलाती है।

तिल्लाना

स्वर, ताल और वाद्य से सम्बन्धित अक्षरों द्वारा निर्मित रचना (प्रबन्ध) को 'तिल्लाना' कहते हैं। इसमें दो धातु अर्थात् अवयव स्थायी और अन्तरा होते हैं। उत्तर भारत में इसे 'तराना' कहते हैं। 'तिल्लाना' का गायन विशेष रूप से भरतनाट्यम् नृत्य में किया जाता है। स्वर, शब्द और पाटाक्षर से युक्त इस रचना के अन्त में ईश्वर या राजा से सम्बन्धित स्तुतिपरक एक संक्षिप्त चरण का प्रयोग किया जाता है, जो प्रायः कार्यक्रम के अन्त में प्रस्तुत किया जाता है।

तिहाई

किसी बोल या परन के लगातार तीन बार प्रस्तुत करने की क्रिया को 'तिहाई' या 'तीया' कहते हैं।

तीव्र स्वर

जब शुद्ध स्वर अपने नियत स्थान से हटकर ऊँचा चढ़ जाता है, तो उसे 'तीव्र स्वर' कहते हैं।

तुक

छन्द में प्रयुक्त अंतिम शब्द का समान मात्रा वाला शब्द; कलि; अंश या चरण; मांजा; ध्रुपद में स्थायी, अन्तरा, संचारी, और आभोग नामक धातुओं को भी 'तुक' कहा जाता है।

तूँबा

सितार या वीणा जैसे वाद्यों में 'डांड' या 'दण्ड' के नीचे गूँज के लिए गोल व चपटे आकार का लगाया जाने वाला भाग। इसे 'तबली', तूँबी और 'तबकडी' भी कहते हैं। इसके ऊपर 'घुड़च' लगाई जाती है जिससे वादन के समय तूँबे में अनुनाद या गूँज उत्पन्न होती है। अंग्रेजी में इसे 'बेली' या 'बॉडी' कहते हैं।

तुक्कडा

आकर्षक और मनोरंजक कार्यक्रम को जब प्रस्तुत किया जाता है, तो ऐसे कार्यक्रम को 'तुक्कडा' या 'तुक्कडा कार्यक्रम' कहते हैं।

त्रयस्र

दाहिना पंजा बायीं ओर और बायां पंजा बायीं ओर मुख करके रखा जाए तथा एड़ी आपस में मिली रहें तो 'त्रयस्र' मुद्रा बनती है।

तेलक

'तनन', 'तनना' जैसे शब्दों को जब आलाप में प्रयोग किया जाता है, तो उसे 'तेलक' कहते हैं।

तेवारम्

कर्नाटिक संगीत में भक्ति पूर्ण स्तोत्र जिन्हें नायन्मारों (६३ तमिल संत) ने रचा था। श्रीलंका और दक्षिण भारत के शैव मन्दिरों में प्रायः इनका प्रयोग किया जाता है।

तैयारी

गायन, वादन और नृत्य में द्रुत लय के प्रस्तुतीकरण को 'तैयारी' कहते हैं।

त्रोटक

बीस नृत्य-भेदों की तालिका में से सर्वप्रथम 'तोटक' है; एक वर्णवृत्त (छन्द), जिसके प्रत्येक चरण में चार 'सगण' होते हैं।

तोड़ा

बोलों के ऐसे समूह को 'तोड़ा' कहते हैं, जिसमें भिन्न-भिन्न लय और तिहाई आदि होती हैं। 'तोड़े' के अन्तर्गत द्रुत लय में कुछ नाटकीय तत्त्व का समावेश भी किया जाता है।

तौर्य

प्राचीन काल में चतुर्विध वाद्य को 'तौर्य' की संज्ञा प्रदान की गई थी; 'तुरही' नामक एक सुषिर वाद्य।

तौर्यत्रिक

चतुर्विध वाद्यों का समूह; नाट्य; संगीत; गीत, वाद्य तथा नृत्य का सामूहिक प्रयोग।

त्रिकाल

लय की तीन गुनी गति, जिसे उत्तर भारत में 'तिगुन' कहते हैं।

त्रिगत

'बीथी' का एक भेद। जहाँ शब्द की समानता के कारण अनेक अर्थों (वस्तुओं) को एकसाथ योजना की जाए, तो वह 'त्रिगत' नामक वीथ्यंग होता है। पूर्वरंग में निर्देशक, सहायक निर्देशक तथा विदूषक के बीच होने वाला वार्तालाप 'त्रिगत' कहलाता है।

त्रिगूढ़

नाट्य के दस अंगों में से एक, जहाँ स्त्री वेषधारी पुरुष नाचे व गाए, वह मधुर-गान 'त्रिगूढ़' कहलाता है।

त्रितय

कंठ संगीत, वाद्य संगीत और नर्तन क्रिया का सम्मिलित रूप 'त्रितय' कहलाता है। गीत का अनुसरण करनेवाले, स्वतंत्र रूप से बजनेवाले और नृत्य का अनुगमन करने वाले वाद्य यंत्रों को भी 'त्रितय' कहा जाता है।

त्रिभंग या त्रिभंगी

जिस प्रकार भगवान् कृष्ण घुटना, कमर व गर्दन को टेढ़ा करके खड़े होते हैं, उसे 'त्रिभंग' या 'त्रिभंगी मुद्रा' कहा जाता है। इसमें एक पैर सीधा रहता है और दूसरा उसके पास घुटने से मोड़कर तमाल से लिपटी लता की भाँति रखा जाता है, जिसका केवल पंजा ही जमीन को स्पर्श करता है।

त्रिमूर्ति

कर्नाटिक संगीत के तीन महान वाग्गेयकारों श्याम शास्त्री, त्यागराज और मधुस्वामी दीक्षितार को त्रिमूर्ति के नाम से पुकारा जाता है। ये तीनों पन्द्रह वर्ष की अवधि के अन्दर पैदा हुए थे। इनमें प्रमुख वाग्गेयकार श्याम शास्त्री सन् १७६२ ई०, त्यागराज सन् १७६७ ई० और मुथुस्वामी दीक्षितार १७७६ ई० में उत्पन्न हुए। आज के कर्नाटिक संगीत में इन तीनों को ही ऐसा स्थान प्राप्त है, जैसा उत्तर भारत में स्वामी हरिदास, सूरदास और तुलसीदास को प्राप्त है।

त्रयोदश लक्षण

राग के तेरह लक्षण, जिनसे राग के रंजक स्वरूप का बोध होता है।

दशावतार हस्त

भगवान विष्णु के दस अवतारों (मत्स्यावतार, कूर्मावतार, शूकरावतार, नृसिंहावतार, बामनावतार, परशुरामावतार, रामावतार, कृष्णावतार, बुद्धावतार तथा कल्कि अवतार) में प्रयुक्त हाथों की मुद्राएँ। 'दशावतार अभिनय' के अन्तर्गत इनका प्रयोग किया जाता है।

दरु

ऐसी संगीत रचना जिसमें साहित्य, मृदंग के बोल और राग के स्वर प्रस्तुत किये जायें। इसके कई प्रकार होते हैं।

दशरूपक

'नाट्यशास्त्र' एवं 'अग्निपुराण' में दस प्रकार के रूपक बताए गए हैं, जिनके नाम हैं— नाटक, प्रकरण, डिम, ईहामृग, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाँण, वीथी तथा अंक। भरत ने 'नाटक' तथा 'प्रकरण' के योग से 'नाटी' नामक एक 'रूपक' की रचना भी मानी है, जिसे नाटिका के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है।

दादरा

उत्तर भारतीय संगीत की एक गायन शैली; 'दादरा' जैसी तालों में निबद्ध शृंगार-रस-प्रधान गीत। इसके गीत ठुमरी-चाल की तरह के होते हैं, लेकिन इसकी बंदिश छोटी होती है। मुस्लिम समाज में 'सादरा' नामक गायन शैली 'दादरा' से मिलती-जुलती होती है।

दासर पद

भक्ति भाव पूर्ण पद जो सोलह-सत्रहवीं शताब्दी में पुरन्दरदास इत्यादि द्वारा रचे गए।

दासीअट्टम्

भरतनाट्यम् नृत्य का पूर्व नाम 'दासीअट्टम्' है। पाश्चयन प्रभाव के कारण इसे 'सदिर नाच' या 'सदिराट्टम्' भी कहा गया।

द्विगूढ़

लास्य के दस अंगों में से एक; मुख तथा प्रति-मुख से युक्त चतुरस्र पद-गीत 'द्विगूढ़' कहलाता है।

दिव्य प्रबन्ध

वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बन्धित पद, जिसमें विष्णु से सम्बन्धित साहित्य की प्रधानता रहती है।

दीप्ति

नायिका की कांति (आभा) जब विस्तृत हो जाती है, तो 'दीप्ति' या 'दीप्ति अलंकार' कहते हैं।

भरतनाट्यम्, भाग-1

दुगुन

एक आवृत्ति में उसी बोल-समूह को दो बार प्रदर्शित कर दिया जाए, तो उसे 'दुगुन', तीन बार कर दिया जाए, तो 'तिगुन' और चार या पाँच बार किया जाए तो 'चौगुन' या 'पचगुन' कहते हैं।

दुर्मल्लिका

नृत्य भेद (रूपक) का एक प्रकार।

द्रुत लय

बहुत तेज गतिवाली लय या चाल को 'द्रुत लय' कहते हैं।

देवदासी

दक्षिण भारत के मन्दिरों में नृत्य करने वाली परम्परागत महिलाओं को 'देवदासी' कहा गया है। देवदासी-परम्परा समाप्त होने के बाद जब उनका सामाजिक शोषण होने लगा, तो देवदासियों का धार्मिक स्वरूप भ्रष्ट सामाजिक स्वरूप में विलीन हो गया। कर्नाटक में जिन्हें 'देवदासी' कहा गया, उन्हीं को आन्ध्र में 'बासवी', 'देवाली' या 'जोगिनी' तथा केरल में 'महारिस' या 'मेंहरी' और महाराष्ट्र में 'मुरली' या 'मुराली', असम में 'मातिस' एवं उत्तर भारत में 'गोपी', 'दासी', 'सेविका', 'भक्तिन' या 'सखी' कहा गया। भारत के अन्य भागों में इन्हें और भी कई नामों से जाना जाता है, जैसे—'भवानी', 'कुदिकरी', 'नचनियाँ', 'देवबाला', 'भोगमवंडी' तथा 'जोगती' आदि।

देवहस्त या देवताहस्त

अभिनय तथा मूर्ति निर्माण के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले ब्रह्मा तथा रुद्र इत्यादि विभिन्न देवी-देवताओं से सम्बन्धित हाथों की मुद्रा को 'देवहस्त' या 'देवताहस्त' कहते हैं। 'अभिनय दर्पण' में ऐसे सोलह 'देवहस्त' बताये गए हैं।

देवार

तमिल संगीत पद्धति का एक प्राचीन प्रबन्ध। इसमें शिव की भक्ति से सम्बन्धित साहित्य की प्रधानता रहती है।

देसी संगीत

शास्त्रीय लक्षणों से रहित समाज में प्रचलित संगीत; लोक परम्परा से सम्बन्धित संगीत। देसी संगीत से सम्बन्धित कुछ विधाएँ 'उपशास्त्रीय संगीत' भी कहलाती हैं, जैसे ठुमरी, ग़ज़ल, फ़िल्म गीत इत्यादि।

देस्य राग

कर्नाटक संगीत में देसी राग को 'देस्य राग' कहते हैं।

दोहा

दो पंक्तियों की छन्दोबद्ध साहित्यिक रचना या कविता।

धमार

उत्तर भारतीय संगीत की एक गायन शैली। इसे होली गायन भी कहते हैं जिसमें प्रायः 'दीपचन्दी' और 'धमार' जैसी शैलियों का प्रभाव रहता है।

धरू

ध्रुव धातुओं से निर्मित एवं उद्ग्राह और आभोग से रहित पद।

धम्मिल

केश बाँधना; जूड़ा।

धाड़ी

एक संगीतजीवी जाति या वर्ग; मिरासी।

धातु

गीत अथवा गत के अवयव को 'धातु' कहते हैं, जैसे—उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, आभोग, अन्तरा इत्यादि; ध्रुवपद का खण्ड; तुक; वीणा जैसे तंत्री वाद्य के बोल।

धातुकार

किसी पद्य, काव्य या शब्दों को ज़ेब रूप प्रदान करने वाला व्यक्ति 'धातुकार' कहलाता है। आजकल की भाषा में इसे 'संगीत रचयिता', 'म्यूज़िक डाइरेक्टर', 'कम्पोज़र' या 'संगीत निर्देशक' कहते हैं।

धिलांग

नृत्य का एक अंग, जिसमें 'धिलांग' बोल के साथ नृत्यकार उछलकर ज़मीन पर लौटता है।

धुतशिर

बायीं और दाहिनी ओर घूमता हुआ सिर।

ध्रुपद

उत्तर भारतीय संगीत की एक गान पद्धति, जिसमें चार भाग होते हैं—स्थायी, अंतरा, संचारी, और आभोग। इसमें ताल और लय के विविध प्रयोग होते हैं, तानों का प्रयोग नहीं होता, लेकिन मींड़, गमक और कठिन लयकारियों का प्रयोग बहुतायत से होता है। 'ध्रुपद' या 'ध्रुवपद' की चार वाणियाँ (परंपराएँ) प्रसिद्ध हैं—गोबरहार या गौड़हार वाणी, खण्डहार वाणी, डागुर वाणी तथा नौहार वाणी। ध्रुपद गायन पर जो नृत्य किया जाता था, उसे 'ध्रुपद' या 'ध्रुवपद नृत्य' कहते थे।

ध्रुव

प्राचीन 'प्रबन्ध' का एक प्रकार; प्राचीन ध्रुवपदों का दूसरा खण्ड; ताल की एक सशब्द क्रिया।

ध्रुवा

एक प्राचीन गीत-प्रकार, जिसे 'ध्रुवा पद' भी कहते हैं।

ध्रुवा या धुया

ध्रुया शब्द ध्रुवा का अपभ्रंश है। गीत का जो अंश बार-बार दुहराया जाता है उसे 'ध्रुवा' या 'धुया' कहते हैं।

ध्रुवा नृत्य

प्राचीन काल में ध्रुवा गायन पर किया जाने वाला नृत्य 'ध्रुवा नृत्य' कहलाता था।

ध्वनि

नाद या आवाज को 'ध्वनि' कहते है। कानों को प्रिय लगने वाली ध्वनि को 'स्वर' कहा जाता है।

ध्वया

तत् वाद्यों में नायको अर्थात् बाज के तार पर काम करते हुए जब चिकारी वा तार सप्तक के षड्ज का प्रयोग किया जाता है, तो उसे 'ध्वया' कहते हैं।

नक्काल

भांड; नक्कालो (नक़ल) का कार्य करने वाला अभिनेता।

नचकिया

नाचने वाला पुरुष; नर्तक।

नचनियाँ

नाचने वाली स्त्री; नर्तकी।

नट

चारों प्रकार के अभिनय में कुशल व्यक्ति 'नट' कहलाता है। 'भाव प्रकाश' ग्रन्थ के लेखक शारदातनय के अनुसार, 'नट' उसे कहते हैं, जो रस भाव से समन्वित अतीत के लोक-वृत्तांत को स्वभाववत् अभिनीत करता है। वह गीत, वाद्य, नृत्त तथा अभिनय आदि के द्वारा रंग में राम (नायक) आदि से तादात्म्य करके प्रेक्षकों को रसास्वादन कराता है। एक नट के बाद जब दूसरा आकर कथावस्तु के काव्यार्थ की सूचना (स्थापना) करता है तो उसे 'स्थापक' कहते हैं। 'नट' के कुछ पर्याय इस प्रकार हैं—शैलालिन, शैलूष, जायाजीव, कृशाश्विन, भरत, चारण और कुशीलव।

नटराज

तांडव नृत्य की मुद्रा में भगवान शिव का स्वरूप।

नटवर

भगवान श्री कृष्ण का एक नाम 'नटवर' है, क्योंकि उन्हें नाट्य का आचार्य माना जाता है।

नटवरी

उत्तर भारतीय 'कथक नृत्य' को 'नटवरी नृत्य' भी कहते हैं ।

नटी

'भावप्रकाश' के लेखक शारदातनय के अनुसार आतोद्य (वाद्य-वृन्द) के भेदों की ज्ञाता, कलाओं में कुशल, अभिनय कार्य की ज्ञाता, समस्त प्रकार की भाषाओं के ज्ञान में विलक्षण,'नट' की ग्रहणी 'नटी' कहलाती है । नटी की संतान 'नाटेर' कहलाती है ।

नट्टुवनार

नृत्य कार्यक्रम को संचालित करने वाला दक्ष संगीतकार, जो गायन के साथ मंजीरों का वादन भी करता रहता है ।

नट्टुवांगम्

गायन और मंजीरों से वादन करते हुए नृत्य को संचालित करने की कला ।

नर्तक

परम्परागत नृत्त में कुशल व्यक्ति 'नर्तक' कहलाता है ।

नर्तकी

नृत्य करने वाली नटी । इसके प्राचीन पर्यायवाची नाम हैं—'नर्तकितारा' और 'नर्तकितमा' ।

नर्तन

'नट' के अनेक हाव-भाव द्वारा जब लोक का मनोरंजन हो, तो उसके उस नृत्य को 'नर्त्तन' कहते हैं । 'नर्त्तन निर्णय' ग्रन्थ के अनुसार नर्त्तन के तीन भेद बताए गए हैं, यथा—'नाट्य', 'नृत्य' और 'नृत्त' । नाट्य नृत्य में दृश्य-काव्य व उसकी कथा, देश, वृत्ति, भाव और रस इत्यादि चार प्रकार के अभिनयों का प्रदर्शन होता है । नृत्य में ऐसी आख्यायिका का प्रदर्शन होता है, जो काल्पनिक हो, नेपथ्य विधान के अधीन न हो तथा रस, भाव आदि के अभिनय द्वारा विभूषित एवं विभिन्न रसों एवं भावों से युक्त हो । अभिनयवर्जित अर्थात् भावों से रहित चमत्कार प्रधान अंग-विक्षेप 'नृत्त' के अन्तर्गत आते हैं ।

नटन्त

नटराज शिव के अन्तरिक्ष नृत्य का स्वरूप । भारतीय दर्शन शास्त्र के अनुसार इस नृत्य में शिव के दाहिने ओर एक हाथ में डमरू है, जो सृष्टि का प्रतीक है, दूसरा हाथ अभय मुद्रा में स्थिति या रक्षा का प्रतीक है, तथा बायीं ओर के दोनों हाथों में से एक में अग्नि है, जो संहार अथवा लय को प्रतीक है और दूसरा हाथ दोल मुद्रा में है, जो परम शान्ति का प्रतीक है । बांये पैर का उठा हुआ पंजा अनुग्रह या मुक्ति का प्रतीक है । नटराज की मूर्ति के धरातल वाले भाग पर श्रीचक्र अंकित है, जिसके छः कोण तिरोभाव अथवा माया का प्रतीक हैं । इन्हीं क्रियाओं को पंच क्रिया कहते हैं । नटराज शिव का सीधा पैर अपस्मार या मुयलग राक्षस का संहार करते

हुए है, जो आसुरी शक्तियों पर विजय का प्रतीक है। उनके सीधे और बांये कान में पुरुष और स्त्री से सम्बन्धित कर्ण फूल या बाली हैं, जो नर और नारी के संभोग का प्रतीक है। शिव की जटाओं से प्रवाहित गंगा की जलराशि चेतना और जीव-सृष्टि की निरन्तरता का प्रतीक है तथा मस्तक पर सुशोभित अर्द्धचन्द्र धर्म एवं समृद्धि का प्रतीक है। शिव की गरदन और बाहों पर लहराते सर्प पाप अथवा दोषों के बन्धन के प्रतीक हैं।

नय राग

रक्ति राग।

नवग्रह हस्त

नौ ग्रहों (बुद्ध, शुक्र, गुरु, कुज (मंगल), शनि, सूर्य, चन्द्र, राहु, केतु) से सम्बन्धित मुद्राओं वाले हाथ 'नवग्रह हस्त' कहलाते हैं।

नवसंधि नृत्य

दक्षिण भारत के हिन्दू मन्दिरों के उद्घाटन समारोह पर प्राचीन काल में प्रस्तुत किया जाने वाला नृत्य। इसके अन्तर्गत ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, यस, निरुत्ति, वरुण, वायु, कुबेर और ईशान्य इन देवताओं की पूजा नौ संधियों (दिशाओं) में की जाती थी।

नष्ट

किसी स्वर प्रस्तार की क्रम संख्या जानकर उसके स्वर बता देने की क्रिया को 'नष्ट की क्रिया' कहते हैं।

नक्षत्राभिनय हस्त

सत्ताईस नक्षत्रों को प्रकट करने वाले हाथ।

नांदी

पूर्वरंग का एक अंग, जिसमें सूत्रधार नाटक के प्रारम्भ में मंगलात्मक स्तोत्र द्वारा पाठ करता है। नाटक के आरम्भ में भेरी (तुरही) आदि बजाने वाले को 'नांदीकर' कहते हैं।

नाच

नृत्य या नर्त्तन; कथक नृत्य का पूर्वरूप; अंग्रेज इसे नॉच् (Nautch) या 'ओरिएण्टल डान्स कहते थे।

नाज़

गर्व या नखरे के साथ व्यक्तित्व को प्रदर्शित करना 'नाज़' कहलाता है। इसे 'नाज़-ओ-अदा' तथा 'नाज़-ओ-अंदाज़' भी कहते हैं। गति का एक प्रकार भी 'नाज़' है।

नाटक

रूपक के दस प्रकारों में 'नाटक' को प्रमुख माना गया है, क्योंकि अन्य रूपकों की अपेक्षा इसमें रस-परिग्रह सबसे अधिक मात्रा में प्राप्त होता है तथा सम्पूर्ण लक्षणों की उपयुक्त

विद्यमानता होती है। विद्वानों ने इसे मुक्ति-अभ्यास के कौशल से युक्त, सर्वलोकानुरंजक, राजाओं के चरित्रों को नाना रस भावों से आवेष्टित करके प्रस्तुत करने वाला एवं सुख-दुःख की उत्पत्ति का कारक बताया है। शारदातनय के अनुसार इसमें पंचार्थ प्रकृतियाँ, पाँच आस्थाएँ, सोलह अंग, चार वृत्तियाँ, पाँच संधियाँ, इक्कीस सध्यंतर, नब्बे संगीतांग तथा छत्तीस भूषण होते हैं। यह पाँच से दस अंक तक का हो सकता है। सुबंधु के अनुसार नाटक पाँच प्रकार का होता है—'पूर्ण', 'प्रशांत', 'भास्वर', 'ललित' तथा 'समग्र'। जो काव्य या कृति मंच पर अभिनय सहित प्रस्तुत की जा सके, उसे अँग्रेजी में 'ड्रामा' कहते हैं।

नाटकीया

स्वयं अपने गीत के साथ नाचनेवाली को 'नाटकीया' कहते हैं।

नाटिका

नृत्य भेद (रूपक) का एक प्रकार। इसकी कथावस्तु प्रकरण से ली जाती है। इसमें चार अंक होते हैं एवं स्त्री पात्रों की प्रधानता रहती है, इसीलिए इसे 'नाटिका' संज्ञा दी गई है। इसमें कैशिकी वृत्ति की प्रधानता रहती है और दो नायिका होती हैं।

नाट्य

वाक्य के अर्थ को अभिनय द्वारा प्रदर्शित करके रस उत्पन्न करने को 'नाट्य' कहते हैं; लोक की अनुकृति करना 'नाट्य' है।

नाट्यक्रम

पूर्व रंग समाप्त करके पात्र को नृत्य आरम्भ करना चाहिए। नृत्य-गीत, अभिनय और ताल से युक्त होना चाहिए। मुख से गाकर हाथों द्वारा अर्थ को अभिनय से अभिव्यक्त करना चाहिए, नेत्रों से भाव स्पष्ट करते हुए पैरों द्वारा ताल दे। जिधर हाथ जाए, उसी ओर दृष्टि भी जानी चाहिए और जिस ओर दृष्टि जाए, उसी ओर मन की वृत्ति साथ-साथ जानी चाहिए, जहाँ मन जाए, वहाँ भाव साथ में रहे। जहाँ भाव रहता है, वहीं रस उत्पन्न हो जाता है। 'अभिनय दर्पण' ग्रन्थ में यही 'नाट्य क्रम' बताया गया है।

नाट्यक्रिया

शब्द के अनुसार विविध प्रकार से विविध नृत्तों को करना ही 'नाट्यक्रिया या 'नाट्यप्रक्रिया' कहलाता है।

नाट्य धर्मी अभिनय

परम्परागत प्राचीन नाट्य ग्रन्थों के आधार पर अभिनय। आचार्यों ने इसके दो भेद किये हैं—'चित्त वृत्तियार्पिका' (हृदय में स्थित भावों का अभिनय) और 'बाह्य वस्तु अनुकारिणी'। 'चित्तवृत्ति यार्पिका' को कैशिकी वृत्ति और 'बाह्य वस्तु' को आवेष्टित इत्यादि करणों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

नाट्याचार्य

गायन, वादन तथा नर्तन के सिद्धान्त और व्यवहार में कुशल व्यक्ति 'नाट्याचार्य' है, जो वाणी पर अधिकार रखनेवाला, सुन्दर, आकर्षक वेश-युक्त, सरस स्तुतियों में निपुण एवं सभाओं में किए जाने वाले परिहास में कुशल हो।

नाद

ध्वनि या आवाज़ को 'नाद' कहते हैं। इसके दो भेद हैं—आहत नाद (कानों से सुनाई देने वाला) और अनाहत नाद (योगाभ्यास द्वारा अनुभव में आने वाला)। कानों से प्रिय लगने वाला नाद 'स्वर' कहलाता है।

नादगुण अथवा नाद की जाति

नाद की वह अवस्था, जिसके कारण उसकी पहचान होती है, 'नाद का गुण' कहलाती है। इसी नादगुण के कारण एक ही स्वर को प्रसारित करने वाले वाद्य जैसे—सारङ्गी, सितार, बाँसुरी, जलतरंग, सरोद, सन्तूर इत्यादि को पहचाना जा सकता है और इसी गुण के कारण मानव तथा पशु-पक्षी इत्यादि की ध्वनियों की विविधता का ज्ञान हो जाता है। नाद की जाति को अँग्रेजी में 'मेग्नीट्यूड' कहते हैं।

नान्दी-मंगल-पाठक

आशीर्वाद से युक्त तथा मांगलिक भावों को प्रकाशित करनेवाले वाक्यों से जो सभी देवों या वस्तुओं की प्रशंसा करता है, उसे 'नान्दी' या 'नान्दीमंगलपाठक' कहते हैं।

नायक

रूपक या नाटक का प्रधान पात्र (प्रमुख अभिनेता) 'नायक' कहलाता है; गायन और वादन में दक्ष कलाकार; संगीत के सैद्धान्तिक और क्रियापक्ष का ज्ञाता कलाकार; घराने या परम्परा का प्रतिनिधि कलाकार; प्राचीन और आधुनिक संगीत और साहित्य का ज्ञाता; अँग्रेजी में इसे 'हीरो' कहते हैं।

नायक-नायिका-हस्त

नायक और नायिका के विभिन्न प्रकारों को प्रदर्शित करने वाली हस्त मुद्रा।

नायकी

नायक द्वारा प्रदर्शित संगीत को 'नायकी' कहते हैं; परम्परागत गान-पद्धति, शैली या ढाँचा।

नायकी तार

ततवाद्यों में वादनोपयोगी मुख्य तार को 'नायकी तार' कहा जाता है। इसे 'बाज का तार' भी कहते हैं।

नालिका

वीथी का एक भेद। हास्य से युक्त, छिपे अर्थ वाली पहेली-भरी युक्ति को ही 'नालिका' कहते हैं।

निकास

वादन और नृत्य में बोलों का निकालना अथवा निष्पादन; किसी भाव को प्रकट करने के लिए जब कोई मुद्रा बनाई जाती है, तो उस प्रक्रिया को 'निकास' कहते हैं।

निगीत

सार्थक शब्द समूह के बिना केवल वाद्यों द्वारा जब राग, गति और ताल की अभिव्यक्ति की जाती है, तो उसका नाम 'निगीत' या 'बहिर्गीत' होता है। इसका प्रयोजन रस-परिपाक नहीं होता, बल्कि इसके द्वारा केवल भाव की सृष्टि होती है।

निग्रह

वीणा की विशिष्ट क्रिया वर्जित स्वर को स्पर्श न करना।

निबद्ध

छन्दोबद्ध (पद) समूह; तालबद्ध (बोल)।

निमेष

गीत सम्बन्धी कला का न्यूनतम काल प्रमाण।

निष्क्राम

ताल की एक निःशब्द क्रिया।

निःशब्द

ताल देने की आघातहीन क्रिया; निपात।

नृत्त

भरत ने नर्तन क्रिया के दो रूप कहे हैं—'नाट्य' और 'नृत्त'। 'नाट्य' अभिनय अर्थात् भाव प्रधान होता है और 'नृत्त' भावविहीत होता है। 'नृत्त' के उद्धतस्वरूप को 'ताण्डव' और सुकुमार प्रयोग को 'लास्य' कहते हैं। मध्यकाल में 'नाट्य' के लिए 'नृत्य' शब्द प्रचार में आया; ताल और लय के साथ हाथ-पैर चलाने की क्रिया ही 'नृत्त' कहलाती है। इसमें अंग-संचालन की प्रधानता रहती है। (नृत्तं तालसमाश्रयम्।) 'नर्तन निर्णय' के अनुसार अभिनय वर्जित, चमत्कारिक अंग विक्षेप को 'नृत्त' कहते हैं। यह 'विषम', 'विकट' और 'लघु' तीन प्रकार का होता है। भालों, छुरियों और बाणों के बीच रस्सी से परिभ्रमण करना 'विषम नृत्य' है। अभद्र, रंग-बिरंगी पोषाक धारण करके इसी प्रकार के प्रदर्शन को 'विकट नृत्य' तथा अल्प साधन का अवलम्बन कर उछल-उछलकर नृत्य करने को 'लघु नृत्य' कहते हैं।

नृत्तहस्त

नृत्त (भाव विहीन नर्तन) में प्रयुक्त होने वाले हाथ। भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में ऐसे हाथों के तीस प्रकार और नन्दिकेश्वर ने 'अभिनयदर्पण' में तेरह प्रकार बताये हैं। नृत्त हस्त की पांच प्रकार की गतियाँ बताई गई हैं, यथा—ऊपर, नीचे, दाहिने, बांये तथा आगे की ओर। जिस

दिशा में हाथ जाए, उसी ओर आँखें जाएँ वहीं मन जाए। जहाँ मन जाता है, वहीं भाव की उत्पत्ति होकर रस (आनन्द) की अनुभूति होती है।

नृत्य

ऐसा नाच, जिसमें भावाभिनय के साथ-साथ आंगिक क्रियाओं का संचालन भी होता है। 'संगीत दामोदर' के अनुसार ताल, गान और रस के आश्रय को तथा विलासपूर्ण अंग विक्षेप को 'नृत्य' कहा जाता है। शारदातनय ने नृत्य को 'चित्र' की संज्ञा भी प्रदान की है। (पादार्थाभिनयं भावाश्रयं नृत्यम्)।

नृत्य-अलंकार

नायिका के गुणों के अन्तर्गत उनमें सत्व से उत्पन्न २० अलंकार माने गए हैं। इन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। जैसे—'शरीरज अलंकार' के अन्तर्गत हाव-भाव और हेला; 'अयत्नज अलंकार' के अन्तर्गत शोभा, कांति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य तथा धैर्य; स्वभावज अलंकार के अन्तर्गत लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित और विहृत आते हैं। इन अलंकारों को लास्य के भाव भी कहा जाता है।

नृत्यक्रिया

नृत्य की क्रिया के लिए 'नृत्यार्ति' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

नृत्यगीत

वह लोकप्रिय या व्यक्तिगत लघु गीत, जो नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। पश्चिम में इसे 'बैलेड' कहा जाता है। समवेत 'नृत्यगीत' को पश्चिम में 'बैलारे' कहा जाता है।

नृत्यनाटिका

किसी नाटक या रूपक को नृत्य के द्वारा प्रदर्शित करना 'नृत्य नाटिका' कहलाता है। पाश्चात्य देशों में इसे 'बैले' कहते हैं, लेकिन उसमें चेहरे सपाट अर्थात् भावविहीन रहते हैं।

नृत्यलिपि

नृत्यांकन।

नृत्यसंयोजन

नृत्यरचना (कॉरिओग्राफ़ी)।

नृत्यांकन

नृत्यलिपि।

नृत्यांग या नृत्तांग

विभिन्न प्रकार की ताल व लय से सम्बन्धित 'नृत्त' के अंग जैसे—करण, अंगहार, स्थान, चारी, मंडल, रेचक, नृत्तहस्त, पिण्डी, बन्ध इत्यादि। कथक के 'नृत्ताङ्ग' में विभिन्न तालप्रबन्ध जैसे—'टुकड़ा', 'परन', 'ततुकार' इत्यादि का चमत्कारिक प्रदर्शन किया जाता है।

नेपथ्य

नाट्यमण्डप के पीछे का भाग, जहाँ विश्राम कक्ष बना होता है। यह भाग रंगमंच पर चल रहे कार्यक्रम में ध्वनि प्रवाह उत्पन्न करने के काम में भी आता है। यहाँ कलाकारों के सुसज्जित होने तथा उनके विश्राम करने के कक्ष भी रहते हैं।

नेपथ्य-वाक्

रंगमंच पर पर्दे के पीछे से घोषित ध्वनि को 'नेपथ्य वाक्' (प्ले बैक) कहते हैं।

नेरावल

किसी संगीत रचना में पद की एक पंक्ति को अनेक प्रकार से प्रदर्शित करना।

नौटंकी

उत्तर भारत के पश्चिमी क्षेत्र में प्रचलित लोकनाट्य की संगीत-प्रधान विधा। इसे 'स्वाँग', 'साँग' या 'सांगीत' भी कहते हैं। अन्य प्रदेशों में ऐसी विधाएं ख्याल (राजस्थान); माच (मालवा); भवाई (गुजरात); यक्षगान (आंध्र); तमाशा (महाराष्ट्र); रहस या रास, भगत, संपेड़ा, भरथरी, इन्दरसभा (उत्तर प्रदेश) इत्यादि नामों से प्रचलित हैं।

न्याय

अभिनय में आयुधों को प्रयुक्त करने तथा उनसे रक्षा करने के तरीके। यह चार प्रकार के होते हैं—भारत, कैशिक, सत्वत या प्रतिकार और वार्षगन्य।

न्यास

गीत का समाप्तिसूचक अर्थात् विश्रान्तिदायक अन्तिम स्वर 'न्यास' स्वर कहलाता है।

न्यास-विन्यास

न्यास का अर्थ है स्थापना या निक्षेप और विन्यास का अर्थ भी रखना स्थापना है। पैर को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखना और उसे लौटाकर पूर्व स्थिति में लाना 'विन्यास' कहलाएगा। अतः अंगों को फैलाने की क्रिया को केवल 'विन्यास' नाम से अभिहित किया जाएगा। गायन की विधा में इनका अन्य अर्थ होता है।

पकड़

उत्तर भारतीय संगीत में राग वाचक स्वर समूह को 'पकड़' कहते हैं।

पट्टी

ताल रहित एक पद, जिसका उच्चारण प्रथम स्वर से किया जाए और जिसमें एक यति हो।

पडार

ताल सम्बन्धी परन के जिस बोल पर लड़गुथाव किया जाता है, उसे 'पडार' कहते हैं।

पढ़न्त

शब्द या वाक्य को स्वरहीन रूप में बोलना ही 'पढ़न्त' या 'वाचन' कहलाता है। किसी बोल या परन को हाथ से ताली देते हुए बोलने की क्रिया को 'पढ़ंत' कहते हैं।

पड़ाल

मृदंग अथवा पखावज इत्यादि के बोल जब हाथ के द्वारा शब्द के अनुरूप प्रहार करते हुए निकाले जाते हैं, तो उसे 'पड़ाल' कहते हैं; छन्द के अनुरूप अवनद्ध वाद्यों पर निकाले जाने वाले 'पाटाक्षर'।

पताक

एक हस्तमुद्रा; अंगूठे के साथ फली हुई तथा मिली हुई अंगुलियाँ झुका देने से 'पताक हस्त' मुद्रा बनती है।

पताका

जो कथा काव्य या रूपक में बराबर चलती रहती है—सानुबंध होती है, उसे 'पताका' कहते हैं। इसका नायक आधिकारिक वस्तु के नायक का साथी होता है तथा गुणों में कुछ ही न्यून होता है, जिसे 'पताका नायक' कहते हैं; ध्वज।

पतुरिया

नाचने वाली गणिका या नर्तकी। इसे 'पातुर', 'पातुरा', 'पातुरनी' और 'पातुरि' भी कहा जाता है।

पद

गीत का चरण या चौथा भाग 'पद' कहलाता है। भक्तिपूर्ण साहित्यिक रचना को भी 'पद' कहते हैं। कर्नाटिक संगीत में इसे 'पदम्' कहते हैं।

पदवर्ण

स्तुतिमूलक अथवा शृंगार रस से परिपूर्ण रचना।

पदवर्णम्

नृत्य की प्रस्तुति में प्रस्तुत किया जाने वाला चौथा भाग। इसमें माधुर्य, भक्ति तथा शृंगार का भाव निहित रहता है। भरतनाट्यम् में पदवर्णम के बाद परम्परागत रूप से पाँचवां भाग 'पदम्' प्रस्तुत किया जाता है।

पदार्थाभिनय

किसी काव्य या पद के शब्दों पर उनके अर्थानुसार अभिनय करना।

पदान्तर विदग्धता

गीत के स्वरूप का अनुकरण करने की क्षमता 'पदान्तर विदग्धता' कहलाती है। दूसरी भाषा में इस गीत को 'पिक-अप' करने की क्षमता कहते हैं।

पद्धति

प्रकार; ढंग, शैली या परम्परा को 'पद्धति' कहते हैं।

परखाद

अति मंद्र सप्तक।

परचित्तपरिज्ञान

श्रोता तथा दर्शकों के मनोभाव को समझना 'परचित्तपरिज्ञान' कहलाता है।

परण

एक से अधिक आवृत्ति के बोल-समूह को 'परण' या 'परन' कहते हैं। इनमें अधिकतर दुहरे शब्दों की मिलावट रहती है—'थेईतत्', 'तत्थेई', 'ताथेई' आदि। पखावज के बोल भी इसमें मिले रहते हैं।

परदा

तत् वाद्यों को बजाने के निश्चित स्वर स्थानों पर प्रयुक्त धातु इत्यादि के टुकड़े को 'परदा' कहते हैं। प्राचीनकाल में इसे 'सारिका' कहा जाता था। तमिल भाषा में इसे 'हेट्टु' कहते हैं।

परमाठा

तंत्री वाद्यों में बाज के तार पर एक परन का संक्षिप्त अंश बजाकर अब उसे चिकारी के तार पर समाप्त किया जाता है, तो यह क्रिया 'परमाठा' कहलाती है।

परावृत्तशिर

पीछे की ओर घूमा हुआ सिर।

परिघट्टन

पूर्व रंग, जिसके अन्तर्गत वाद्य यंत्रों को उनके आवश्यक स्वरों में मिलाया जाता है।

परिवर्तन

पूर्व रंग, मंच पर चारों ओर सम्पूर्ण सृष्टि के देवी-देवताओं को नमस्कार करते हुए घूमना।

परिवर्तित ग्रीवा

अर्द्धचंद्राकार रूप में बाएँ और दाहिने चलती हुई गर्दन।

परिवाहित शिर

दोनों पार्श्व में चँवर की तरह हिलता हुआ सिर।

परी

सुन्दर स्त्री (पुरानी कथाओं के अनुसार उड़कर इच्छानुसार कहीं भी जा सकने वाली रूपवती स्त्री या अप्सरा)।

पलटा

बोलों का क्रम बदलने को 'पलटा' (पल्टा) कहते हैं। ताल या नृत्य के बोलों को उलट-पलटकर प्रस्तुत करना 'पलटा' कहलाता है। नृत्य करते समय अचानक गर्दन सहित दृष्टि को एक ओर झटके से मोड़ना तथा नृत्य की किसी विशेष गति का उलटा भाग भी 'पलट' या 'पलटा' कहलाता है।

पल्लवी

कर्नाटिक संगीत की संगीत रचना का प्रथम भाग 'पल्लवी' कहलाता है। दूसरे भाग को 'अनुपल्लवी' और तीसरे को 'चरण' कहते हैं।

पल्लु

सार्थक अथवा निरर्थक शब्दों या बोलों की गति को खंडित किए बिना समान लय में एक साथ प्रदर्शन करने की क्रिया को 'पल्लु' कहा जाता है; तिहाई का एक प्रकार।

पक्षिरत

जब किसी वाद्य की वादन क्रिया में दोनों हाथ संलग्न रहते हैं, तो इस क्रिया को 'पक्षिरत' कहा जाता है।

पांचाली

प्रवृत्तिया पांचालमध्यमा। इसके अन्तर्गत नाट्य प्रदर्शन में लौकिक आचरण प्रदर्शित किया जाता है।

पाट

अवनद्ध वाद्यों से सम्बन्धित वर्ण विशेष बोल या शब्द 'पाट' या 'पाटाक्षर' कहलाते हैं। इन्हें 'हस्तपाट' भी कहते हैं।

पाटजाति

अवनद्ध वाद्यों में प्रयुक्त वर्णात्मक ध्वनियों को विभक्त करने की क्रिया 'पाटजाति' कहलाती है। पाँच प्रमुख पाटजातियों के प्रकार इस प्रकार हैं—सद्योजाति, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और इतिशान। इन सबके भी सात-सात उपभेद होते हैं।

पाठ

जब किसी वाक्य में ध्वनि की ऊँचाई-निचाई तो हो, परन्तु स्वर अपने ठीक-ठीक स्थान पर न लगें, तो यह क्रिया 'पाठ' कहलाती है।

पाणि

हाथ।

पाणि वादक

हाथ से ताल देने वाले को 'पाणिवादक' कहते हैं।

पात

ताल की सशब्द क्रिया या आघात को 'पात' कहते हैं।

पात्र

विट; अभिनेता; वर्तन; अधिकारी।

पात्र कर्म

पूर्व रंग के अन्तर्गत विघ्न हर्ता गणेश तथा आकाश की प्रार्थना करके भूमि को नमस्कार करना चाहिए। तत्पश्चात् वाद्य-वादन सहित विधिपूर्वक पूजा करके अनेक प्रकार के मनोहर गान गाकर गुरु की आज्ञा से शृंगार करना चाहिए। इसके बाद रंग-स्तुति करे—'हे रंग-देवता, तुम नाट्यकारों के स्वामी हो। भाव और रस द्वारा आनन्द प्रदान करने वाले हो। तुम्हारी कला जगत को मोहित करने वाली है, तुम्हारी जय हो, तुम्हारी जय हो।

पात्र गुण

नाट्य में पात्र के दस आवश्यक गुण इस प्रकार बताये गए हैं—चपलता, स्थिरता, 'भ्रमरी' में प्रवीणता, सुदृष्टि, शुद्धमुद्रा, सहिष्णुता, स्मरण शक्ति, कला में श्रद्धा, शुद्धवाणी तथा गान में प्रवीणता। इन्हें पात्र के 'प्राण' कहा गया है।

पात्र दोष

नर्तक या नर्तकी के प्रस्तुत होने पर उससे सम्बन्धित अयोग्यता जैसे—स्थूलता या कृशता, गंजापन या हल्के बाल, कमजोर और अशुद्ध मुद्राएँ, आँख में भेंगापन, विकृत आवाज इत्यादि।

पात्र प्राण

पात्र अर्थात् कलाकार का जीवन, जो आन्तरिक और बाह्य दो प्रकार का होता है और जो नाट्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

पात्र लक्षण

नर्तक के गुण जैसे—यौवन से पूर्ण, सुन्दर शरीर से युक्त, स्थिर चित्त, कोमल व अंगसौष्ठव से युक्त, आकर्षक व्यक्तित्व वाला, नाट्य की सभी विधाओं में दक्ष, कुलीन, मधुर भाषी, सुन्दर नेत्र और मुखाकृति से युक्त, वयस्क, रस एवं भाव में निष्णात, साहसी, विनम्र, मधुर भाषी, गौरवर्ण अथवा श्याम वर्ण वाला।

पात्र सूचना

नाटक में जब स्थापक (नट) किसी पात्र की सूचना देते हुए नाटक के प्रथम अंक में उसके भावी प्रवेश का संकेत देता है, तो उसे 'पात्रसूचना' कहते हैं।

पादरेचक

पैर को इधर-उधर हिलाते हुए लड़खड़ाना अथवा प्रत्येक पैर को भिन्न-भिन्न प्रकार से हिलाना।

पादविन्यास

पैर उठाकर रखना।

पान

कर्नाटिक संगीत में राग का प्राचीन नाम।

पारिपार्श्विक

भरत के द्वारा अभिनीत नानारसाश्रययुक्त भाव को जो पार्श्व में ही स्थित रहकर परिष्कृत करता है, उसे 'पारिपार्श्विक' कहा जाता है।

पाश्चात्य वाद्य

भरत के अतिरिक्त अन्य देशों में प्रचलित संगीत सम्बन्धी वाद्य यंत्रों को पाश्चात्य वाद्य कहते हैं। इनमें कुछ बहुप्रचलित वाद्यों के नाम इस प्रकार हैं—क्लैरीनेट, ट्रम्पेट, गिटार, पियानो, मैंडोलिन, माउथ ऑर्गन, साइड ड्रम, केटिल ड्रम्स, टैम्बो राइन, वायोला, जाइलोफ़ोन, सिथे साइज़र, क्लेवॉयलिन, सेक्सोफ़ोन इत्यादि।

पिच

स्वर की स्थापना का निश्चित स्थान 'पिच' कहलाता है, जो अँग्रेजी का शब्द है। हिन्दी में इसे 'आधार स्वर' कह सकते हैं।

पिडिप्पु

राग का रंजक स्वर समुदाय। इससे राग का स्वरूप भी प्रकट होता है। उत्तर भारतीय संगीत में इसे 'पकड़' कहते हैं।

पिण्डी

नृत्य की एक आकृति-विशेष को 'पिण्डी' या 'पिण्डबंध' कहते हैं, जिसमें विभिन्न करण और अंगहारों का समावेश रहता है। 'नाट्यशास्त्र' में इसके ४ प्रकार बताए हैं—पिण्डी, शृंखलिका, बंध (लताबन्ध) और भेदक।

पिण्डी बन्ध या पिण्ड बन्ध

नर्तकों द्वारा करण तथा अंगहारों से युक्त नृत्य की आकृति विशेष को 'पिण्डी बन्ध' या 'पिण्डबन्ध' कहते हैं।

पुड़ी

ताल वाद्यों के मुख को ढकने वाला चमड़ा 'पुड़ी' कहलाता है।

पुत्तलिका

पुतली; पुत्तली या कठपुतली।

पुष्पगंडिका

लास्य के दस अंगों में से एक वह गेय, जिसमें वाद्यों का प्रयोग होता है। इसमें विविध छंद और स्त्री तथा पुरुष की विपरीत चेष्टा पाई जाती है।

पुष्पाञ्जलि

पूर्व रंग के अन्तर्गत हाथों में पुष्प लेकर अथवा पुष्पों की भावना से विघ्ननाश, भूतों की रक्षा, देवताओं की प्रसन्नता, दर्शकों की ज्ञान प्राप्ति, नायक तथा पात्र की रक्षा तथा आचार्य द्वारा दी गई शिक्षा की सिद्धि के लिए पात्र द्वारा 'पुष्पांजलि' अर्पित (प्रस्तुत) की जाती है।

पुस्त

रंगमंच या स्टेज पर बनाये जाने वाले प्रतिरूप (मॉडल), जैसे—हाथी, घोड़ा, नाव, झोपड़ी, महल इत्यादि। 'नाट्यशास्त्र' में तीन प्रकार की पुस्त-रचना बताई गई हैं—सन्धिम (भोजपत्र, वस्त्र या चर्म इत्यादि से निर्मित रूपाकृति); व्याजिम (वंत्रों के द्वारा कृत्रिम गति उत्पन्न कर किसी रूपाकार का प्रदर्शन); चेष्टिम (चेष्टाओं या मुद्राओं के द्वारा किसी रूप को प्रदर्शित करना)।

पुहुप पंजरी

नृत्य में स्तुति के बाद देवता के प्रति फूल चढ़ाने का भाव। इसे 'पुष्पांजलि' या 'पुहुपांजुरी' भी कहते हैं।

पूर्वरंग

नान्दी पाठ; अभिनय के प्रारम्भ में विघ्न-शांति के लिए किए जाने वाले कृत्य; रंग की प्रकल्पना पूर्व (पहले) में की जाती है, अतः वह 'पूर्वरंग' कहलाता है। जहाँ कला-पात, पादभाव, परिवर्त इत्यादि पूर्व में किए जाते हैं, उसे भी 'पूर्वरंग' कहते हैं। इससे नाट्य-प्रयोक्ता (नट-नटी आदि) परस्पर मनोरंजन करते हैं और सुविधा प्राप्त करते हैं।

पूर्वराग

पूर्वाङ्गवादी राग।

पूर्वाङ्ग

सप्तक का पूर्वार्द्ध अर्थात् षड्ज से मध्यम तक का भाग अथवा राग का प्रारम्भिक आधा भाग 'पूर्वाङ्ग' कहलाता है; पूर्व राग।

पेरणि

नर्तक का एक भेद; पुरुषोचित या तांडव नृत्य, जिसमें शरीर पर भस्म या राख लगाई जाती है। नर्तक अनेक घुंघरुओं को धारण करता हुआ तथा विभिन्न लयकारियाँ प्रदर्शित करता हुआ मृदंमनुमा वाद्य मद्दलम् के वादन पर नृत्य करता है। भारत के अनेक शिव मंदिरों में यह नृत्य शिव भक्तों द्वारा लौकिक ढंग से भी प्रस्तुत किया जाता है। 'पेरणि' के शरीर पर श्वेत भस्म (सफेद पाउडर) पुता रहता है, सिर पर बालों के गुच्छे लटके रहते हैं, अनेक चमकीले घुंघरू अर्थात् घर्घरिका उसकी पिंडलियों पर बंधे रहते हैं। यह मधुर भाषी, भगवान शिव को प्रिय पाँच प्रकार के घर्घर में निपुण अर्थात् घुंघरुओं के संचालन में निपुण, ताल और लय में कुशल, दर्शकों का मन मोहित करने वाला होता है।

पेशकार

ताल को प्रदर्शित करने वाला बोल समूह 'पेशकार' कहलाता है। इसके द्वारा ताल के ठेके का विस्तार किया जाता है।

पेलवि

तांडव का एक भेद; जिसमें अभिनय युक्त अंग विक्षेप किया जाता है।

पोषक स्वर

राग के स्वरूप को स्पष्ट करने वाला स्वर 'पोषक स्वर' कहलाता है।

प्रकम्पित ग्रीवा

कबूतरी के कंठ के समान आगे और पीछे की ओर हिलनेवाली गर्दन।

प्रकरण

रूपक के दस भेदों में से एक। इसका नायक मध्यम वर्ग का धीर-शान्त, धीरोदात्त तथा विघ्नों से युक्त होता है; जो धर्म, अर्थ तथा काम (त्रिवर्ग) में तत्पर होता है। 'प्रकरण' में सन्धि, प्रवेशक तथा रसादि का समावेश बिल्कुल 'नाटक' की तरह होता है। नायिका कुलीन या निम्न जाति की भी हो सकती है। 'नाटिका' की कथावस्तु 'प्रकरण' से ली जाती है।

प्रकृति हस्त

पृथ्वी, आकाश, पाताल, वृक्ष, पुष्प, वनस्पति, सागर, नदी तथा झरना इत्यादि को अभिनय द्वारा प्रदर्शित करने वाले हाथ या हस्त मुद्राएँ।

प्रकरी

जो कथा काव्य या रूपक में कुछ ही काल तक चलकर रुक जाती है, वह 'प्रकरी' नामक प्रासंगिक कथा-वस्तु होती है।

प्रचंड

तांडव का एक भेद, जिसमें रौद्र तथा वीभत्स रसों का मिश्रण रहता है। इसमें प्लुत, लंघित तथा भूयिष्ठ नामक करण, भ्रमरी, भौमचारी (भूमिचारी) का द्रुत गति से मध्य लय में प्रयोग होता है। शारदातनय के अनुसार तांडव 'चण्ड', 'प्रचण्ड', 'उच्चण्ड' के भेद से तीन प्रकार का होता है, जिन सब में आरभटी वृत्ति की परिकल्पना की जाती है और करण, अंगहार, गीत, वाद्य तथा लयादि उद्धत रूप से प्रयुक्त की जाती है। 'प्रचण्ड तांडव' में मध्यलय, आरभटी वृत्ति और समग्रह का प्रयोग होता है।

प्रच्छन्न न्याय

जब किसी राग में वर्जित स्वर का अल्प प्रयोग किया जाता है, तो इस कृत्य (क्रिया) को 'प्रच्छन्न न्याय' कहते हैं।

प्रच्छेदक

लास्य के दस अंगों में से एक। पति को अन्यासक्त मानकर प्रेम-विच्छेद के क्रोध व शोक से जब स्त्री वीणा के साथ गाती है, तो उसे 'प्रच्छेदक' कहते हैं।

प्रत्यंग

शरीर के गौण अंग; अभिनय में प्रयुक्त होने वाले प्रत्यंग छह बताये गए हैं; यथा—ग्रीवा (गरदन), दोनों हस्त (हाथ), पार्श्व (पीठ), कटि (कमर), दोनों ऊरु या जानु (जंघाएँ),

और दोनों पिंडलियां। अन्य आचार्यों ने इसमें कलाइयां, घुटने और भुजाएं (जिन पर आभूषण धारण किये जाते हैं) भी गिनाई हैं।

प्रत्याहार

पूर्व रंग, जिसके अन्तर्गत वाद्य यंत्रों की व्यवस्था की जाती है।

प्रपंच

वीथी का एक भेद, जहां पात्र आपस में एक-दूसरे की ऐसी अनुचित प्रशंसा करें, जो हास्य उत्पन्न करने वाली हो।

प्रपद

पैर का तलुवा या अगला भाग (पंजा)।

प्रबन्ध

गीत का प्राचीन नाम, जिसके अनेक भेद होते हैं। इसमें छः अङ्ग तथा चार धातु होते हैं। छः अङ्ग—१. स्वर (स रि ग म); २. विरुद (प्रस्तुत नायक की प्रशंसा का वर्णन); ३. पद (अर्थ का प्रकाशन करता है); ४. तेनक या तेन्नक (तेन शब्द ही तेन्नक है, जिसके उच्चारण पूर्वक आलाप किया जाता है। तेन शब्द का अर्थ 'तत्' या 'ब्रह्म' है। अतः यह श्रेयस्कर तथा मङ्गल वाचक है।); ५. पाट (ताल के अनुकूल वाद्य वर्णों का सन्दोह [प्राचुर्य] होना।); ६. ताल (काल और क्रिया का परिमाण)। चार धातु—१. विस्तार, २. आविद्ध ३. व्यंजन तथा ४. करण।

स्वर तथा ताल में निबद्ध होने के कारण प्रबन्ध को 'निबद्ध गान' भी कहा जाता है।

प्रमाण श्रुति

स्वर की प्रामाणिकता को सिद्ध करने वाली श्रुति 'प्रमाण श्रुति' कहलाती है; श्रुति के उत्कर्ष (ऊँचाई, तीखापन या तीव्रता), अपकर्ष (नीचाई या मंदता), मार्दव (तंत्री को ढीला करना), आयतत्व (तंत्री को कसना) से जो अंतर होता है, वह 'प्रमाण श्रुति' है; तंत्री के तीव्रत्व-मंदत्व के कारण ध्वनि के जिस विशेष अंतर या ऊँचाई का बोध होता है, उसका विशिष्ट परिमाण ही 'प्रमाण श्रुति' कहलाता है।

प्रयोगातिशय

यह आमुख का एक प्रकार है। इसमें सूत्रधार किसी पात्र का प्रवेश इस वचन का प्रयोग करते हुए करता है, कि 'यह वह आ रहा है।'

प्ररोचन

पूर्व रंग, जिसके अन्तर्गत निर्देशक नाट्य क्रियाओं का औचित्य सिद्ध करते हुए उन्हें तार्किक ढंग से प्रस्तुत करता है।

प्ररोचना

काव्य के अर्थ इत्यादि की प्रशंसा के द्वारा सामाजिकों को उसकी ओर उन्मुख करके उनके मन को आकृष्ट करना 'प्ररोचना' कहलाता है।

प्रलोकित दृष्टि

दोनों पार्श्वों में आँखों को घुमाना ।

प्रवृत्तक

यह आमुख का वह भेद है, जहां ऋतु के वर्णन की समानता के आधार पर श्लेष से रंगमंच पर किसी पात्र के प्रवेश की सूचना दी जाय ।

प्रवृत्ति

वेश तथा भाषा का अनुकरण तथा भिन्न-भिन्न देशों के आचार (व्यवहार) का प्रवर्तन ही 'नाट्य रीति' या 'प्रवृत्ति' के रूप में प्रचलित है, जो वृत्ति के आश्रित रहता है । लौकिक प्रवृत्ति चार प्रकार की बताई गई हैं—आवन्ती, दाक्षिणात्या, मागधी तथा पांचाली मध्यमा । विभिन्न प्रकार के वेश, आचार, भाषा तथा क्रियाकलाप या व्यवहार को सूचित करने के कारण इन्हें 'प्रवृत्ति' कहते हैं ।

प्रशांत

एक नाटक-प्रकार । इसमें युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान तथा परिभावन की योजना अवश्य होनी चाहिए ।

प्रस्तार

किसी बोल का विस्तार या फैलाव करने को 'प्रस्तार' कहते हैं ।

प्रस्थान

नृत्य भेद (रूपक) का एक प्रकार ।

प्रहर

दिन या रात्रि का कोई भी चौथा भाग 'प्रहर' कहलाता है ।

प्रहसन

रूपक के दस भेदों में से एक । इसमें 'मुख' तथा 'निर्वहण' नामक दो संधियाँ व छह रस होते हैं तथा इसमें एक ही अंक होता है । इसके शुद्ध, संकीर्ण तथा वैकृत तीन प्रकार बताए गए हैं । नाट्यदर्पणकार के अनुसार यह भारतीवृत्ति-युक्त, एकांकी, मुख तथा निर्वहण संधियुक्त एवं वीथ्यंगों से युक्त होता है ।

प्रागल्भ्य

मन में क्षोभ और घबराहट आदि का न होना 'प्रागल्भ्य' या 'प्रागल्भ्य-अलंकार' है ।

प्रातर्गेय

उत्तर भारतीय संगीत में प्रातःकाल गाये जाने वाले राग 'प्रातर्गेय' कहलाते हैं ।

प्रेक्षक

दर्शक या देखने वाले ।

प्रेक्षणक

नृत्य भेद (रूपक) का एक प्रकार ।

प्रेक्षागार

रंगशाला; प्रेक्षागृह ।

फ़रमाइशी चक्रदार

जब किसी तिहाई-युक्त बोल-समूह को तीन बार प्रस्तुत किया जाए, तो उसे 'फ़रमाइशी' चक्रदार कहते हैं ।

फिरत

समान अर्थात् बराबर की लय पर आकार की रीति से गीत के शब्दों का विस्तार करना 'फिरत' कहलाता है ।

फिरन

जब नर्तक कोई चाल प्रदर्शित करता हुआ आगे बढ़ता है और फिर उसी मुद्रा में द्रुत की लय में पीछे लौटता है, तो यह पीछे लौटने की क्रिया 'फिरन' या 'फिरना' कहलाती है।

बट्टा

वीणा जैसे तार वाद्यों पर बाँये हाथ की उँगलियों की बजाय जब किसी उपकरण से वादन किया जाता है, तो उस उपकरण को 'बट्टा' कहते हैं । अँग्रेजी में इसे 'राँड' कहते हैं ।

बढ़त

राग गायन में जब स्वरों को क्रमशः विलम्बित गति से बढ़ाते हुए द्रुतलय में प्रवेश किया जाता है, तो इस क्रिया को 'बढ़त' कहते हैं; गायन-वादन या नृत्य की लय बढ़ाना भी 'बढ़त' कहलाता है; बड़े खयाल में स्थायी और अन्तरा गाने के बाद आकार द्वारा राग का समान लय पर क्रमबद्ध विस्तार ।

बन्दिश

'बन्दिश' शब्द 'प्रबन्ध' का अनुवाद है, जो राग, ताल, विदारी, धातु और अंगों का समन्वित रूप है व जिसमें साहित्य और संगीत से युक्त कलात्मकता के दर्शन होते हैं । शब्द, स्वर, ताल और नृत्य के भेद से इनका अलग-अलग वर्गीकरण भी किया जा सकता है ।

बन्दी

चारण, भाट; स्वामी के वंश, पराक्रम तथा गुणों की स्तुति करने वाला ।

बहिर्गत

पूर्व रंग, जिसके अन्तर्गत संगीतकारों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करने के लिए वाद्य संगीत प्रस्तुत किया जाता है । जो वाद्य संगीत दैत्यों (राक्षसों) को संतुष्ट करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है, उसे 'निर्गत' कहते हैं ।

बहिर्प्राण

नर्तक का बाह्य जीवन, जिसमें ताल वाद्य (मृदंग), मधुर मंजीरे, तम्बूरा, वीणा, घुंघरू और एक मधुर कंठ युक्त पुरुष गायक का समावेश रहता है ।

बहुत्व

राग में जब किसी स्वर को बहुलता वा प्रधानता के साथ दिखाया जाए, तो इस क्रिया को 'बहुत्व' कहते हैं।

बहुरूपक

छेद, भेद और विविध भावों से सम्पन्न अभिनय 'बहुरूपक' कहलाता है।

बांधव हस्त

माता-पिता, दम्पति, पुत्र इत्यादि को प्रकट करने वाली हस्त मुद्राएँ 'बान्धव हस्त' कहलाती हैं।

बाँट

स्वरों तथा शब्दों का ऐसा विभाजन 'बाँट' कहलाता है, जिसमें उनके परिवर्तन से लय के विभिन्न स्वरूप बनते हैं; ताल वाद्यों में प्रयुक्त लग्गी के पलटों को 'बाँट' कहते हैं। उत्तर भारतीय ठुमरी गायन तथा नृत्य की संगत करने में कहरवा ताल की लग्गी को उलट-पुलट कर उसके बाँट बनाये जाते हैं। इसे 'फेंट', 'ब्रल', 'मिसिल', 'प्रकार', 'रौ' तथा 'पेंच' भी कहा जाता है। बाँट में मृदंग या तबले के बोलों को एक दूसरे के साथ सूक्ष्म रूप में गूंथने की क्रिया होती है।

बाज

घराने या परम्परा का तरीका या ढंग 'बाज' कहलाता है। किसी ताल का सम्पूर्ण प्रस्तुतीकरण भी 'बाज' कहलाता है; उत्तर भारत में ताल वाद्यों से सम्बन्धित घरानों को 'बाज' कहते हैं, जिसका सम्बन्ध विशिष्ट परम्परा या व्यक्ति से होता है। प्राचीन काल में इसे 'मार्ग' कहा जाता था।

बाज का तार

तत् वाद्यों में जिस प्रथम और मुख्य तार पर वादन क्रिया की जाती है उसे 'बाज का तार' कहते हैं। बाज के तार पर बाँये हाथ से वादन क्रिया और दाहिने हाथ से प्रहार या घर्षण की क्रिया की जाती है।

बानी (वाणी)

गायन या वादन की परम्परागत शैली को 'बानी' कहते हैं।

बान्धव हस्त

'अभिनय दर्पण' में 'बान्धव हस्त' के अन्तर्गत जो हस्त बताये गए हैं, वे इस प्रकार हैं— दम्पतिहस्त, मातृहस्त, पितृहस्त, श्वश्रूहस्त, श्वशुरहस्त, भर्तृ या भ्रातृहस्त, ननान्दृहस्त, ज्येष्ठकनिष्ठ भ्रातृहस्त, पुत्रहस्त, स्नुषाहस्त तथा सपत्नी हस्त।

बायडियर

हिन्दू नर्तकी को ब्रिटिश काल में 'बायडियर' कहा जाता था। इसका उल्लेख 'दि लिटिल ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी ऑफ़करंट इंग्लिश', सन् १९३७ के बाद तीसरे संस्करण में

किया गया है। अँग्रेज लोग संभवतः स्त्री को बाय (बाई) और नर्तकी को डियर (अर्थात् प्रिय) कहते थे।

बॉल

विदेशी सामाजिक नृत्य पद्धति, जिसके अन्तर्गत अनेक पाश्चात्य नृत्य विकसित हुए। इसका पूरा नाम 'बॉलरूम डान्स' कहते हैं।

बिआड़ी लय

मध्य लय से पौने दो गुनी ($१\frac{३}{४}$) लय को 'बिआड़ी लय' कहते हैं।

बिन्दु

वीणा या सितार जैसे ततवाद्यों पर सीधे हाथ की अनामिका अंगुली से बाहर की ओर छेड़ते हुए बांये हाथ की तर्जनी द्वारा उसी तार को दबाने पर जिस ध्वनि की उत्पत्ति होती है उसे 'बिन्दु' कहते हैं।

बीजसूचना

नाटक में नाटकीय कथावस्तु के बीज की सूचना देना ही 'बीजसूचना' कहलाता है।

बीनकार

वीणा वादक।

बेताल

ताल रहित या ताल च्युत।

बेसुरा

कर्कश; विस्वर या स्वरहीन संगीतकार को 'बेसुरा' कहते हैं।

ब्रेक

एक विदेशी नृत्य-पद्धति, जिसे 'ब्रेक डान्स' कहते हैं।

बैली

एक विदेशी नृत्य पद्धति, जिसमें कमर के संचालन की विशेषता होती है। इसे 'बैली डान्स' कहते हैं।

बैले

पाश्चात्य नृत्य-नाटिका, जिसमें किसी कथा का प्रस्तुतीकरण नृत्याभिनय के माध्यम से किया जाता है। इसमें भाव-प्रदर्शन आंगिक मुद्राओं द्वारा ही किया जाता है। चेहरा सपाट रहता है, जिस पर कोई भाव नहीं होता। 'बैले' का शुद्ध उच्चारण 'बाले' है। इसका हिंदी पर्याय 'संगीतिका' है।

बोल

गीत-वाद्य या नृत्य के शब्दों को 'बोल' कहते हैं। ताल वाद्यों में इन्हें 'पाटाक्षर' कहा जाता है। वर्ण-विशेषों को लेकर उनकी तालमय रचना ही 'बोल' कहलाती है। 'नृत्यांगी बोल'

में नृत्य के 'ता थेई' आदि वर्णों का समावेश किया जाता है। 'तालांगी बोल' में तबला, मृदंग आदि वाद्यों के वर्ण रहते हैं। 'कवितांगो बोल' में काव्य के सार्थक शब्दों का समावेश रहता है और 'संगीतांगी बोल' में विभिन्न राग-रागिनियों की प्रधानता रहती है।

तत्वाद्यों में हाथ के प्रहार या गज के घर्षण से अन्दर या बाहर की ओर संचालन करने की क्रिया से जो स्वर उत्पन्न होते है, उन्हें 'बोल' कहा जाता है। इन्हीं बोलों को तबला तथा पखावज जैसे अवनद्ध वाद्यों में 'पाट' या 'पाटाक्षर' कहा जाता है। मनुष्य के मुख से निकली ध्वनि को अक्षर या शब्द, अवनद्ध वाद्यों से निकली ध्वनि को 'पाट' तथा अन्य वाद्यों की ध्वनि को 'बोल' कहा जाता है।

चहचहाहट, कलरव, हिनहिनाहट, सरसराहट, बुदबुदाहट, सिसिआहट, खुसफुसाहट, तड़तड़ाहट, बड़बड़ाहट, चरचराहट, टरटराहट, थरथराहट, घड़घड़ाहट, धड़धड़ाहट, टपटपाहट, छपछपाहट, खनखनाहट, छनछनाहट, फरफराहट, मरमराहट, झरझराहट, घिघिआहट, गिड़गिड़ाहट, चिड़चिड़ाहट, गुरगुराहट, खिलखिलाहट, भड़भड़ाहट, सिटपिटाहट, किचकिचाहट, सुरसुराहट, कड़कड़ाहट, झनझनाहट, गड़गड़ाहट, दहाड़, फूत्कार, भन्नाहट तथा गुनगुनाहट इत्यादि शब्दों के द्वारा उनसे सम्बन्धित वस्तुएँ स्वयं साकार हो जाती हैं अथवा उनके अर्थ-सम्बन्ध का ज्ञान हो जाता है। सभी ध्वनियाँ या 'बोल' मीठे, कड़वे और कर्कश इन तीन प्रकारों में विभक्त किए जा सकते हैं।

बोल तान

विविध छंद या लय में निबद्ध गीत के बोलों से सज्जित तान को उत्तर भारतीय संगीत में 'बोल-तान' कहते हैं।

भंगि या भंगिमा

शरीर की एक विशेष आकृति (कुटिलता या टेड़ापन) को 'भंगि' या 'भंगिमा' कहते हैं। पूरा शरीर सीधा तानकर रखा जाए, तो उसे 'एक-भंग'; जब कमर में बल देकर शरीर को दो हिस्सों में बांट दिया जाए, तो उसे 'द्विभंग' और जब घुटना, कमर और गर्दन इन तीनों को बल (मोड़) देकर रखा जाए (जैसे भगवान् कृष्ण की मुद्रा), तो उसे 'त्रिभंग' या 'त्रिभंगी' कहा जाता है।

भजन

देवी-देवताओं से सम्बन्धित भक्तिमूलक गायन को 'भजन' या 'भक्ति गान' कहते हैं।

भरत

'नाट्यशास्त्र' ग्रन्थ के रचयिता एक महर्षि; जो भाषा-वर्ण-उपकरणों के द्वारा नाना प्रकृति से युक्त वेश, अवस्था, कर्म, चेष्टा आदि को धारण करता है, वह 'भरत' कहलाता है; एक गोत्रवाची संज्ञा; नट।

भरतनाट्यम्

दक्षिण भारतीय नृत्य की एक शैली, जो मद्रास और तंजौर (तमिलनाडु प्रदेश) में अधिक प्रचलित है। देवदासियों द्वारा किए जाने के कारण इसका नाम 'दासी-अट्टम्' पड़ा। दक्षिण में

पर्शियन प्रभाव के कारण इसे 'सदिर नाच' या 'सदिराट्टम्' कहा गया। 'भरतनाट्य' या 'भरतनाट्यम्' में शास्त्रोक्त अंग, मुद्रा, चारी और अभिनय की प्रचुरता होती है तथा ताल और लय का काम बहुत उत्कृष्ट होता है।

भरी (ताली)

जिन मात्राओं से ताल के विभाग प्रारम्भ होते हैं और ऐसे स्थानों पर जब ताली लगाई जाती है, तो उसे 'भरी' या 'भरी मात्रा' कहते हैं। यह ताल के खण्डों को प्रदर्शित करती है।

भाँड़

नकल करने वाला अभिनेता या नट; मसखरा; बहुरूपिया; नाचने गाने का पेशा करने वाली एक जाति।

भागवतार

दक्षिण भारत के कथाकार, जो नृत्य-प्रधान रचनाओं का गान या कीर्तन करते हैं, 'भागवतार' कहलाते हैं।

भाट

यश, वंश या चरित्र का गान करने वाला; बन्दी; एक जाति; स्तुतिपरक तुकबन्दी करने वाला; मागध।

भाण

रूपक के दस भेदों में से एक। इसमें भारती वृत्ति, स्वानुभूत या परानुभूत शृंगार रस, धूर्त चरित का वर्णन, एक ही विट (पात्र की उक्ति), आकाशभाषित, मुख एवं निर्वहण सन्धि तथा एक अंक की योजना होती है। इसमें उत्पाद्य वस्तु तथा दशविध लास्यांग होते हैं। कुछ ग्रन्थकारों के मतानुसार इसमें एक नवीन अंग भाविक भी होता है। शारदातनय इसके अन्तर्गत गुल्म, शृंखला, लता तथा भेद्यक इन चार प्रकार के नृत्तों का उल्लेख भी करते हैं, जिनका ज्ञान भद्रासन तथा यंत्र के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

भारती वृत्ति

नट के द्वारा प्रयुक्त संस्कृत भाषा वाला वाग्व्यापार 'भारती वृत्ति' कहलाता है। इसके प्ररोचना, वीथी, प्रहसन तथा आमुख ये चार भेद पाये जाते हैं।

भाव

मन से उत्पन्न इच्छा या विकार। ये सनातन रूप से हृदय में विद्यमान रहते हैं, जिनसे रसों की उत्पत्ति होती है। कथक नृत्य में भाव प्रदर्शन की सात विधियाँ प्रचलित हैं—नयन-भाव, बोल-भाव, अर्थ-भाव, समा-भाव, नृत्य-भाव, गत-अर्थ-भाव और अंग-भाव। भरत के अनुसार मानसिक अवस्थाओं का व्यंजक प्रदर्शन ही 'भाव' है।

भाव हस्त

विभिन्न भाव और रसों को प्रकट करने वाली मुद्रा।

भाषा

देसी संगीत की शैली; विभिन्न रागों से उत्पन्न रागविशेष जैसे—'बसंत बहार' इत्यादि।

आस्वर

एक नाटक-प्रकार। इसमें आक्षापवाद, सम्फेट, प्रसंग, विद्रव तथा संग्रह नामक अंगों की योजना होती है।

भ्रमर हस्त

'संगीत रत्नाकर' में उल्लिखित तंत्री वाद्यों पर सीधे हाथ के संचालन की क्रिया को 'भ्रमर हस्त' कहा गया है। इसमें तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा इन चारों उँगलियों से शीघ्रतापूर्वक आघात किया जाता है। वर्तमान काल में सितार वाद्य पर 'भ्रमर हस्त' क्रिया द्वारा ही 'झाला' प्रस्तुत किया जाता है। अतः भ्रमर हस्त 'झाला' का प्राचीन और शुद्ध स्वरूप है।

भ्रमरी

भौंरी (भौंरी या भँवरे की तरह गोलाकार रूप में घूमना)।

भ्रू-चालन

नेत्रों का एक कर्म। इसे 'भृकुटि चालन' भी कहते हैं।

मंगलम्

सभा के अन्त में शुभ प्रार्थना के रूप में गाया जाने वाला गीत; कर्नाटिक संगीत में किसी संगीत अथवा नृत्य सम्बन्धी कार्यक्रम के अन्त में प्रस्तुत किया जाने वाला भाग, जिसे मंगल सूचक माना जाता है। इसे प्रायः मध्यमावती राग में प्रस्तुत किया जाता है।

मंत्री

नाट्य में मंत्री के लक्षण इस प्रकार बताये गए हैं—अविचल बुद्धिवाला, कुशल वक्ता, धनवान, यश का चाहने वाला, राज्य-शासन को जानने वाला, गुण-दोष पहचानने वाला, शृंगार लीला को जानने वाला, निष्पक्ष, नीति-निपुण, सहृदय, अनेक भाषाओं का सुविज्ञ विद्वान तथा सुकवि।

मगुडि

कर्नाटिक संगीत में सपेरे के बीन पर बजने वाली लोक धुन। कभी-कभी इसका प्रयोग वादकों द्वारा अन्य धुनों के साथ कार्यक्रम के अन्त में भी किया जाता है।

मणिपुरी नृत्य

भारत के असम तथा मणिपुर प्रदेश में प्रचलित एक कोमल, सुकुमार तथा शृंगारप्रधान नृत्यशैली, जिसमें प्रायः धार्मिक गाथाओं का प्रदर्शन होता है। 'रासलीला' इस नृत्य की विशेषता है।

मणि प्रवालम्

ऐसी संगीत रचना, जिसमें दो भाषाओं का योग हो, जैसे संस्कृत और तेलुगू अथवा संस्कृत और मलयालम अथवा संस्कृत और तमिल। कभी-कभी इसमें तीन भाषाओं का मिश्रण भी रहता है।

मण्डल

एक पैर से भरा जाने वाला डग 'चारी' तथा दोनों पैरों से होने वाली गति को 'करण' कहते हैं। तीन करणों का योग 'खण्ड' कहलाता है तथा तीन अथवा चार खण्डों के मिलने से एक 'मण्डल' का निर्माण होता है। इस प्रकार चारियों के समूह या मिश्रण से बनने वाले मण्डलों के दो भेद बताए गए हैं—'भौमिक मण्डल' और 'आकाश मण्डल'। इन दोनों के भी दस-दस प्रकार बताये गए हैं। भरत के अनुसार मण्डलों को युद्ध, बाहुयुद्ध तथा घूमने (परिक्रमण) में लीलायुक्त अंग-माधुर्य की प्रधानता लिए वाद्यों की संगति के साथ प्रदर्शित करना चाहिए।

मत्तवारिणी

रंग-मंच के दोनों ओर चार खम्भों को गाड़कर मत्तवारिणी बनाई जाती है। इसके खम्भों की ऊँचाई रंग-मंच की लम्बाई के बराबर होती है।

मद्रक

प्राचीन सप्तगीतों में से एक प्रकार।

मधाय श्रुति

तार वाद्यों को तत्सम्बन्धित स्वर में मिलाने की विधि।

मध्यम ग्राम

मध्यम संज्ञक ग्राम; एक विशिष्ट ग्राम राग।

मध्य लय

जो लय न तो बहुत धीमी अर्थात् 'विलंबित' हो और न बहुत तेज अर्थात् 'द्रुत' गतिवाली हो, उसे 'मध्य-लय' कहते हैं।

मनका

तंतुवाद्यों में तारों की ध्वनि को सूक्ष्म रूप से चढ़ाने या उतारने की क्रिया में सहायता देने वाला गोल टुकड़ा 'मनका' कहलाता है। यह प्लास्टिक या हड्डी इत्यादि से बना हुआ 'मोती' की आकृति वाला होता है, जिसे 'घुड़च' और 'लंगोट' के बीच में तारों के अन्दर पिरो कर डाल दिया जाता है।

मनोधर्म संगीत

कर्नाटिक संगीत में नवनिर्मित शुद्ध संगीत को 'मनोधर्म संगीत' कहते हैं, जिसकी सृष्टि संगीतकार द्वारा उसकी तात्कालिक योग्यता अथवा ज्ञान के आधार पर होती है। 'मनोधर्म'

संगीत के चार भाग होते हैं—राग आलापना, मध्यमकला, तान-गान, पल्लवी और स्वर-कल्पना। इसमें निरावल (साहित्य प्रस्ताव) भी जोड़ दिया जाता है।

मल्लारी

कर्नाटिक संगीत में राग गम्भीर नाट और आदि ताल में निबद्ध रचना, जो प्रायः नागस्वरम् द्वारा प्रस्तुत की जाती है। इसका प्रयोग देवालयों के दस दिवसीय वार्षिक उत्सवों में किया जाता है।

मल्लिका

नृत्य-भेद (रूपक) का एक प्रकार।

मसक

लास्य का एक भेद; ताल-लय के साथ धीरे से श्वास लेने व छोड़ने से वक्ष (सीना) का जो उतार-चढ़ाव होता है, उसे 'मसक' कहते हैं। अशोकमल्ल ने देशी लास्यांगों के अन्तर्गत एक 'यसक' नामक लास्यांग की चर्चा की है, जो ललित हस्त को कुचों के नीचे ले जाने से बनता है। संभव है 'कसक' या 'मसक', 'धसक' का अपभ्रंश हो।

मसीतख़ानी गत

विलम्बित लय में एक परम्परागत सितार-गत के बोलों का निश्चित ढाँचा।

महचरि

पूर्व रंग, जिसके अन्तर्गत उग्रभाव से युक्त गति का प्रदर्शन किया जाता है।

माँझ या माँझा

वाद्य संगीत में स्थायी और अन्तरा का मध्यवर्ती भाग; सितारवाद्य में मसीतख़ानी अर्थात् विलम्बित गतों के स्थायी अन्तरा में से स्थायी के अन्तर्गत जब उसका मंद्र सप्तकीय एक भाग स्थायी के साथ जोड़कर बजाया जाता है, उसी को 'माँझ' कहते हैं। इसी प्रकार का एक भाग अन्तरा के साथ भी संयुक्त किया जाता है। ये दोनों भाग 'माँझ' कहलाते हैं। 'माँझ' सितार जैसे तंत्री वाद्य पर स्थायी और अन्तरा को समृद्ध करने वाला भाग है। ध्रुपद गायन के अन्तर्गत इसे 'संचारी' कहा जाता था। 'माँझा' की क्रिया से तत्सम्बन्धी राग का स्वरूप भी स्पष्ट हो जाता है।

मागध

भाट का पेशा करने वाली एक वर्णशंकर जाति, जो स्तुति-पाठ में कुशल होती है। मागधी गीतों से राजा व प्रजा का मंगलगान करने वाला 'मागध' कहलाता है।

मागधी

चतुर्विध गीतियों में से एक प्रकार।

माठा

तंतुवाद्यों में बाज के तार और चिकारी के तार पर जब क्रमपूर्वक लड़ी और लड़गुथाव का काम किया जाता है, तो इस क्रिया को 'माठा' कहते हैं।

माण

नृत्य-भेद (रूपक) का एक प्रकार।

माणिका

नृत्य-भेद (रूपक) का एक प्रकार।

मातु

पद शब्द या गीत का साहित्य-अंग।

मातुकार

गीत की भाषा अथवा वाक्-पक्ष की रचना करने वाला व्यक्ति 'मातुकार' कहलाता है। आजकल की भाषा में इसे 'कवि', 'शब्दकार', 'गीतकार' या अंग्रेजी में 'लिरिक राइटर' कहते हैं।

मातृकाएँ

स्थान, चारी और नृत्त-हस्तों को 'मातृकाएँ' कहा जाता है। मातृकाओं के सहयोग से करणों का निर्माण होता है।

मात्रा

१. मनुष्य के द्वारा अनुभव में आने वाले सूक्ष्मतम 'कालखंड', 'भाग' या 'समय' को नापने का न्यूनतम परिमाण अथवा पैमाना 'मात्रा' कहलाता है। मात्राओं के योग को 'कला' कहते हैं। 'मात्रा' की कलावधि को निश्चित रूप से बताने के लिए शास्त्रकारों ने कालांगों का निरूपण क्षण, लव, काष्ठा, निमेष आदि सूक्ष्म काल भेदों में किया है।

२. ताल को जिस इकाई द्वारा नापा जाता है, उसे मात्रा कहते हैं। साहित्य में सस्वर ह्रस्व वर्ण एक मात्रा वाले और दीर्घ वर्ण दो मात्रा वाले कहलाते हैं।

माधुर्य

रमणीयता या मधुरता को ही 'माधुर्य' या 'माधुर्य अलंकार' कहते हैं।

मायूरी

मार्जना का विशिष्ट प्रकार।

मार्ग

ताल देने के रास्ते को 'मार्ग' कहा जाता है; आंगिक अभिनय द्वारा विविध भावों का प्रदर्शन जब नृत्य के द्वारा किया जाता है, तो उसे 'मार्ग' के नाम से जाना जाता है; शास्त्रोक्त या शिष्टसम्मत संगीत प्रणाली; ताल के अन्तर्गत कला प्रसार की शैली।

मार्गासारित

जिसके अन्तर्गत ढोल के स्वर को तारवाद्यों के साथ मिलाकर सम्मिलित रूप से बजाया जाता है।

मार्गी संगीत

शास्त्र पर आधारित प्राचीन संगीत को 'मार्ग' या 'मार्गी संगीत' कहा जाता था।

मार्जना

मृदंग के मुख पर मृत्तिका (मिट्टी) के लेख (लेप) द्वारा स्वर स्थापन करना मार्जना-विधि कहलाती है।

मार्दव

उतारने या ढीला करने की क्रिया; 'शिथिलीकरण', जो वीणा इत्यादि के तार ढीले करने पर होता है।

मालक्रिया

हाथ के विविध दिशाओं में घुमाने की क्रिया को 'माल' कहा जाता है। इसके सात प्रकार बताए हैं—१. विष्णु माल (क्योंकि विष्णु एक हैं), २. जीव माल (जीव दो हैं, जीवात्मा और परमात्मा), ३. गुण माल (गुण तीन हैं—सत, रज और तम), ४. युग माल (युग चार हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, ५. तत्त्व माल (तत्त्व पाँच हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश), ६. ऋतु माल (ऋतुएँ छह हैं—बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर) तथा ७. लोक माल (लोक सात हैं—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्य लोक)। इनमें प्रारम्भिक छह माल तो गति तथा तोड़ों में प्रयुक्त होती हैं और सातवाँ 'लोक माल' परिलन्य हस्तक और करण में प्रयुक्त होती है।

मिरासी

एक संगीत जीवी जाति या वर्ग विशेष।

मींड़

एक स्वर से दूसरे स्वर तक धनुषाकार गति से बिना रुके जाना 'मींड़' कहलाता है।

मुर्की

द्रुत लय में वक्र स्वरों के लगाव को 'मुर्की' कहते हैं। इसे 'गिटकरी' भी कहा जाता है।

मुक्त तार

तंत्री वाद्य में बिना किसी दबाव के सीधा कसा या तना हुआ तार 'मुक्त तार' कहलाता है।

मुक्तय

तीन बार प्रस्तुत किये जाने वाले ताल-बोलों का समूह जैसे—तदिगिनतम्–तदिगिनतम्–तदिगिनतम् । इन्हें 'जाति' या 'तीर्मणम्' के अन्त में प्रस्तुत किया जाता है । अनेक बार कई आवर्तनों में भी इन्हें प्रस्तुत किया जा सकता है । उत्तर भारत में इसे 'तिहाई' या 'चक्करदार तिहाई' कहते हैं ।

मुख चालन

रागोचित विविध गमक-अलंकारों का प्रयोग करते हुए गायन-वादन करना ।

मुखज

मुख के द्वारा अभिनय की क्रिया को 'मुखज' कहते हैं ।

मुखड़ा

किसी भी रचना का प्रारम्भिक भाग; तालवाद्य पर ठेका शुरू होने के बाद जब कोई छोटा बोल बजाया जाता है, तो उसे 'मुखड़ा' कहते हैं ।

मुख राग

मुख का रंग । इसके चार प्रकार बताये गए हैं—प्रसन्न, रक्त, स्वाभाविक और श्याम ।

मुखरी

मृदंग या तबला के बोलों की रचना करने, उनका स्पष्ट उच्चारण करने तथा नृत्त की शिक्षा देने में समर्थ व्यक्ति 'मुखरी' कहलाता है । वह गीत की संगति में भी निपुण होता है। मृदंग-वादक उसके निर्देश के अनुसार उसके मुख की ओर देखकर बजाते हैं, इसलिए उसे 'मुखरी' कहा जाता है । 'मुखरी' का सहायक 'प्रतिमुखरी' कहलाता है ।

मुखविलास

मुख पर संकोचपूर्ण प्रसन्नता के भाव 'मुखविलास' कहलाते हैं ।

मुखसूचना

नाटक में श्लेष के द्वारा जब वस्तु की सूचना दी जाती है, तो उसे 'मुखसूचना' कहते हैं।

मुद्रा

शरीर के अंग प्रत्यंगों की विशेष स्थिति या चेष्टा 'मुद्रा' कहलाती है । मुद्रा दो प्रकार की होती है—भाव–मुद्रा (हृदय की भावनाओं की प्रतीक) और अनुकरण–मुद्रा (अनुकार्य की रूपरेखा और स्वभाव को अंग-प्रत्यंगों द्वारा प्रदर्शित करना) ।

मुद्रा-भाषा

शरीर की विभिन्न आकृतियां चेष्टाओं तथा अंग-मुद्राओं से जो अभिव्यक्ति होती है, उसे 'मुद्रा-भाषा' कहते हैं ।

मूकनाट्य

संवादहीन रूपक या नाटक (मिमो ड्रामा)।

मूकाभिनय

केवल चेष्टाओं द्वारा भाव की अभिव्यक्ति करना 'मूकाभिनय' (पैन्टोमीम) कहलाता है।

मूर्च्छना

सप्तक में क्रमानुसार पांच, छह या सात स्वरों का प्रयोग, जो आरोह एवम् अवरोहात्मक होता है, 'मूर्च्छना' कहलाता है।

मृदंगिक या मार्दंगिक

मृदंग वादन करने वाला। शास्त्र में मार्दंगिक के गुण इस प्रकार बताये हैं—प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला, बुद्धिमान, गीत-संगीत और ताल में कुशल, चपल उँगलियों वाला, अच्छी स्मृति (मेधा) वाला, ताल और लय के भेद तथा उससे सम्बन्धित शास्त्रों का ज्ञाता।

मृदव

वीथी का एक भेद। जहाँ कोई पात्र गुणों को दोष बताकर तथा दोषों को गुण बताकर कहे, उसे 'मृदव' कहते हैं।

मेरुखण्ड या मीरखण्ड

खण्ड मेरु; कूट तानों के प्रसार की प्रक्रिया।

मेरु या अटी

ततवाद्यों में खूँटियों की ओर से दूसरी पट्टिका 'मेरु' या 'अटी' कहलाती है। यह 'तार गहन' के पास ही लगी होती हैं और सभी तार इसके ऊपर होकर जाते हैं।

मेलम्

संगठित रूप से बजाये जाने वाले वाद्यों का समूह। नाग स्वरम् के साथ बजने वाला वाद्य समूह 'पेरियामेलम्' कहलाता है। भरत नाट्यम् के साथ बजने वाला वाद्य समूह 'चिनमेलम्' कहलाता है, जिसमें गायक, वादक, नर्तक व नर्तकी भी सम्मिलित रहते हैं। शास्त्रीय संगीत का वाद्य वृन्द 'संगीत मेलम्' कहलाता है, जिसे तेलुगु में 'पल्लकि' 'शेव प्रबन्धम्' कहते हैं। लोक वाद्यों का समूह 'नलयन्दि मेलम्' कहलाता है और ग्रामीण क्षेत्र के वाद्ययंत्रों का समूह 'ऊमि मेलम्' कहलाता है।

मेलम् कट्टुदल

कर्नाटिक संगीत में महफ़िल सम्बन्धी रंग जम जाने को 'मेलम् कट्टुदल' कहते हैं।

मेलापक

प्रबन्ध का दूसरा अंग अथवा खण्ड।

मोटित

गठरी-मुटरी की तरह बँध जाना।

मोट्टित

उत्प्लवन; जिसमें कर्तरि उत्प्लवन की भाँति दोनों ओर उछला जाता है।

मोहरा

ताल का ठेका या सम पकड़ने के लिए किसी छोटे बोल समूह को तिहाई या बिना तिहाई के बजाना 'मोहरा' कहलाता है। इसे 'मुखड़ा' भी कहते है।

मोहिनीअट्टम्

भरतनाट्यम् और कथकलि नृत्य शैलियों के प्रभाव से जन्मी एक नृत्य शैली, जो केरल-प्रदेश में प्रचलित है। यह विशुद्ध मनोरंजन प्रधान होती है। भगवान् विष्णु के मोहिनी रूप की प्रतिस्वरूप वह नृत्य-शैली मलियाली कला का प्रतिनिधित्व करती है।

मौसीक़ी

संगीत की कला को उर्दू में 'मौसीक़ी' कहते हैं।

यक्षगान

दक्षिण भारत के कर्नाटक प्रदेश का नृत्य-नाट्य। इसमें गीत, संवाद और नृत्य तीनों परस्पर गुँथे हुए रहते हैं। इसका प्रदर्शन 'दशावतार आटा' या 'भागवतार आटा' कहलाता है।

यजुस्

यजुर्वेद के मंत्रों को 'यजुस्' कहा जाता है।

यति

लय की चाल को 'यति' कहते हैं। यह पाँच प्रकार की होती है; यथा—समायति, स्रोतागता या स्रोतोवहा, मृदंगा, पिपीलिका और गोपुच्छा।

यम

स्वर की वैदिक संज्ञा।

येडुप

मन्द्र सप्तक में स्थाय (छोटे-छोटे स्वर समूह का प्रयोग) की क्रिया को 'येडुप' कहते हैं।

यौवत

लास्य नृत्य का एक भेद, जिसमें नायिका अकेले ही नाचती है।

रंग

मंच, (स्टेज) जहाँ नट-नटी परस्पर अनुरंजन करने से मुदित होते हैं।

रंग पीठ

कोमल और एकसी सतह वाला रंगमंच तथा विभिन्न-देवी देवताओं की पूजा करने का विधान। आजकल आरती और पुष्पांजलि प्रचलित है।

रंग प्रवेश

अरंगेत्रम; नर्तक या नर्तकी द्वारा जब रंगमंच पर सबसे पहला कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है, तो उसे 'रंगप्रवेश' कहते हैं।

रंगमंच

ऐसा स्थान, जहाँ नाटक इत्यादि का प्रदर्शन किया जाए। इसे 'रंगपीठ' या 'रंग' भी कहते हैं। अँग्रेजी में इसे 'स्टेज' या 'डायस' कहते हैं।

रंगशीर्ष

मंच का ऊपरी भाग या सतह।

रंगस्थल

नटों के अभिनय करने वाला स्थान।

रक्क़ास

उर्दू में नर्तक या नाचने वाला व्यक्ति 'रक्क़ास' कहलाता है।

रक्क़ासा

उर्दू में नाचने वाली, नर्तकी या नर्तनियाँ को 'रक्क़ासा' कहते हैं।

रक्त

गीत और वाद्य का पूर्णतः आपस में मिल जाने का गुण 'रक्त' कहलाता है।

रक़्स

उर्दू में नाच या नृत्य को 'रक़्स' कहते हैं।

रक़्सगाह

नाट्यशाला, नाचघर।

रक्सोसुरोद

नाच-गाना या नाच रंग।

रक़्सेताउस

एक नाच, मोर-नाच।

रक़्सेपैहम

लगातार किए जाने वाला नाच, जो जल्दी खत्म न हो।

रक्ति

रंजक अभिव्यक्ति।

ज़ाख़ानी गत

द्रुत लय में एक परम्परागत सितार गत के बोलों का निश्चित ढाँचा।

रम्बा

एक विदेशी नृत्य पद्धति।

रस

हृदय में स्थित भावों से उत्पन्न होने वाला तत्त्व या आनन्द। इसके नौ प्रकार माने गये हैं—शृंगार, हास्य, करुण, वीर, बीभत्स, रौद्र, भयानक, शान्त और अद्‌भुत।

रॉक एण्ड रोल

एक विदेशी नृत्य पद्धति।

राग

विशिष्ट स्वर और वर्ण से विभूषित ऐसी रचना, आकृति या बंदिश 'राग' कहलाती है, जो मन का रंजन करे। दूसरे प्रकार से कहा जा सकता है कि विशिष्ट क्रम तथा विशिष्ट अनुपात में प्रयुक्त कम से कम पाँच स्वरों का विशिष्ट प्रयोग 'राग' कहलाता है।

रागाङ्ग

राग का वह भाग जो अन्य रागों को जन्म देता है 'रागाङ्ग' कहलाता है।

राग-जाति

पांच स्वरों वाले राग को 'औड़व', छः स्वरों वाले राग को 'षाड़व' और सात स्वरों वाले राग को 'सम्पूर्ण' जाति वाला राग कहते हैं।

राग ताल मालिका

विभिन्न राग और विभिन्न तालों में निबद्ध संगीत रचना।

रागमाला

उत्तर भारतीय संगीत की एक गायन शैली। इसमें विभिन्न रागों का क्रमशः पूर्ण रूप में दर्शन होता है। इसे 'राजसागर' भी कहते हैं।

राग मालिका

ऐसी संगीत रचना जो विभिन्न रागों की छाया से युक्त हो अथवा जिसका निर्माण विभिन्न रागों के सहयोग से किया गया हो।

रामलीला

उत्तर भारत का पारम्परिक लोक-नाट्य। इसमें राम-कथा प्रदर्शित की जाती है।

रासक तथा नाट्यरासक

नृत्य-भेद (रूपक) का एक प्रकार।

रास नृत्य

उत्तर भारत के पश्चिमी क्षेत्र में प्रचलित एक प्राचीन नृत्य शैली, जिसमें भगवान् कृष्ण की लीलाओं को नृत्य-नाट्य के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। प्राचीनकाल में इसे 'हल्लीसक' तथा 'रासक' कहा जाता था।

रीति

ढंग; शैली; पद्धति; प्रकार, तरीक़ा; घराना; सम्प्रदाय; मार्ग; परम्परागत क्रिया।

रूपक

निबद्ध गान का एक भेद, जिसमें नाटकीय तत्वों पर बल दिया जाता था। जैसा कि आजकल नौटंकी जैसे लोकनाट्य अथवा पाश्चात्य जगत के 'ऑपेरा' में होता है। शास्त्रीय संगीत के गायन में जब नाटकीयता का मिश्रण रहता है, तो उसे भी 'रूपक' की संज्ञा दी जाती है।

रूपकालप्ति

रूपकालाप; ताल बद्ध आलाप-प्रबन्ध।

रेचक

शारीरिक अंगों के स्वतन्त्र एवम् व्यवस्थित रूप से वलन या चक्राकार घुमाव लेने की क्रिया 'रेचक' 'रेचन' या 'रेचित' कहलाती है जिसका उठान या गति प्रायः ऊपर की ओर होती है। करण तथा अंगहारों के अंगरूप एवम् नृत्त व नृत्य के विविध प्रयोगों में रेचकों की योजना की जाती है। सुकुमार गति और वाद्यगत प्रधानता रखने वाले प्रयोगों में भी 'रेचक' की क्रिया सम्मिलित रहती है। 'रेचक' के चार प्रकार बताये गए हैं—'पादरेचक', 'कटिरेचक', 'हस्तरेचक', तथा 'ग्रीवा रेचक'।

रेफ

'संगीत रत्नाकर' में उल्लिखित तंत्री वाद्यों से सम्बन्धित हस्त संचालन को 'रेफ' कहते हैं। इसके अन्तर्गत सीधे हाथ की अनामिका उंगली से तार पर अन्दर की ओर और बायें हाथ की मध्यमा उंगली से बाहर की ओर आघात किया जाता है।

रेला

जब ताल के पलटों या अलंकारों में से कुछ विशिष्ट बोल चुनकर उनको किसी तालवाद्य पर बार-बार द्रुत लय में बजाया जाता है, तो उसे 'रेला' कहते हैं। इसे 'खल' या 'पडाल' भी कहते हैं।

लंगोट

ततवाद्यों में नीचे की ओर लकड़ी, धातु अथवा हड्डी का बना हुआ एक छोटा सा टुकड़ा लगा रहता है, जिस पर लगी कील से सभी तारों को बांधा जाता हैं। अवयव 'लंगोट' कहलाता है। अँग्रेजी में इसे 'टेल पीस' कहते हैं।

लग्गी

ताल वाद्यों में छोटे-छोटे बोलों से निर्मित 'बोल समूह' को 'लग्गी' कहते हैं। ठुमरी, गजल इत्यादि गायन शैलियों के साथ उनकी सुन्दरता बढ़ाने के लिए 'लग्गी' का प्रयोग किया जाता है। लग्गी का विस्तार 'बाँट' कहलाता है और जब किसी 'बाँट' को 'रेले' की तरह द्रुत लय में बजाकर कुछ देर स्थिर या कायम रखा जाता है, तो उसे 'लड़ी' कहते हैं।

लघु

ताल का एक अंग। साहित्य में एक मात्रा वाले अक्षर को 'लघु' या 'ह्रस्व' कहते हैं।

लघु नृत्त

'नर्त्तन निर्णय' के अनुसार अल्प साधन का अवलम्बन करके उछल-उछल कर नृत्य करने को 'लघु नृत्य' कहते हैं। यह नृत्य प्रायः घरेलू महिलाओं द्वारा विभिन्न उत्सवों पर किया जाता है।

लड़गुथाव

लड़ी के बीच में विभिन्न बोलों को समाहित करके जब लय के स्वरूप में परिवर्तन किया जाता हैं, तो वह क्रिया 'लड़गुथाव' कहलाती है।

लड़गुथाव और लड़लपेट

पखावज में एक मात्रा वाले बोलों को लड़ी के रूप में प्रस्तुत करने पर जो छन्दोबद्ध रचना निर्मित होती है, उन बोलों की माला को 'लड़गुथाव' कहा जाता है, जिसका प्रयोग प्रायः सरोद और रवा वादक करते रहे हैं। लड़ी के मिश्रित रूप को 'लड़लपेट' कहते हैं, जिसके अन्तर्गत सीधे हाथ से तंत्री वादक मृदंग से सम्बन्धित एक मात्रा का सरल बोल प्रस्तुत करता है तथा बायें हाथ से तदनुरूप स्वर योजना प्रस्तुत करता है। 'लड़लपेट' वीणा वादन का एक प्रमुख अंग रहा है, जिसे सितार तथा सरोद वादकों ने भी अपनाया है। लड़ी और लड़गुथाव के साथ जब वाद्य में सूत या सूँत आस या आँस अथवा छूट इत्यादि का समावेश करते हुए विस्तार किया जाए, तो यह क्रिया 'लड़लपेट' कहलाती है।

लड़ी

ताल वाद्य में 'लग्गी' के किसी एक भाग या बाँट को द्रुत लय में देर तक बजाने की सतत प्रवाहमान क्रिया 'लड़ी' कहलाती है। उत्तर भारतीय 'कथक नृत्य' में भी इसका पर्याप्त प्रयोग किया जाता है।

लय

काल या समय के किसी भी भाग की समान (एक जैसी) चाल को 'लय' कहते हैं। यह तीन प्रकार की होती है—धीमी लय को 'विलम्बित लय' या 'ठाह' कहते हैं; बीच की लय को 'मध्यलय' कहते हैं, जो न बहुत तेज होती है और न बहुत धीमी; तथा तेज अर्थात् द्रुत गति वाली लय को 'द्रुत लय' कहते हैं।

ललित

एक नाटक-प्रकार। इसमें विरोध, प्रणय, पर्युपासन, पुष्प तथा वज्र नामक अंग का नियोजन आवश्यक है।

लहरा

एक आवृत्ति में पूरी होने वाली ऐसी सांगीतिक रचना (धुन) जिसे बार-बार बजाया जाता है। तबला वादक और नर्तक को लहरा स्वर, ताल व लय की प्रेरणा देता है।

लक्षण गीत

राग के लक्षणों को प्रकट करने वाली संगीत रचना। इसके पद-साहित्य में राग सूचक शब्द होते हैं।

लाग

वादन क्रिया में नीचे से ऊँचे स्वर तक बीच की श्रुति को ध्वनि के साथ मींड़ सहित जाना 'लाग' कहलाता है।

लाग-डाट

प्रतिद्वंद्विता के भाव से नृत्य या वादन में कला का प्रस्तुतीकरण 'लाग-डाट' कहलाता है। इसे होड़ा-होड़ी और आजकल की भाषा में कुछ-कुछ 'जुगलबंदी' कहा जा सकता है। स्वर-संगति; स्वर संचार; अन्तरमार्ग; सवाल-जबाब।

लालि ऊँजल

झूला गान।

लास्य

नृत्त का वह भेद, जिसमें ललित अंगहार, ललित लय, कैशिकीवृत्ति तथा गीति का प्रयोग होता है। ताल, गीत, वाद्य, नृत्त तथा अभिनय के क्रम में किया जाने वाला सुकुमार प्रयोग 'लास्य' कहलाता है। 'भरतार्णव' ग्रंथ के अनुसार, पेरणी, प्रेङ्खणी, कुण्डली दण्डिक तथा कलश, लास्य के भेद बताये गये हैं। यह शृंखला, लता, पिंडी और भेद्यक चार प्रकार का वर्णित किया गया है तथा भाव की दृष्टि से इसके अनेक भेद किए गए हैं; जैसे—रुच्या, गुंडली (शुद्ध चित्र एवं मित्र) आदि। दशरूपकार ने भाँड़, प्रहसन के अन्तर्गत १० लास्यांगों (संगीत के भेद) का वर्णन किया है। यथा—गेयपद, स्थित पाठ्य, आसीन, पुष्पगंडिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ़, सैंधव, द्विगूढ़क, उत्तमोत्तमक तथा उक्तप्रयुक्त।

लीलानाट्य

किसी कथानक पर प्रस्तुत किया जाने वाला गीत-नाट्य या नृत्य-नाट्य, नौटंकी।

लोक गीत

लोक समाज में विभिन्न अवसरों पर गाये जाने वाले परम्परागत सामाजिक गीत 'लोक गीत' कहलाते हैं, जैसे—घोड़ी, बन्ना, विरह, सोहर, झूमर, आलाप, रसिया, बारहमासी,

मांड, सावनी, हीर, भंगड़ा, बाउल इत्यादि। सभी प्रदेशों के लोक गीतों में तत्सम्बन्धी भाषा का प्रयोग रहता है।

लोक धर्मी अभिनय

लोक में स्थित समस्त पदार्थ और क्रिया कलापों का अभिनय। आचार्यों ने इसके दो भेद किये हैं—'चित्त वृत्तियार्पिका' (हृदय में स्थित भावों का अभिनय) और 'बाह्य वस्तु अनुकारिणी' (बाह्य वस्तुओं की अनुकृति) 'चित्तवृत्तियार्पिका' को कैशिकीवृत्ति और 'बाह्य वस्तु अनुकारिणी' को आवेष्टित इत्यादि करणों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

लोकनृत्य

जन सामान्य में प्रचलित नृत्य। क्षेत्रीय, धार्मिक तथा सामाजिक विधाओं के अनुसार इसके अनेक भेद हो जाते हैं; जैसे—आदिवासी नृत्य, भील नृत्य, अन्य जनजातीय नृत्य और पर्व-नृत्य।

लोक वाद्य

लोक अर्थात् समाज के संगीत में प्रचलित ऐसे वाद्ययंत्र, जिनका प्रयोग अधिकतर लोक संगीत के साथ किया जाता है, जैसे—एकतारा, रबाब, कामायिचा, रावणहत्था, सारंगी अलगोजा, बाँसुरी, शिंगी, नफ़ीरी या शहनाई, नड़, तुरही, बीन, शंख, डमरू, चंग, तबला, ढोल, ढोलक, ताशा, खंजरी, नगाड़ा या नक्कारा, घंटा या घड़ियाल, कठताल या खड़ताल, झाँझ, मंजीरा, घुंघरू, चिमटा, मुखचंग या मोरचंग, मटका इत्यादि।

वंदना

नृत्य के प्रारम्भ में गायी जाने वाली स्तुति या प्रार्थना।

वक्रतान

टेढ़ी गति से प्रस्तुत की जाने वाली तान को 'वक्रतान' कहते हैं।

वक्र स्वर

टेढ़ी गति से प्रयुक्त होनेवाले स्वरों को 'वक्रस्वर' कहते हैं।

वक्त्रपाणि

पूर्व रंग; जिसमें यवनिका अर्थात् नाट्य का पर्दा उठने से पूर्व विविध वाद्ययंत्रों के वादन द्वारा संगीतमय पुनरावृत्ति की जाती है, उसे 'वक्त्रपाणि' कहते हैं। इसका प्रयोग नाट्य के आरम्भ, दो दृश्यों के मध्य और यदा-कदा नाट्य के अन्त में किया जाता है। इसके प्रयोग से श्रोता और दर्शक शान्त होकर नाट्य की भाव-भूमि से जुड़े रहते हैं।

वर्जनीय पात्र

नाट्य में दस प्रकार के निषिद्ध पात्र बताये गए हैं, यथा—जिसकी आँख की पुतली पर सफेद दाग हो, बहुत कम बाल हों, मोटे होंठ हों, लटके हुए स्तन हों, बहुत मोटा अथवा दुबला हो, बहुत लम्बा अथवा ठिगना हो, कुबड़ा स्थरहीन हो।

वर्ज्य या वर्जित स्वर

जो स्वर राग में प्रयुक्त नहीं किए जाते, उन्हें 'निषिद्ध' 'त्याज्य' या 'वर्जित स्वर' कहते हैं।

वर्ण

एक प्राचीन प्रबन्ध। 'वर्ण' दो प्रकार के होते हैं—तान वर्ण और पद वर्ण। पहला राग प्रधान है, जो केवल गायन के लिए होता है और दूसरा भाव एवं ताल प्रधान होता है, जो नृत्य के लिए उपयोगी होता है। उत्तर भारतीय संगीत में गायन तथा वादन की प्रत्यक्ष क्रिया को 'वर्ण' कहते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं—स्थायी, आरोही, अवरोही और संचारी।

वर्णम्

भरतनाट्यम् में पद के आधार पर प्रस्तुत किये जाने वाला भाग 'वर्णम्' कहलाता है। इसमें नाट्य, नृत्य और नृत्त तीनों की श्रमसाध्य तथा कलात्मक प्रस्तुति की जाती है।

वस्तु

निबद्ध गान का एक भेद, जिसकी रचना अंग और धातु के मिश्रण से बनी होती है।

वस्तुसूचना

नाटक की समस्त कथावस्तु का संक्षिप्त संकेत करना 'वस्तुसूचना' कहलाता है।

वाक्केली

वीथी का एक भेद। जहां वाक्य की विनिवृत्ति पाई जाय, अर्थात् साकांक्ष वाक्य को पूर्ण न कर उसको अधूरा ही कहा जाय और उसके भाव को गम्य रख दिया जाए; अथवा दो या तीन बार उक्ति-प्रयुक्ति का प्रयोग पात्रों द्वारा किया जाय, तो उसे 'वाक्केली' कहा जाता है।

वाग्गेयकार

सैद्धान्तिक और क्रियात्मक संगीत तथा साहित्य के मर्मज्ञ को 'वाग्गेयकार' कहा जाता है।

वाचन

शब्द या वाक्य को स्वरहीन रूप में बांचना या बोलना 'वाचन' या 'पढ़न्त' कहलाता है।

वाचिकाभिनय

वाणी द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला अभिनय 'वाचिकाभिनय' कहलाता है। इसे गीत एवं संवाद के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह चतुर्विध अभिनय का एक प्रकार है।

वार्तिक

ताल मार्ग का एक प्रकार।

वादन

वाद्यों को बजाने की क्रिया 'वादन' कहलाती है।

वादी, सम्वादी, विवादी और अनुवादी स्वर

उत्तर भारतीय संगीत में किसी राग का प्रमुख स्वर 'वादी' कहलाता है। यह राग में अनेक बार प्रयुक्त होता है। 'सम्वादी' स्वर उन्हें कहते हैं, जिनके बीच में आठ या बारह स्वर हों। षड्ज पंचम और षड्ज मध्यम भाव वाले स्वर 'सम्वादी' कहलाते हैं। यदि दो स्वरों के बीच में केवल एक श्रुति हो, तो वे दोनों स्वर एक दूसरे के 'विवादी' कहलाते हैं। वादी और संवादी को छोड़कर राग में लगने वाले सभी स्वरों को अनुवादी स्वर कहते हैं।

वादी स्वर

राग में बार-बार प्रयुक्त होने वाला अथवा प्रधान स्वर 'वादी स्वर' कहलाता है।

वाद्य

संगीत सम्बन्धी वाद्य यन्त्र। वाद्य यन्त्रों के चार प्रकार होते हैं—तत् (तार वाले वाद्य यन्त्र जैसे—वीणा, सितार और वॉयलन इत्यादि।), घन (टंकोर से बजाये जाने वाले वाद्य जैसे—घंटी या घंटा इत्यादि।) सुषिर (वायु या हवा से बजने वाले वाद्य जैसे—बाँसुरी, शहनाई, नाम स्वरम् इत्यादि।) अवनद्ध (चमड़ा या खाल से मढ़े हुए वाद्य जैसे—तबला, मृदंग या पखावज इत्यादि)।

वाद्य अंग

सभी प्रकार के वाद्य यंत्रों की निजी विशेषताओं पर आधारित मुख्य वादन प्रणाली जब हस्त चालन विधि से प्रस्तुत की जाती है, तो उसे 'वाद्य अंग' कहते हैं, जैसे—रबाब-अंग, मृदंग-अंग और बीन-अंग इत्यादि।

वायुज

सुषिर वाद्य यंत्रों को 'वायुज' कहते हैं, क्योंकि वे फूंक अर्थात् वायु द्वारा संचालित होते हैं।

विकट नृत्त

'नर्तन विर्णय' के अनुसार विपरीत रूप विरुद्ध वेश, रंग-विरंगी पोशाकों में अभद्रता के साथ शारीरिक क्रियाएँ करने को 'विकट नृत्त' कहते हैं।

विकृत स्वर

शुद्ध स्वरों के परिवर्तित स्वरूप को 'विकृत स्वर' कहते हैं। इन्हें 'च्युत स्वर' भी कहा जाता है।

विकृष्ट

ऊँचे स्वर में गायन।

विट

विदूषक की श्रेणी का एक नाटकीय पात्र; कामुक; धूर्त्त।

विदारी

गीत तथा आलापों के छोटे खण्ड को 'विदारी' कहते हैं।

विदूषक

हास्य-अभिनेता (कॉमेडियन); नक़ल करके हँसाने वाला।

विन्यास स्वर

जिस स्वर पर राग या पद का कोई भाग समाप्त हो, तो वह 'विन्यास स्वर' कहलाता है।

विभाग

ताल में जब ताली और खाली के हिसाब से भेद किए जाते हैं, तो उन खण्डों या भागों को 'विभाग' कहते हैं; जैसे तीनताल में तीन ताली हैं और एक खाली है, अतः इसमें चार विभाग हुए।

विभाव

रति इत्यादि भावों को उत्पन्न तथा उद्दीप्त करने में सहायक वस्तुएँ 'विभाव' कहलाती हैं।

विभाषा

देशी संगीत की शैली; राग गायन की एक पद्धति।

विरुद

प्रबन्ध का वह अंग जिसमें नायक का नाम अंकित हो।

विलम्बित लय

मध्य लय से नीची धीमी चाल वाली लय को 'विलम्बित लय' या 'ठाह' कहते हैं।

विलेपन

स्वर की उत्पत्ति के लिए मृदंग या पखावज पर किया जाने वाला मृतिका (मिट्टी) का लेप।

विवाद

स्वरों का अनिष्ट सम्बन्ध 'विवाद' कहलाता है।

विवादी

राग के स्वरूप को नष्ट करने वाला स्वर। इसे स्वर-शत्रु भी कहते हैं, जो वादी स्वर का प्रतिकूल स्वर होता है।

विद्वान्

साहित्य, संगीत इत्यादि विद्याओं के मर्मज्ञ को 'विद्वान्' कहते हैं।

विषम नृत्त

'नर्तन निर्णय' के अनुसार यह तांडव का प्रकार है, जिसमें भालों छुरियों और बाणों के बीच रस्सी से परिभ्रमण किया जाता है। यह प्रायः नट-बाजीगरों में प्रचलित है।

विष्णुपद

ध्रुवपद शैली का प्राचीन गीत प्रकार।

विस्तार

फैलाव या विशालता को 'विस्तार' कहते हैं।

वीणामाहात्म्य

'संगीत रत्नाकर' के रचयिता 'शार्ङ्गदेव' ने एकतंत्री वीणा के महात्म्य का वर्णन करते हुए कहा है, कि इसके दर्शन और स्पर्श से भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है और मनुष्य ब्रह्महत्यादिक पापों से मुक्त होता है। वीणा का 'दण्ड' शिव है, 'तंत्री' पार्वती है, 'ककुभ' विष्णु है, 'पत्रिका' लक्ष्मी है, 'तुंब' ब्रह्मा है, 'नाभि' सरस्वती है, 'दोरक' वासुकि है, 'जीवा' चन्द्रमा है और 'दोरिका' सूर्य है। इस प्रकार सर्वदेवमयी होने के कारण यह वीणा सर्वमंगला है (एक तंत्री वीणा की डांड तीन हाथ लम्बी और इसकी गोलाई एक बित्ता होती थी)।

वीथी

रूपक के दस भेदों में से एक। इसमें एक ही अंक होता है तथा कहीं-कहीं भाण एवं प्रहसन से समानता रहती है। इसमें शृंगार को अंगी बनाकर समस्त रसों की स्थिति हो जाती है। भरत ने 'वीथी' के उद्घात्यक, अवलगित, प्रपंच, त्रिगत, छल, वाक्केली, अधिबल, गण्ड, अवस्यंदित, नालिका, असत्प्रलाप, व्याहार और मृदव इत्यादि तेरह अंगों का वर्णन किया हैं। इसमें कैशिकी वृत्ति, मुख तथा निर्वहण संधि होती है। पात्र एक, दो या तीन तक होते हैं। इसमें कथोपकथन प्रायः आकाश भाषित शैली में ही होता है।

वृत्ति

१. 'वृत्ति' का अर्थ है शैली, पद्धति या तरीका। शास्त्रों में वृत्तियां चार प्रकार की बताई गई हैं—भारती (वाक्-प्रधान), सात्वती (वीररस-प्रधान), कैशिकी (शृंगार व हास्य-रस प्रधान) और आरभटी (रौद्ररस-प्रधान)। नाट्य में कथावस्तु की उद्भावना और काव्य का विकल्पन वृत्तियों के द्वारा होता है। समस्त प्रकार के अभिनयों की परिसमाप्ति इन्हीं वृत्तियों में होती है। इसीलिए वृत्तियों को 'नाट्य-माता' बताया गया है। व्यावहारिक रूप से नायक, नायिका, प्रतिनायक तथा अन्य पात्रों का कायिक, वाचिक और मानसिक व्यापार अथवा चेष्टा ही 'वृत्ति' है, जिसका सम्बन्ध अभिनय की पद्धति से रहता है।

२. लय के भेद से तत् और सुषिर वाद्यों की वादन-शैली में जो अन्तर पड़ता है, उस अन्तर को प्रदर्शित करने वाली शैली को 'वृत्ति' कहते हैं। यह तीन प्रकार की बताई गई है—

१. 'चित्र' (इस वृत्ति में वाद्य की प्रधानता और गीत की अप्रधानता रहती हैं तथा इसका प्रयोग द्रुतलय में होता है)।

२. 'वृत्ति' (वृत्ति नामक इस वृत्ति का प्रयोग मध्यलय में होता है तथा इसमें गति और वाद्य का महत्व समान रहता है)।

३. 'दक्षिणा' (इस वृत्ति का प्रयोग विलम्बित लय में होता है, जिसमें गीत प्रधान और वाद्य अप्रधान रहता है)।

वृत्तम् या विरुत्तम्

कर्नाटिक संगीत में प्रयुक्त वर्ण काव्य। इसे सस्वर या अस्वर दोनों तरह से प्रयुक्त किया जाता है। 'श्लोकम्' तथा 'वृत्तम्' को विभिन्न रागों में प्रस्तुत किया जाता है।

वैणिक

वीणा वादक को 'वैणिक' कहते हैं। शास्त्र के अनुसार एक कुशल वीणा वादक को श्रुति, स्वर, ग्राम, जाति, राग और ताल इत्यादि का वेत्ता, सुशारीर, स्थिरासन का अभ्यस्त, जितेन्द्रिय, निर्भर, बुद्धिमान, सावधान और गीतवादन-कोविद होना चाहिए, उसके दोनों हाथ भी पूर्णतया इच्छानुसारी होने आवश्यक हैं।

वैतालिक

अनेक भाषाओं का ज्ञाता, लोगों का विनोद करने वाला, 'नक़ल' करके दूसरों का उपहास करने वाला, अनुकूल रागों में सामयिक वर्णन से युक्त श्लोकों में उच्च स्वर से गाने वाला, लोगों की बुराइयों की ओर ध्यान दिलावे वाला व्यक्ति 'वैतालिक' कहलाता है। यह नेपथ्य में स्वयं गाता व अन्य से गवाता भी है। 'भांड़' और 'नक़्क़ाल' भी इसी कोटि में आते हैं।

वैदिक गान

कर्नाटिक संगीत में आध्यात्मिक अर्थात् भक्तिरस से पूर्ण रचनाओं के गान को 'वैदिक गान' कहते हैं; वेदविहित प्राचीन गान।

वोअण

मृदंग या पखावज के मुख पर लगाया जाने वाला चूर्ण।

व्यंग्यानुकरण

किसी पात्र या स्थिति का व्यंग्यात्मक अनुकरण 'व्यंग्यानुकरण' (मिमिक्री) कहलाता है।

व्यंजन या व्यंजना

भाव और रस को अभिव्यक्त करने की क्रिया।

व्यभिचारी भाव

स्थायी भावों को पुष्ट करने वाले, जल-बुदबुद की भाँति बनने-मिटने वाले, सञ्चरणशील भाव व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। इन्हें सञ्चारी भाव भी कहते हैं। ये ३३ हैं—निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्त, प्रबोध, अमर्ष, अवहित्था,

उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास तथा वितर्क। कुछ विद्वान् 'छल' को भी सम्मिलित करके इनकी संख्या ३४ मानते हैं।

व्यस्त स्वर

राग में वादी और सम्वादी स्वरों को छोड़कर अनुवादी स्वरों में से ऐसे स्वर को 'व्यस्त स्वर' कहा जाता है, जिसके बिना राग का विस्तार सम्भव नहीं होता।

व्यायोग

रूपक के दस भेदों में से एक। इसमें एक ही दिन की घटनाओं को चित्रित किया जाता है। इसमें नायिकाएँ नहीं होतीं या अल्प मात्रा में प्रयुक्त होती हैं। युद्ध-योजना की प्रधानता के कारण इसमें वीर तथा रौद्र रसों का संचार होता रहता है। स्त्री पात्र के अभाव अथवा अल्पत्व के कारण इसमें कैशिकी वृत्ति का अभाव, भारती व आरभटी का प्रयोग तथा एक विवसीय घटना के कारण एक अंक का संयोजन होता है। इसमें गर्व तथा विमर्श संधियाँ नहीं होतीं, विष्कम्भकादि होते हैं। नायक तीन, चार या अधिक-से-अधिक दस तक होते हैं।

व्यावहारिक हस्त

विभिन्न सम्बन्ध या रिश्तों को प्रदर्शित करने वाले हाथ, जैसे—पिता, माता, पत्नी, पुत्र, पुत्री, भाई, बहन, श्वसुर, गुरु इत्यादि।

व्याहार

वीथी का एक भेद। जहाँ हँसी के लोभ को उत्पन्न करने वाले ऐसे वाक्य का प्रयोग हो, जिसका अर्थ कुछ और ही हो, तो उसे 'व्याहार' कहते हैं।

व्यूह क्रिया

सामूहिक नृत्यों में नर्तकों द्वारा अनेक प्रकार की आकृतियों का निर्माण किया जाता है, जो देखने में आकर्षक प्रतीत होती हैं। ऐसी रचना को 'व्यूह क्रिया' या 'व्यूह रचना' कहा जाता है। अकेले नर्तक द्वारा भी व्यूह की रचना विविध गतियों और चालों से प्रदर्शित की जाती है। कुछ व्यूह इस प्रकार हैं—त्रिकोण व्यूह, बाण व्यूह, सर्प व्यूह, अर्धचन्द्र व्यूह, कूप व्यूह, अष्टकोण व्यूह, चतुष्कोण व्यूह, सोपान व्यूह, रण व्यूह तथा पताका व्यूह इत्यादि।

शब्दम्

भरतनाट्य में पहली प्रस्तुति, जिसके अन्तर्गत अभिनय दिखाया जाता है। इसे प्राचीनकाल में 'यशोगति' कहते थे, जिसमें ईश्वर या राजा का स्तुतिमूलक काव्य प्रस्तुत किया जाता था। अधिकांश 'शब्दम्' चार काव्य पंक्तियों के होते हैं। इसमें काम्बोदि राग और मिश्र चापु ताल का प्रयोग किया जाता हैं, परन्तु आजकल के 'शब्दम्' राग काम्बोदि और राग मालिका में प्रस्तुत किये जाते हैं।

शरीरज अलंकार

स्त्रियों के यौवनावस्था प्राप्त होने पर उनमें सत्व से उत्पन्न बीस अलंकारों की एक श्रेणी। इसके अन्तर्गत 'हाव-भाव' और 'हेला' आते हैं।

शाक

अंगों से सम्बन्धित मुद्रा ।

शारीर

१. विभिन्न अंगों या अवयवों द्वारा किया गया अभिनय ।

२. शरीर या कण्ठ से उत्पन्न स्वर ।

शास्त्रीय वाद्य

जिन वाद्यों पर शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार संगीत प्रस्तुत किया जाता हैं, वे सभी वाद्य शास्त्रीय वाद्य कहलाने लगते हैं । शास्त्रीय वाद्यों में मुख्य रूप से कुछ वाद्य इस प्रकार हैं—सारंगी, सितार, इसराज या दिलरुबा, वॉयलिन, तानपूरा या तंबूरा, गिटार, वीणा, गोट्टुवाद्यम् (यह तत् वाद्यों की श्रेणी में आते हैं); बाँसुरी, शहनाई, क्लॅरीनेट, नागस्वरम्, हारमोनियम यह सुषिर वाद्यों की श्रेणी में आते हैं; मृदंग या पखावज, तबला (यह अवनद्य वाद्यों की श्रेणी में आते हैं); जल तरंग, पियानो, संतूर, घंटातरंग, घुंघरू (यह घनवाद्यों की श्रेणी में आते हैं) । इनके अतिरिक्त आजकल सिंथेसाइजर जैसे विदेशी विद्युत चालित अर्थात् इलॅक्ट्रोनिक वाद्ययंत्रों के अनेक रूप प्रचलित हैं जिनका प्रयोग शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत में काफी किया जा रहा है ।

शिल्पक

नृत्य भेद (रूपक) का एक प्रकार ।

शिष्य

गुरु से शिक्षा का जिज्ञासु अथवा शिक्षा ग्रहण करने वाला व्यक्ति 'शिष्य' कहलाता है । 'नाट्यशास्त्र' में शिष्य के छः गुरु बताये गए हैं, यथा—मेधा, स्मृति, लगनशील या संघर्ष करने वाला, श्रद्धा, स्पर्धायुक्त और उत्साही; शागिर्द; चेला; विद्यार्थी या शिक्षार्थी ।

शुद्धतान

कूटतानों के अतिरिक्त सात, छह और पाँच स्वरों से कुल ४९ शुद्ध तानों के स्वरूप बनते हैं, उन्हीं को 'शुद्धतान' कहते हैं ।

शुद्ध स्वर

निश्चित श्रुतियों पर स्थापित सात स्वरों को 'शुद्ध स्वर' कहते हैं ।

शोभनिक

नट का पर्यायवाची शब्द 'शोभनिक' है । लोकभाषा में इसी को 'स्वरूप' कहा जाता है जो पात्रानुकूल वेशभूषा से युक्त हो ।

शोभा

नायिका के अंगों में शृंगार-रस युक्त आभा के प्रकट होने पर उसी को 'शोभा' या 'शोभा अलंकार' कहते हैं ।

श्लोक

संस्कृत भाषा का (प्रशंसात्मक) पद्य ।

श्रीगदित

नृत्य-भेद; रूपक का एक प्रकार ।

श्रुति

तंत्री पर कोण (मिजराब) के आघात से उत्पन्न श्रवण योग्य ध्वनि की प्रारम्भिक अवस्था को 'श्रुति' कहा गया है । 'श्रुति' का रंजक अनुरणन स्वर कहलाता है । श्रुतियाँ अनन्त हैं लेकिन उत्तर भारतीय संगीत में विभिन्न स्वरों की प्राप्ति के लिए २२ श्रुतियों को ग्रहण किया गया है जिनके नाम इस प्रकार हैं—तीव्रा, कुमुद्वती, मन्दा, छन्दोवती, दयावती, रंजनी, रक्तिका, रौद्री, वज्रिका, प्रसारिनी, प्रीति, मार्जनी, क्षिति, रक्ता, संदीपिनी, क्रोधा, आलापिनी, मदन्ती, रोहिनी, रम्या, उग्रा क्षोभिणी श्रुतियों को अँग्रेजी में 'माइक्रोटोनल इण्टरवल्स ऑफ साउण्ड' कहा जाता है । भारतीय दर्शन में वेद या उपनिषद को भी 'श्रुति' की संज्ञा दी गई है ।

श्रुत्यन्तर

किन्हीं दो श्रुतियों के बीच की दूरी या अन्तर को 'श्रुत्यन्तर' कहते हैं । इन श्रुत्यन्तरों की सहायता से ही स्वरों की स्थापना की जाती है ।

षड्ज ग्राम

षड्ज नामक ग्राम या स्वर समूह; विशिष्ट ग्राम राग ।

षाडव

छह स्वरों के राग की जाति 'षाडव' कहलाती है ।

संकीर्ण

एक से अधिक रागों के मेल से बने राग की जाति 'संकीर्ण' कहलाती है ।

संगत

वाद्यों द्वारा की जाने वाली संगति या अनुसरण ।

संगति

किसी संगीत रचना में गमक या कम्पन का क्रमशः विस्तार 'संगति' कहलाता है ।

संगीत

गीत वाद्य तथा नृत्य को समन्वित कला को 'संगीत' कहते हैं; सम्यक् रूप से गाया जाने वाला गीत ।

संगीत जीवी

संगीत के माध्यम से भरण पोषण करने वाली जाति । 'अमरकोष' में 'शैलाली', 'शैलूष,' 'जायाजीव', 'कृशाश्वी', 'भरत', 'नट', 'चारण' और 'कुशीलव' संगीतजीवी

जातियों में मिलाये गए हैं। सूत, मागध, नट, भरत, बन्दीजन, ढाड़ी या कथिक भी इसी श्रेणी में गिने जाते थे।

संगीतनाट्य या गीतनाट्य

पद्य प्रधान संगीत नाटक को 'संगीतनाट्य' या 'संगीतरूपक' (ऑपेरा) कहते हैं। इसे 'काव्यनाटक' भी कहते हैं।

संगीतिका

गीतनाट्य (बैलेड)। इसमें संगीत प्रधान नाटक की योजना की जाती है, जैसे—रामलीला, रासलीला, नौटंकी, माच तथा तमाशा इत्यादि।

संच

किसी वस्तु के संचय करने या चुनने में प्रदर्शित शान्त भाव; संचारी भाव।

संचर या संचार

गमन; भ्रमण; चारी।

संचारी

ध्रुपद गायन में आलाप या गीत का तीसरा भाग 'संचारी' कहलाता है।

संचारी भाव

देखो 'व्यभिचारी भाव'।

संजीव

रंगमंच पर प्रयोग किये जाने वाले जीव-जन्तु, जैसे—कबूतर, हिरन इत्यादि।

संधिप्रकाश राग

वे राग जो रात्रि और दिन के मिलने वाले समय अर्थात् संधिकाल में गाये जाते हैं।

संयुत या संयुक्त हस्त

अभिनय के लिए दोनों हाथों के योग से जो हस्त मुद्राएँ बनाई जाती हैं, उन्हें संयुत हस्त कहते हैं। आचार्यों ने २३ प्रकार के संयुत हस्त बताये हैं।

संवाद

स्वर सादृश्य या इष्ट सम्बन्ध।

सट्टक

नृत्य-भेद (रूपक) का एक प्रकार।

सत्व

प्रकृति के तीन गुणों (सत्व, रज और तम) में से एक सर्वोच्च पवित्र-गुण।

सदिरनाच

पर्शियन प्रभाव के कारण तमिल में मुस्लिमों द्वारा 'दासीअट्टम्' के लिए 'सदिरनाच' या 'सदिराट्टम्' शब्द का प्रयोग किया गया। यह 'भरतनाट्यम्' नृत्य का मुग़लकालीन नाम है, जो सन् १९३० से पहले तक प्रचलित था। १९३० के बाद ही 'भरतनाट्य' या 'भरतनाट्यम्' प्रचार में आया। यह नृत्य पहले केवल मन्दिर और राजदरबारों में देवदासियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, परन्तु अब 'भरतनाट्यम्' स्त्री व पुरुष पात्रों द्वारा समान रूप से और सर्वत्र प्रदर्शित किया जाता है।

सन्धिप्रकाश

दिन तथा रात्रि के सन्धिकाल में प्रस्तुत किये जाने वाले राग 'सन्धिप्रकाश' कहलाते हैं।

सन्निपात

ताल की एक सशक्त क्रिया।

संन्यास

जाति के प्रथम खण्ड के अन्त में आने वाला स्वर।

संन्यास स्वर

गीत के प्रथम खण्ड की समाप्ति जिस स्वर पर खत्म होती है, उसे 'संन्यास स्वर' कहते हैं।

सर्पयान

सांप की भांति सरकना या चलना, केंचुल।

सप्त अवयव

कथक नृत्य की प्रस्तुति के सात भाग 'सप्त अवयव' कहलाते हैं, जिनके नाम हैं—१. ठाठ या लक्षण नृत्य, २. नृत्यांग, ३. जाति शुन्य, ४. भाव रंग, ५. इष्ट पद, ६. गति भाव और ७. तराना।

सप्तक

क्रमानुसार उच्च से उच्चतर स्थापित सात स्वरों का समूह। यह तीन प्रकार के होते हैं—नीचे के स्वरों वाला 'मन्द्र सप्तक', बीच के स्वरों वाला 'मध्य सप्तक' और ऊंचे स्वर वाला 'तार सप्तक' कहलाता है।

सप्त ताल

कर्नाटिक संगीत की सात आधार भूत तालें—ध्रुव, मठ्य, रूपक, झंपा, त्रिपुट, अट्ट और एक। जाति और गति भेद से इन तालों के १७५ प्रकार हो जाते हैं।

सप्त पदार्थ

न्यायसूत्र के अनुसार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव इन सातों को 'सप्त पदार्थ' कहा गया है। इन्हें इस प्रकार समझा जा सकता है—किसी वस्तु का होना ही 'द्रव्य' है; उसमें जो गुण हो, वही 'गुण' है; उसके द्वारा सम्पन्न होने वाला कार्य ही 'कर्म' है; उसकी कोई जाति होना ही 'सामान्य' है; उसमें जो विशिष्टता हो वही 'विशेष' है; किसी से उसका सम्बन्ध होना ही 'समवाय' है तथा उसका न होना ही 'अभाव' है। यह सृष्टि इन सप्त पदार्थों से पूर्ण मानी जाती है। नृत्य में इन पदार्थों का पारस्परिक सम्बन्ध इसकी श्रेष्ठता का प्रमाण है। सात स्वर, सात लोक, सात समुद्र, सात रंग, सात ऋषि, सात वेद, सात द्वीप इत्यादि से सप्त रचना का कलाओं में भी विशेष स्थान है।

सप्त रूप

प्राचीन सप्त गीत।

सप्त लास्य

स्त्री तथा पुरुषों के द्वारा तांडव और लास्य नृत के समन्वित रूप को 'सप्त लास्य' कहते हैं।

सप्त स्वर

श्रुतियों के आधार पर स्थापित सात स्वर। इनके नाम इस प्रकार हैं—स (षड्ज), रे (ऋषभ), ग (गान्धार), म (मध्यम), प (पंचम), ध (धैवत), नि (निषाद)।

सभा

श्रोता और दर्शकों का समूह।

सभापति

नाट्य में सभापति के लक्षण इस प्रकार बताये गए हैं—धनी, बुद्धिमान, विवेकी, दानवीर, गान विद्या में प्रवीण, सर्वज्ञ, कीर्तिशाली, सर्वगुण सम्पन्न, हाव-भाव में चतुर, ईर्ष्या-द्वेष रहित, जनहितकारी, सदाचारी, दयालु, धीर, कलावान और अभिनय का ज्ञाता।

सभा रचना

सभा रचना के लक्षण इस प्रकार बताये गए हैं—सभापति प्रसन्नता से पूर्व की ओर मुख करके बैठे। दोनों बगल की ओर तथा कवि की ओर मंत्री और मित्र बैठें, उनके सामने नर्तन हो, इस नर्तन स्थान को रंग कहते हैं। जब पात्र रंग-मंच पर होता है, तो उसके समीप उत्तम नट, वाहिनी ओर ताल देने वाला, दोनों बगल की ओर मृदंग बजाने वाले, उनके बीच में गान करने वाला और श्रुतिकार, इन सबको होना चाहिए। इस प्रकार नाट्यारम्भ से पहले रंगमंडली बैठती है।

सम (अवस्था)

स्वाभाविक स्थिति या मुद्रा। विभिन्न अंग-प्रत्यंगों की स्वाभाविक तथा प्राकृतिक स्थितियों में 'सम' अवस्था का प्रयोग किया जाता है। श्वास, कपोल, वक्ष, पलक, पैर, सिर,

घुटना, गरदन, आँख की पुतली, स्थिति, दांत तथा कलाई के विभिन्न प्रकारों में 'सम' अवस्था भी बताई गई है ।

सम (मात्रा)

ताल की पहली मात्रा को, जहाँ लय का विशेष झुकाव या वजन रहता हो, 'सम' कहते हैं ।

सम (पदाघात)

एड़ी और पंजे सहित पूरे पैर से पृथ्वी पर आघात करना ।

समक

जब सम पर कोई भाव दिखाया जाए, तो उसे 'समक भाव' कहते हैं ।

समग्र

एक नाटक प्रकार । इसमें प्रशांत, भास्वर तथा ललित इत्यादि के समग्र विविध रूप होने चाहिए ।

समदृष्टि

देवांगनाओं की भाँति आनन्दपूर्वक सम भाव से देखना ।

समशिर

अभिनय करते समय न अधिक ऊँचा और न अधिक नीचा सिर ।

समवकार

रूपक के दस भेदों में से एक । इसमें कपट, विद्रव तथा प्रहसन की भाँति वीथ्यंग रहते हैं और त्रिविध विद्रव, त्रिविध कपट तथा त्रिविध शृंगार होते हैं । इसमें तीन अंकों की योजना की जाती है । प्रथम अंक में दो, द्वितीय में तीन तथा तृतीय अंक में बिमर्श के अतिरिक्त शेष चारों संधियों की संयोजना की जाती है । इसमें वीर रस प्रमुख रूप से रहता है । समवकार के पात्र देव तथा दानव होते हैं, जो प्रख्यात तथा उदार चरित्र वाले होते हैं ।

समष्टिचरणम्

जब संगीत रचना में अनुपल्लवी तथा चरणम् एक ही हों, तो उसे 'समष्टिचरणम्' कहते है ।

सम्पुट

खुली हुई वस्तु को सिकोड़कर बन्द करना; संयुक्त हस्त का वह प्रकार, जिसमें एक हाथ के ऊपर दूसरा हाथ सिकुड़ी हुई उँगलियों के साथ पोला रखा जाता है, जैसा कि किसी छोटी गेंद को हथेलियों से दबाते समय रखा जाता है ।

सम्पूर्ण

सात स्वरों वाले राग की जाति 'सम्पूर्ण' कहलाती है ।

सम्प्रदाय (१)

प्राचीनकाल में रंगमंच पर आकर अभिनय करने वाले एक पात्र के अभिनय का साथ करने के लिए इकसठ व्यक्ति होते थे। पात्र सहित इन बासठ व्यक्तियों को 'सम्प्रदाय' कहा जाता था। सम्प्रदाय में एक पात्र, दो प्रधान गायक, आठ सहगायक दो वंश-वादक, दो काहला-वादक, एक मुखरी, दो प्रति मुखरी, बत्तीस मार्दंगी, दो कढरा बजाने वाले, दो ताल-धर तथा आठ कांस्यतालधर होते थे एवं वीणा बजाने वालों की संख्या इन बासठ से पृथक होती थी।

सम्प्रदाय (२)

आचार्य-शिष्य-परम्परा के द्वारा निर्मित सिद्धान्तों का उपदेशदान 'सम्प्रदाय' कहलाता है। 'सम्प्रदाय' में प्रयुक्त अर्थ विशेष भले ही शास्त्र में उल्लिखित न हो परन्तु उसे शास्त्र का विरोधी नहीं होना चाहिए। 'सम्यक ज्ञान', 'तत्वपूर्वक विवेचन' एवं 'आचार्य-शिष्य-परम्परा' के द्वारा उपदेश दान को 'सम्प्रदाय' की विशेषता बताया गया है।

सम्वादी स्वर

वादी स्वर के साथ सम्वाद करने वाला मुख्य स्वर 'सम्वादी स्वर' कहलाता है। इसे राग का मंत्री भी कहते हैं। सम्वादी स्वर षड्ज या आधार स्वर से नौ अथवा तेरह श्रुतियों की दूरी पर स्थित होता है।

सरगम

ऐसी संगीत रचना, जिसमें केवल स्वर रहते हैं, शब्द नहीं। इसे शब्द रहित स्वरावली कह सकते हैं।

सरण

खिसकना, सरकना, या रेंगना।

सरल संगीत

समाज में प्रचलित ऐसा संगीत जो शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुकूल या प्रतिकूल होने पर भी साधारण व्यक्ति के लिए सरल हो, उसे 'सरल संगीत' कहते हैं। इसे 'आधुनिक संगीत', 'लोक संगीत', 'पॉप म्यूजिक' और 'देसी संगीत' भी कहते हैं।

सरीरज

कण्ठ स्वर को 'सरीरज' या 'शरीरज' कहा गया है, क्योंकि उसकी ध्वनि शरीर से उत्पन्न होती है।

सर्वलघु

सम संख्याओं में गणना काल।

सलामी

कथक नृत्य में जब नर्तक कोई तोड़ा नाचकर सभा को प्रणाम करता है, तो इस क्रिया को 'सलामी' कहते हैं।

सशब्द

ताल में आघात वाली क्रिया को 'सशब्द क्रिया' कहते हैं।

साची दृष्टि

कनखियों से देखना।

साज़

वाद्य-यंत्र को उर्दू में 'साज़' कहते हैं।

साज़िन्दा

वाद्य-वादक को उर्दू में 'साज़िन्दा' कहते हैं।

सात्विकाभिनय

स्तम्भित होना, पसीने-पसीने होना, वाणी का लड़खड़ाना, कम्पन होना, मुखाकृति की विकृति, अश्रुपात, मूर्छा और रोमांच इत्यादि सात्विक भावों से युक्त अभिनय 'सात्विकाभिनय' कहलाता है; चतुर्विध अभिनय का एक प्रकार।

साथसंगत

जब दो संगीतकार संगीत के किसी अंग को एक साथ प्रस्तुत करते हैं, तो उसे 'साथसंगत' कहते हैं।

सादरा

उत्तर भारतीय गायन की एक शैली। झपताल में निबद्ध 'होरी' अथवा 'ध्रुपद' को ही 'सादरा' कहते हैं।

साधारण

अन्तर्वर्ती स्वर।

साधारित

प्राचीन ग्राम में रागों से एक।

साम

गेय पद; गेयवेद का नाम; गीति; विशिष्ट धुन।

सामन्

सामवेद के मंत्रों को 'सामन्' कहा जाता है।

सामान्य अभिनय

अभिनय का एक भेद, जिसमें नाट्य को प्रतिष्ठित बताया गया है। इसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और इसी प्रकार इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के अर्थों का भावपूर्वक अभिनय करना 'सामान्य अभिनय' के अन्तर्गत आता है। यह वाणी, अंग और सत्व से समुद्भूत बताया गया है।

नाट्य शास्त्र में इसी के विस्तार स्वरूप 'चित्राभिनय' का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। 'सामान्य अभिनय' और 'चित्राभिनय' की सीमा बहुत विस्तृत है परन्तु इन्हें 'आंगिक अभिनय' के अन्तर्गत ही मानना चाहिए।

सामिक

तीन स्वरों से युक्त गायन।

सायंगेय

सन्ध्या काल में गाये जाने वाले रागों को 'सायंगेय' कहते हैं।

सारणा

१. श्रुति और स्वरों की निश्चित स्थापना करने की प्रणाली।

२. तार या तन्त्रियों को स्वर में मिलाने की क्रिया।

सारिका

तत् वाद्यों को बजाने के निश्चित स्वर स्थानों पर प्रयुक्त धातु इत्यादि के टुकड़ों को 'सारिका' कहते हैं। वर्तमान काल में इसे 'परदा' या 'सुन्दरी' कहा जाता है। तमिल भाषा में इन्हें 'हेट्टु' कहते हैं। अँग्रेजी भाषा में इन्हें 'फ्रेट्स' कहते हैं।

सारीविधान

सारिका अथवा परदों से युक्त तारवाद्यों में परदों को खिसकाकर जब ऊपर-नीचे किया जाता है, तो इस विधि को 'सारी विधान' कहते हैं।

सालगसूड़

प्राचीन प्रबन्ध का एक भेद।

सिद्धि

नाट्य में दो प्रकार की सिद्धियां बताई गई हैं—'दैविकी' और 'मानुषी'। व्यायाम (अभ्यास) से 'मानुषी' और देव कृपा से उत्पन्न दैवी (दैविकी) सिद्धि होती है। 'मानुषी सिद्धि' प्रधानतः प्रसन्नता बोधक स्थूल संकेतों पर आधारित होती है। इसके भी दो भेद होते हैं—वाङ्मयी और शारिरी जैसे—हँसना, रोना, आवाज करना, उठकर खड़े होजाना इत्यादि। जिस नाट्य प्रयोग में सत्व की प्रधानता रहती है और भावाभिनय का आधिक्य रहता हैं, उसे 'दैवी सिद्धि' युक्त कहता है।

सिरप

एड़ी तथा पंजे के सहारे साँप की तरह सरकते हुए चलना।

सीना-बसीना

गुरु के सम्मुख प्रत्यक्ष रूप में बैठकर तालीम (शिक्षा) लेने का प्रकार 'सीना-बसीना' कहलाता है।

सुकुमार नृत्त

स्त्रियोचित नृत्त को 'सुकुमार नृत्त' कहते हैं।

सुढंग

नृत्य सम्बन्धी मुद्राओं का शुद्ध प्रयोग या तौर तरीक़ा।

सुन्दरी ग्रीवा

तिरछी और चंचल गर्दन 'सुन्दरी ग्रीवा' कहलाती है।

सुलप

कोमलता और नज़ाकत से नृत्य करना या दीप शिखा की तरह बदन को धीरे-धीरे डुलाना। कथक नृत्य में ठाठ के प्रारम्भ में जब दोनों हाथ छाती के सामने बाँधकर लय के साथ संचालित किए जाते हैं या झुलाए जाते हैं, तो इस क्रिया को 'सुलप' कहते हैं।

सुशारीर

रागाभिव्यक्ति के सहज गुण से सम्पन्न।

शुष्कावक्रष्ट

पूर्व रंग, जिसमें अर्थहीन या शब्द ध्वनियों के माध्यम से दुर्गा-गीत या दुर्गा-स्तुति प्रस्तुत की जाती है।

सूत

१. अपने गान के द्वारा सुप्रभात की प्रशंसा करनेवाला तथा नित्य कर्मों की सूचना देने वाला।

२. उत्तर भारतीय संगीत में मीड़ का एक लघु अथवा सूक्ष्म प्रकार, जिसका प्रयोग अधिकतर गज से बजने वाले सारंगी आदि वाद्यों में होता है।

सूत्रधार

जो काव्य (कथा) की वस्तु, नेता, कथा एवं रसों का सूत्रपात करता है। तथा नान्दी के अंत में प्रयुक्त होता है, वह 'सूत्रधार' कहलाता है। यह नाट्यशाला का प्रधान तथा नाटक की व्यवस्था करता है।

सैन्धव

लास्य के दस अंगों में से एक, जहां कोई नायक संकेतस्थल पर प्रिया के न आने पर, प्राकृत में इस प्रकार वचन कहता है, कि उसका करण (गीत प्रकार) स्पष्ट रहता है, उसे 'सैन्धव' कहते हैं।

सोलकट्टु

संगीत रचना जिसमें शब्द, पाटाक्षर और स्वर सम्मिलित रहते हैं। इसका प्रयोग जाति स्वरम् और तिल्लाना इत्यादि में पर्याप्त रूप से किया जाता है।

सोलकत्तु स्वर

किसी कृति में जाति सूचक स्वर समुदाय के स्वरों को 'सोलकत्तु स्वर' कहते हैं।

सोलह अंग

नृत्य की दृष्टि से शरीर के सोलह अंग बताए गए हैं, यथा—दो पांव, दो नितम्ब (कूल्हे), दो कुच (स्तन), दो हाथ, दो आँखें, दो कपोल (गाल), दो भवें (भौंह), एक कमर और एक चिबुक (ठोड़ी)। कुछ विद्वान् नृत्य की प्रस्तुति के सोलह भाग करते हैं, जैसे—स्तुति, पुहुप पंजरी या पुहुप पाजरी, जमनिका, उरभई, उरप, तिरप, सुलप, सिरप या सरन (सरण), संच, शुद्धमुद्रा, लाग, डाट, धिलांग, थर्र या थर्री, प्रिमलू और फेरो। शम्भू महाराज ने कथक के वर्तमान स्वरूप को दृष्टि में रखते हुए सोलह अंगों का विभाजन इस प्रकार किया है—१. खड़े रहने का तरीक़ा, २. रंगमंच का टुकड़ा (सलामी), ३. नृत्य ठाठ, ४. परमेलु की आमद, ५. पद्यावज के बोलों की आमद, ६. गत विकास, ७. भाव गत, ८. ततकार के टुकड़े, ९. नटवरी के टुकड़े, १०. संगीत के टुकड़े, ११. परमेलु (प्रिमलू) के टुकड़े, १२. तबले के बोल, १३. पखावज के बोल, १४. कवित्त (श्लोक), १५. ठुमरी भाव और १६. ततकार।

सोलह शृंगार

रीतिकालीन साहित्य में नायिका के सोलह सिंगार (शृंगार) का वर्णन मिलता है, जो इस प्रकार है—१. शुचिता (पवित्रता), २. मज्जन (स्नान), ३. शरीर पर अमलवास (इत्र आदि सुगंध), ४. पैरों में जावक (महावर) ५. केश-सज्जा, ६. मांग में सिंदूर, ७. भाल पर तिलक, ८. गाल व चिबुक (ठोड़ी) पर तिल, ९. उरस्थल पर केशर, १०. हाथों में मेहँदी, ११. पुष्प आभूषण, १२. स्वर्णाभूषण, १३. मुखवास या मुखराग, १४. दांतों में मिस्सी, १५. होठों पर ताम्बूल रंग और १६. नेत्रों में काजल। कुछ आचार्यों के अनुसार सोलह अंग इस प्रकार हैं—शुचि, मज्जन, अमलवास, जावक, केशसज्जा, अंगराग (चन्दन, कर्पूर, कस्तूरी आदि से निर्मित), आभूषण, मुखवास, काजल, चंचल नेत्र, बोलना, हँसना, मुग्धा दृष्टि, प्रसन्नमुख, सुन्दर चाल तथा चित्त-चातुर्य (मन की एकाग्र वृत्ति)।

सौष्ठव

नृत्य में अंगहारों को प्रदर्शित करने के लिए कल्पित मुद्रा या स्थिति जिसमें शरीर के सभी अंग या अवयव शिथिल अथवा आरामदायक तथा संचालन से रहित स्थिति में रहते हैं; सात्विक भाव का एक प्रकार जिसमें मन भाव और रस पर केन्द्रित रहता है।

स्क्वायर ट्विस्ट

एक विदेशी नृत्य पद्धति।

स्खलित

तंत्री वाद्य में सारणायुक्त तार पर बायें हाथ की अँगुलियों द्वारा द्रुत गति से आघात करते हुए सीधे हाथ की चारों अँगुलियों से 'कर्तरि' (अर्थात् क्रमानुसार तार को बाहर की ओर द्रुत गति से आघात पहुँचाना) क्रिया से उत्पन्न ध्वनि को 'स्खलित' कहा जाता है।

स्तुति

ईश्वर के गुणों का वर्णन करने वाली कविता या वन्दना।

स्तोत्र

स्तुतिपरक श्लोक।

स्तोभ

प्राचीन काल में प्रचलित एक गीत शैली। इसमें प्रयुक्त अक्षरों को 'शुष्काक्षर', 'स्तोभाक्षर' अथवा 'वाक्करण' कहा जाता है। आजकल इसे 'तराना' या 'तिल्लाना' कहते हैं। 'शुष्कक्षर' व्याकरण अथवा साहित्य की परिधि में नहीं आते।

स्थान या स्थानक

संचालन रहित शरीर की विशिष्ट मुद्रा या स्थिति। शास्त्र में इसके अनेक प्रकार बताये गए हैं, जिनके अन्तर्गत विभिन्न देवी-देवताओं, मनुष्य, जाति, धर्म, पशु-पक्षी तथा प्रकृति से सम्बन्धित किसी भी वस्तु का प्रदर्शन किया जाता है, जैसे—वैष्णव, शैव, गरुड़ तथा कूर्मासन इत्यादि। शार्ङ्गदेव ने अपने ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' में ऐसे ५१ स्थान बताये हैं। इन्हें निश्चल या स्थिर मुद्राएँ अथवा आसत भी कह सकते हैं। प्रत्येक चारी (पदसंचालन) अथवा करण का आरम्भ और अन्त किसी निश्चल अंगों वाली स्थिर स्थिति में ही होता है। इसलिए नृत्त प्रयोग में ऐसी स्थिति को 'स्थान' अथवा 'स्थानक' कहा जाता है। नाट्य ग्रन्थों में स्थानकों के अनेक भेद बताये गए हैं, जैसे—शय्यास्थान, उपवेषण स्थान, पुरुष स्थान, स्त्री स्थान, देशी स्थान, सुप्त स्थान। स्वस्तिक, वर्द्धमान, नन्द्यावर्त, चतुरस्र, परावृत्त, पार्ष्णिपार्श्वगत, पृष्ठोत्तानतल, एकजानुनत, एकपार्श्वगत—ये नौ स्थान नृत्तमात्र के लिए उपयोगी हैं। खण्ड, विषम, सम आदि सूची, कूर्मासन, नागबन्ध—ये छः उद्धत नर्तन में उपयोगी हैं। स्रस्त सदालस, विष्कम्भित, क्लांत, उत्कट, स्रस्तालस, जानुगत, मुक्तजानु, विमुक्तक,—ये नौ उपवेषण स्थानक है। सम, आकुञ्चित, नत, प्रसारित, उद्वाहित, विवर्तित—ये छः सुप्त स्थानक हैं। पुरुषों के छः स्थानक हैं—समपाद, वैष्णव, वैशाख, मण्डल, आलीढ़ और प्रत्यालीढ़। स्त्रियों के तीन स्थानक हैं—आयत, अवहित्थ तथा अश्वक्रान्त।

स्थाय

चतुर्दण्ड का एक अंग; स्वरसंचार, स्वरालाप अथवा ठाय।

स्थायी

वर्ण अर्थात् गान क्रिया का एक प्रकार; गीत का प्रारम्भिक भाग या प्रथम पंक्ति। कर्नाटिक संगीत में इसे 'सप्तक' कहते हैं।

स्थायी भाव

नव रसों के नौ स्थायी भाव होते हैं, यथा—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय तथा निर्वेद या शम। ये मानव हृदय में स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं,

इसीलिए 'स्थायी भाव' कहलाते हैं । ये विभाव और संचारी भाव से पोषित होकर रस रूप में परिणित हो जाते हैं ।

स्वकीय स्वर

भाषांग राग में जनक राग से सम्बन्धित स्वर । असम्बद्ध या दूसरे स्वर को 'अन्य स्वर' कहते हैं ।

स्वभावज अलंकार

स्त्रियों के यौवनावस्था प्राप्त होने पर उनमें सत्व से उत्पन्न बीस अलंकारों की एक श्रेणी। इसके अन्तर्गत लीला, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक ललित और विहृत आते हैं ।

स्वयम्भू नाद

किसी भी संयोजित या नियंत्रित नाद से उत्पन्न होने वाला अन्य स्वर 'स्वयम्भू स्वर' या 'स्वयम्भू नाद' कहलाता है, जैसे—तंबूरा के मंद्र सप्तकीय तार को नियंत्रित ढंग से छेड़ने पर एक अन्य स्वर अर्थात् गान्धार सुनाई पड़ता है । इसीलिए उसे स्वयंभू गान्धार कहा जाता है । स्वयम्भू स्वरों की उत्पत्ति से ही प्राचीन ऋषियों को समस्त स्वर और श्रुतियों का ज्ञान हुआ था । पाश्चात्य संगीत में ऐसे नाद रूपों को 'हारमोनिक्स' कहते हैं ।

स्वर

सूक्ष्म नाद अर्थात् श्रुतियों के अनुरणन से पुष्ट नाद 'स्वर' कहलाता है । स्थिर, पुष्ट और नियमित आन्दोलन वाले स्वर से 'स्वयम्भू नाद' या स्वयम्भू स्वरों का जन्म होता है। उत्तर भारतीय संगीत में ७ शुद्ध और ५ विकृत स्वर माने गए हैं ।

स्वरकल्प

'स्वर सागर' नामक गीत प्रकार ।

स्वर कल्पना

कर्नाटिक संगीत की किसी कृति में ताल से सम्बद्ध होकर प्रस्तुत किया जाने वाला स्वर-समूह ।

स्वर जाति

भरतनाट्य की प्रस्तुति में प्रयुक्त संगीत रचना जिसमें 'सोलकट्टु' का प्रयोग होता है । इसके अन्तर्गत पल्लवी, अनुपल्लवी, चरण, स्वर, स्वर साहित्य तथा पाटाक्षर या वाद्याक्षरों का प्रयोग किया जाता है । इसमें प्रायः शिव-स्तुति प्रस्तुत की जाती है ।

स्वर प्रस्तार

स्वरों का विस्तार या विकास करने की प्रक्रिया को 'स्वर प्रस्तार' कहते हैं । इसके माध्यम से राग में लगने वाले स्वर अर्थात् राग का रूप स्पष्ट होता है ।

स्वर बाँट

जब राग में गीत के शब्दों को स्वरों के अनुरूप छन्दोबद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है तो यह क्रिया 'स्वर बाँट' कहलाती है। ध्रुपद गायन में 'स्वर बाँट' को 'उपज' कहते हैं।

स्वरलिपि

किसी धुन या राग को लिखित रूप में प्रस्तुत करने वाली विधि को 'स्वरलिपि' या 'स्वरांकन' प्रणाली कहते हैं।

स्वर विस्तार

स्वरों का विकास या प्रस्तार करने की प्रक्रिया 'स्वर विस्तार' कहलाती है।

स्वर संगति

स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध या लगाव; लाग-डाट।

स्वर सागर

शब्द और स्वर की एकरूपता स्थापित करने वाली संगीत रचना 'स्वर सागर' कहलाती है।

स्वरान्तर

चार स्वरों से युक्त गायन।

स्वरान्तर राग

ऐसा राग जिसके आरोह तथा अवरोह में चार स्वरों का प्रयोग हो।

स्वरार्थ

मध्यकालीन गीत प्रकार; स्वरकल्प।

स्वराक्षर

पद में स्वरों को सूचित करने वाले अक्षर या शब्द।

स्वरित

एक वैदिक स्वर, उदात्त और अनुदात्त स्वरों का समन्वित रूप।

स्वस्थान

गायन-वादन में प्रदर्शन को नियमबद्ध करने वाली क्रिया को 'स्वस्थान' कहा गया है। दूसरे शब्दों में शास्त्रानुकूल नियमबद्ध आलाप शैली 'स्वस्थान' या 'स्वस्थान सिद्धान्त' कहलाती है।

स्वांग

उत्तर भारत में प्रचलित एक लोकनाट्य। इसे 'नौटंकी' भी कहते हैं।

स्ट्रिप्टीज़

एक विदेशी नृत्य पद्धति, जिसमें नर्तकी क्रमशः निर्वस्त्र होती जाती है।

स्थितपाठ्य

लास्य के दस अंगों में से एक वह है, जहाँ नायिका मदन से उत्तप्त होकर प्राकृत में गीत पढ़ती है।

हल्लीस या हल्लीसक

नृत्य भेद (रूपक) का एक प्रकार; रास का एक प्राचीन स्वरूप।

हस्तक

नृत्य में अन्य चीजों को प्रदर्शित करके नृत्यकार जब अपनी मुद्रा में रुक जाता है, तो उसे 'हस्तक' कहते हैं। एक हाथ सिर पर और दूसरा समानांतर फैला हुआ, अथवा दोनों हाथ अन्दर की ओर।

हस्त कर्म

हाथों के द्वारा उठाना, खींचना, तोड़ना, जोड़ना, फेंकना तथा विभिन्न भावों को प्रकट करने वाले कर्मों को 'हस्तकर्म' कहते हैं।

हस्त क्षेत्र

नृत्य में हस्त संचालन के लिए सीमाएँ इस प्रकार बताई गई हैं—शरीर के दोनों ओर की दिशाएँ, सामने अर्थात् आगे और पीछे अर्थात् पार्श्व भाग में, ऊपर अर्थात् आकाश की ओर और नीचे अर्थात् पृथ्वी की ओर।

हस्त प्रचार

हस्त कर्मों का संचालन; विभिन्न दिशाओं में हाथ तथा हथेलियों का संचालन।

हाव

चेहरे के उपांगों अर्थात् आँख, कान, भौंह आदि में जब कुछ परिवर्तन होने लगता है, तो उसे 'हाव' कहते हैं। यह अंगज अलंकार की श्रेणी में आता है।

हिंकार

साम गान के प्रारम्भिक आलाप को 'हिंकार' कहते हैं।

हिन्दुस्तानी वाद्य

उत्तर भारतीय संगीत में प्रयुक्त वाद्य यंत्र जैसे—हारमोनियम, तबला, पखावज (मृदंग), ढोलक, नगाड़ा (नक्कारा), ढोल, तानपूरा (तम्बूरा), सितार, शहनाई, जलतरंग, बाँसुरी (वंशी या मुरली), वीणा, इसराज (दिलरुबा), सारंगी, सुरबहार, घुंघरू (नूपुर), घंटा, मंजीरा, झाँझ, सरोद, सुखचंग (मुहचंग या मोरसिंग), कठताल, चिमटा, तुरही, संतूर, खंजरी, चंग (डफ), डमरू, बिगुल, घड़ियाल, दुन्दुभी (भेरी), क्लारिनेट, गिटार, मैण्डोलिन, बाँयलिन, काष्ठतरंग इत्यादि।

हिसाब

राग एवं ताल सम्बन्धी शास्त्रीय नियम को उर्दू में 'हिसाब' कहते हैं।

हुलास

उल्लास या मन का तरंगायित रूप, जिसमें आनन्द के उठान का प्रदर्शन किया जाता है।

हुल्ल

बेसी नृत्य का एक प्रकार।

हैला

चेहरे के उपांगों से जब शृंगार रस की अभिव्यक्ति होती है, तो उसे 'हैला' कहा जाता है। इसमें नायिका की चेष्टाओं द्वारा मन के भावों की ललित अभिव्यक्ति रहती है।

होली (होरी)

उत्तर भारतीय संगीत की एक गायन शैली, जिसमें राधा और कृष्ण का फाग अर्थात् होली से सम्बन्धित शृंगार युक्त काव्य रहता है। इसका गायन अधिकतर दीपचन्दी और धमार ताल तथा काफी एवं खमार रागों में होता है। इसे प्राय: फाल्गुन मास में गाया जाता है।

□□□

प्राचीन वाग्गेयकार एवं महान कलाकार

कर्नाटिक संगीत में अनेक महान् संगीतकार हुए हैं। लेकिन उनमें ऐसे भी रत्न हैं, जिन्होंने कर्नाटिक संगीत तथा भरतनाट्यम् को अपनी रचनाओं द्वारा पोषित किया है और जिन्हें सम्पूर्ण भारतवर्ष में आज भी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। भगवान् की विशेष कृपा के कारण ही ऐसे संगीतकार हजारों की संख्या में साहित्यिक तथा सांगीतिक रचनाएँ कर पाये। उत्तर भारतीय संगीत में सूर, मीरा और तुलसीदास इत्यादि की तरह दक्षिण में जिन भक्ति संगीतकारों का विशेष प्रकाश हुआ, उनका विवरण यहाँ प्रस्तुत है। ये सभी वाग्गेयकार कर्नाटिक संगीत की निधि हैं।

१. भरत
२. शार्ङ्गदेव
३. जयदेव
४. त्यागराज
५. पुरन्दरदास
६. मुद्दुस्वामी दीक्षितार
७. श्यामाशास्त्री
८. क्षेत्रज्ञ
९. शाहजी महाराज
१०. स्वाति तिरुनाल

भरत

इनका काल ५०० ई० से भी पहले है। 'भरतनाट्य शास्त्र' इनके सिद्धांतों का प्रतिपादक ग्रन्थ है। इस पर अनेक विद्वान् आचार्यों ने टीकाएँ की हैं। 'नाट्यशास्त्र' के आदिम उपदेष्टा इन भरत के नाम पर सभी नट या अभिनेता भरत कहलाने लगे। 'अमरकोष' में भरत शब्द का अर्थ नट इसी लिए किया गया है। अभिनय-व्यवसायी जाति का नाम ही भरत हो गया था, ऐसे ही किसी भरत को मतंग ने अपना गुरु भी कहा है। इनका श्रुति-स्वर-सिद्धांत एवं ग्राम-भेद समस्त भारत में मान्य हुआ। दत्तिल, कोहल, मतंग, अभिनवगुप्त, हरिपाल, शार्ङ्गदेव एवं कुम्भ-जैसे लेखक प्रधानतः भरत-मतानुयायी ही थे। नाटक के सभी अंगों पर नाट्यशास्त्र में विचार किया गया है। भरत-प्रतिपादित श्रुति सिद्धांत के आधार पर स्थित जातियों में समस्त लोक का संगीत निहित है। भरत के सिद्धांत सार्वभौम एवं सार्वदेशिक हैं।

जातियों के निरूपण के अतिरिक्त भरत ने शुद्ध ग्रामरागों का नाम लेकर नाट्य में उनके प्रयोग के अवसर बताए हैं। वे सातों शुद्ध ग्राम राग, षड्ज ग्राम (राग विशेष), मध्यम ग्राम (राग विशेष), साधारित पंचम, कैशिक, शुद्ध षाडव और कैशिक मध्यम हैं। इन सातों शुद्ध रागों के लक्षण एवं उदाहरण पश्चाद्वर्ती आचार्यों ने दिए हैं।

जाति-अवस्था राग-अवस्था में बदल जाने के कुछ कारणों पर 'भरतनाट्यशास्त्र' में विचार किया गया है। महर्षि भरत ने अपने सौ पुत्रों को नाट्यवेद की शिक्षा दी। नाट्य के जिस अंग-विशेष में जिसे रुचि थी, वह उसमें पारंगत हुआ। महर्षि भरत ने संक्षेप में जो कुछ कहा और जो उनके कहने से रह गया, उसे स्पष्ट करने की आज्ञा अपने पुत्र कोहल को दी। उत्तर तंत्र अथवा प्रस्तार तंत्र के नाम से भरत-सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन कोहल ने किया। शारदातनय ने 'पंच भारतीय' नामक एक ग्रंथ की चर्चा की है, जो भरत एवं उनके शिष्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का संग्रह रहा होगा।

महर्षि भरत ने चित्रा और विपंची नामक दो तंत्री वाद्यों की चर्चा की है। चित्रा में सात तार होते थे, जो क्रमशः सातों स्वरों में मिलाए जाते थे। महर्षि भरत की वीणा मत्तकोकिला कही जाती है, जिसमें इक्कीस तारों पर तीनों सप्तक मिले रहते थे। भरतकाल की वीणा में सारिकाएँ (परदे) नहीं होती थीं। प्रत्येक स्वर के लिए अलग-अलग तार होता था।

प्रसन्नता का विषय है, कि 'भरत नाट्य शास्त्र' की हिंदी-टीका संगीत कार्यालय, हाथरस द्वारा शीघ्र प्रकाशित हो रही है, जो उसके सार्वभौम सत्य का उद्घाटन इस बीसवीं शताब्दी में कर सकेगी।

□

शारंगदेव

संग्रहकाल के शास्त्रकारों में आचार्य शार्ङ्गदेव का स्थान सर्वोच्च है। इनके पितामह शोढल काश्मीर निवासी थे। वे निवास के लिए दक्षिण में चले आए। भास्कर के पुत्र शोढल देवगिरि अर्थात् दौलताबाद के यादव नरेश के आश्रय में रहे। तत्पश्चात् उनके पुत्र शार्ङ्गदेव भी देवगिरि नरेश के आश्रय में रहे। ये आचार्य शार्ङ्गदेव के पिता थे।

आचार्य शार्ङ्गदेव की प्रसिद्ध संगीत-रचना 'संगीत-रत्नाकर' है। इसके एक टीकाकार सिंहभूपाल का कथन है, कि शार्ङ्गदेव के उदय से पूर्व संगीत की समस्त पद्धति भरत इत्यादि के ग्रन्थों के दुर्बोध होजाने के कारण दुर्गम हो गई थी। शार्ङ्गदेव ने इस पद्धति को ज्ञेय बना दिया। 'संगीत-रत्नाकर' की रचना जिन आचार्यों के ग्रंथों

तथा विचारों का मंथन करके की गई है; वे हैं सदाशिव, शिवा, ब्रह्मा, भरत, कश्यप, मतंग, याष्टिक, दुर्गा, शक्ति, शार्दूल, कोहल, विशाखिल, दत्तिल, कम्बल, अश्वतर, वायु, विश्वावसु, रम्भा, अर्जुन, नारद, तुंबरु, आंजेनय, मातृगुप्त, रावण, नंदिकेश्वर, स्वाति, गण, बिंदुराज, क्षेत्रराज, राहल, रुद्रट, नान्यदेव, भोज, परमर्दी, सोमेश्वर, जगदेक, भरतनाट्य शास्त्र के व्याख्याता लोल्लट, उद्भट, शंकु, अभिनवगुप्त, कीर्तिधर तथा अन्य अनेक संगीत-विशारद।

'संगीत-रत्नाकर' संगीत के उपलब्ध ग्रन्थों का मुकुट है, जिसका रचनाकाल १२३५ ई० है। केशव, सिंहभूपाल एवं कल्लिनाथ ने इस पर संस्कृत में तथा विट्ठल ने तेलगू में टीका की है। 'रत्नाकर' में प्राचीन तथा शार्ङ्गदेव के समय प्रचलित संगीत का वर्णन है। इसमें स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय एवं नृत्याध्याय हैं। प्रायः सभी पश्चाद्वर्ती ग्रन्थकार शार्ङ्गदेव के ऋणी हैं। कल्लिनाथ एवं सिंहभूपाल की व्याख्याएँ 'रत्नाकर' को स्पष्ट करती हैं।

आधुनिक मेल-पद्धति या ठाठ-पद्धति को मस्तिष्क में रखकर रत्नाकर वर्णित जातियों एवं रागों को समझा जाना कदापि सम्भव नहीं। शार्ङ्गदेव द्वारा तुरुष्कतोड़ी एवं तुरुष्कगौड़ जैसे रागों का प्रतिपादन सिद्ध करता है, कि उस युग में दक्षिण तक संगीत पर मुस्लिम प्रभाव पहुँच चुका था।

□

जयदेव

'गीतगोविन्द' ग्रन्थ के यशस्वी लेखक जयदेव का नाम साहित्य और संगीत-जगत में आदर के साथ लिया जाता है। जयदेव उच्चकोटि के कवि होने के साथ-साथ वाग्गेयकार और संगीतज्ञ भी थे।

जयदेव के जन्म और मृत्यु के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इनका जन्म सन् ११५० ई० के लगभग दक्षिण भारत में अजय नगर के पास किन्दुबिल्व ग्राम में मानते हैं, तो कुछ विद्वानों के अनुसार जयदेव उत्कल या उड़ीसा से आये थे। कुछ के अनुसार ये पश्चिम बंगाल के ग्राम केन्दुबिल्व (केन्दुली) ज़िला बीरभूम (प्राचीन नाम कामकोटि) में जन्मे थे, जिसका वर्तमान नाम जयदेव केन्दुली है। यह ग्राम बीरभूमि और वर्धमान के बीच बहने वाली नदी अजय के किनारे स्थित है, लेकिन अधिकांश की मान्यता यही है, कि वे पश्चिम बंगाल अर्थात् राधा देश में जन्मे थे।

जयदेव के पिताजी का नाम भोजदेव, माता का नाम रामादेवी (वामादेवी या राधादेवी) और पत्नी का नाम पद्मावती था। सनातन गोस्वामी के अनुसार बंगाल

के अन्तिम शासक महाराज लक्ष्मणसेन (१२ वीं शताब्दी) की सभा में जयदेव कवि विराजमान थे। एक उल्लेख के अनुसार इनकी मृत्यु इनके गाँव में सन् ११२० ई० में हुई थी, जहाँ पौष माह की शुक्ल-सप्तमी को वार्षिक उत्सव मनाया जाता है। अस्तु, इनके स्थान और काल के विषय में अभी तक मतभेद बना हुआ है।

दक्षिण भारत में 'गीतगोविन्द' की बड़ी मान्यता है। तिरुपति बालाजी में यह सीढ़ियों पर द्रविड़ लिपि में उत्कीर्ण है। वैष्णव सम्प्रदायों में 'गीत गोविन्द' का कीर्तन कहीं-कहीं आठों प्रहर होता रहता है। जयदेव यद्यपि कालिदास और भवभूति इत्यादि के समान साहित्य-मान्य कवि नहीं थे, परन्तु उनके विलक्षण संगीत नियोजन, पद-विन्यास, अनुप्रास, अर्थ-चमत्कार, माधुर्यपूर्ण और सार्थक शब्दसमूह के कारण केवल बारह सर्गों में विभक्त उनकी एकमात्र कृति पिछले एक हजार साल से संस्कृत की उत्कृष्टतम ललित पदावलीयुक्त, भक्ति और शृंगार से परिपूर्ण, एक अद्वितीय रचना मानी जाती है।

'गीतगोविन्द' का अनेक देशी तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। 'गीतगोविन्द' बारह सर्गों का एक शृंगार महाकाव्य है, जिसे 'अष्टपदी' के नाम से भी जाना जाता है। भरतनाट्यम् तथा ओडिसी इत्यादि नृत्यों में 'गीतगोविन्द' के आधार पर विभिन्न नायिकाओं का अभिनय प्रस्तुत किया जाता है। राधा और कृष्ण से सम्बन्धित शृंगार प्रधान लीलाओं का गुणगान करने वाला जयदेव कृत 'गीतगोविन्द' एक अमर और संस्कृत साहित्य की एक उत्कृष्टतम निधि है।

□

त्यागराज

जिस प्रकार सूर और तुलसी के प्रभाव से समस्त उत्तर भारत भक्ति-मार्ग में तल्लीन हो गया, उसी प्रकार दक्षिण में महात्मा त्यागराज के संगीतमय उपदेशों से लाभ उठाकर दक्षिण के बहुत-से व्यक्तियों ने ज्ञान और यश प्राप्त किया। महात्मा त्यागराज भगवान् के भक्त, विद्वान्, कवि, संगीतज्ञ और कर्नाटक-गायन के महान् सुधारक थे। ये गिरिराज कवि के पौत्र और दरबारी विद्वान् सोंटि वेंकटरमणय्य के शिष्य थे।

इस महान् विभूति का जन्म आंध्र प्रांतीय एक ब्राह्मण कुल में ५ मई, सन् १७६७ ई० को हुआ था। इनके पिता श्री रामब्रह्म और माता शान्तीदेवी किसी कारण से अपनी मातृभूमि छोड़कर तमिल प्रांत में जा बसे थे। ८ वर्ष की आयु में आपका उपनयन हुआ। श्री रामकृष्णनन्दा ने आपको श्री राम घटाक्षरी मंत्र का उपदेश दिया। आपके पिताश्री की इच्छा थी, कि त्यागराज संस्कृत में पांडित्य प्राप्त करें। त्यागराज को अपने शिक्षण-काल में ही बाल्मीकि रामायण के प्रति अटूट श्रद्धा हो

गई थी। उन्हें राम-रूपी चुम्बक ने आकर्षित कर लिया और वे 'रामचैतन्य' हो गए। कहते हैं, कि त्यागराज प्रतिदिन १२,५०० राम-नाम जपते थे। ३८ वर्ष की आयु के पूर्व ही आपने छियानवे करोड़ राम-नाम जप लिए थे। कहा जाता है, कि आपको श्री राम-लक्ष्मण के प्रत्यक्ष दर्शनों का सौभाग्य हुआ था। लोग इन्हें 'राममतवाला' कहकर छेड़ा करते थे।

श्री त्यागराज को प्रारम्भिक संघर्ष भी सहन करना पड़ा। बड़े भाइयों की धन-लिप्सा के कारण आपको अनेक कष्ट सहन करने पड़े। त्यागराज के जीवन की अनेक घटनाएँ ऐसी हैं, जो उनकी संत-वृत्ति और महानता की परिचायक हैं। आप श्री राम को मनुष्यवत् मानकर उन्हें सवेरे जगाना, अभिषेक करना, नैवेद्य करना आदि सेवाएँ तत्परता से करते थे।

मद्रास प्रांत के तंजौर नामक नगर के पास तिरुवियर नामक ग्राम में ही श्री त्यागराज ने अपना अधिकांश जीवन व्यतीत किया था। त्यागराज ऊँचे कद के, दुबले और सुन्दर चेहरेवाले संत थे। गले में तुलसी-माला और भाल पर गोपीचंदन शोभा देता था। गाते समय बाएँ हाथ में आप छिप्ला (झांझ) रखते थे। ऐसे नाच गानों को वे पसन्द नहीं करते थे, जो ईश्वर-प्रीत्यर्थ न हों। स्वरचित कीर्तनों के साथ-साथ वे रामदास, पुरन्दरदास, जयदेव आदि महान् संतों के कीर्तन भी गाते थे। आपने अपनी समस्त रचनाएँ पद-शैली में की थीं। आज दक्षिण की विविध भाषाओं में त्यागराज की कृतियाँ तथा पद गा-गाकर वहाँ के संगीतज्ञ भक्ति-रस की मन्दाकिनी बहा रहे हैं।

त्यागराज एक सुप्रसिद्ध गायक तो थे ही, साथ ही वे कर्नाटक-संगीत के सुधारक भी थे। उन्होंने कई नवीन राग-रागिनियों का आविष्कार करके कर्नाटक-संगीत को अमृत के समान मधुर बनाया। आजकल दक्षिण के बहुत-से शहरों और कस्बों में इस महापुरुष की स्मृति में वार्षिक उत्सव मनाए जाते हैं, जिनमें साधारण जनता के अतिरिक्त बड़े-बड़े नामी गायक-वादक अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए त्यागराज को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

श्री त्यागराज द्वारा रचित हजारों कीर्तनों में से अब लगभग ५०० कीर्तन ही प्राप्त हैं। कहते हैं, कि आपने २४००० कीर्तन गाए थे। इसके अलावा दिव्यनाम संकीर्तन, उत्सव-सम्प्रदाय-कीर्तन, प्रह्लाद भक्त-विजय और नौका-चरित्रम् (नाटक) त्यागराज के ही रचे हुए हैं। त्यागराज ने जटिल रागों में भी सरल कीर्तन रचे। गानों में अनेक प्रकार की संगति (स्वर-संसार) उन्होंने ही बनाई। व्यंकटमखी की 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' के अध्ययन से उन्हें स्वर और ताल के नियमों का सूक्ष्म ज्ञान हुआ। लगभग २०० रागों को उन्होंने प्रयुक्त किया। इस प्रकार नारद के रूप में श्री कृष्णानंद ही उनके गुरु थे।

पौष बहुल पंचमी, संवत् १९०४ (६ जनवरी, १८४७) को त्यागराज गोलोकवासी हुए और तंजौर (तंजावुर) के पास पंचनद क्षेत्र में उनकी समाधि बनाई गई।

□

पुरन्दर दास

महाराष्ट्र में पूना जिले के पण्ढरपुर क्षेत्र के पुरन्दरगढ़ नामक गाँव में सन् १४९१ में कर्नाटक के ब्राह्मण परिवार में पुरन्दर विट्ठलदास का जन्म हुआ। इनके पिता का नाम वरद नायक था। भक्ति-साधना में लीन रहने के कारण पुरन्दर दास को नारद का साक्षात्कार हुआ और वे सङ्गीत के माध्यम से भगवान के गुणगान तथा वेदान्त धर्म के प्रचार-प्रसार में जुट गए।

पुरन्दरदास ने सात्विक, राजसिक और तामसिक जैसे तीन विभाग करके रागों का प्रचार किया। उनके द्वारा रचित कृतियाँ—कीर्तन, पद, लावनी, कण्डपाद्य, उमाभोग और बोदबुदिका—आज भी गाये जाते हैं। उन्होंने हजारों रचनाएँ कीं, जिनमें से कुछ का अनुसरण सन्त त्यागराज इत्यादि ने भी किया। उनके साहित्य से कन्नड़ भाषा भी समृद्ध हुई। मिश्रगति, रतिमाला, सरिल, अलङ्कार तथा गणेश गीत के प्रवर्त्तक भी पुरन्दरदास थे। सन् १५६४ में वे सदैव के लिए ईश्वर में लीन होगए।

दक्षिण भारत में आज भी पुरन्दर दास की कृतियों और प्रबन्धों को विशिष्ट सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। सरगम की प्रथम पाठमाला, जो दक्षिण भारत में प्रारम्भिक विद्यार्थियों को सिखाई जाती है, के आविष्कारक पुरन्दरदास ही थे। कर्नाटिक तालों को नियमबद्ध करके कर्नाटिक संगीत में उन्होंने एक चमत्कार पैदा कर दिया। उत्तर भारतीय सूर और तुलसी की तरह पुरन्दरदास भी अपनी सहज भाषा के कारण पूरे दक्षिण भारत में विख्यात हो गए। आज उन्हें कर्नाटिक संगीत का पितामह कहा जाता है। पुरन्दरदास का पूर्व नाम श्री निवास और अन्य मत से कृष्णप्पा नायक था।

□

मुद्दुस्वामी दीक्षित

ये रामस्वामी दीक्षित के पुत्र थे। ई० सन् १७७५ में उत्पन्न हुए थे। सोलह बरस में ही साङ्गवेदाध्ययन कर चुके थे। 'ज्योतिष, वैद्यक तथा मंत्रशास्त्र में भी विशेष प्रज्ञा थी। सौभाग्य से चिदंबरनाथ योगी नामक एक सिद्धपुरुष ने इनको श्रीविद्या का उपदेश दिया था। पीछे सुब्रह्मण्य का अनुग्रह भी इन्हें मिला था। इन्होंने प्रायः सभी तीर्थों की यात्रा की है। वहाँ के देव-देवियों के स्तोत्ररूप विविध कीर्तन

रचे हैं। इनकी भाषा पूर्णरीति से संस्कृत है, तो भी गेयकल्पना, अर्थपुष्टि, ललित-पदविन्यास आदि से युक्त है। इसके कीर्तन 'गुरुगुह' की मुद्रा से अंकित हैं। इनके कीर्तन वेंकट मखी के संप्रदाय के अनुसार हैं। रागों के नाम से भी शोभित हैं। अर्थपुष्टि, विन्यासचातुरी इत्यादि उच्चकोटि की हैं। इनके अलावा सूडादि सात तालों में रचे हुए नवग्रह कीर्तन और कमलांबा देवीजी की नवावरणपूजा के अनुसार रचित नौ कीर्तनों से इनकी प्रशस्ति सर्वतोमुखी हुई।

ये महानुभाव संगीत की त्रिमूर्ति में अन्यतम हैं। ई० सन् १८३५ में एट्टयपुरम् राजा के अनुरोध से वहाँ चले गए थे। वहीं उसी साल उनका वियोग हुआ था।

□

श्यामाशास्त्री

सन् १७६३ ई० में इनका जन्म दक्षिण के तिरुवारूर में हुआ था, इनका उपनाम वेंकट सुब्रमण्य था। संस्कृत और तेलुगु में दक्ष होकर इन्होंने संगीत में विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

श्रीविद्या के प्रसाद से प्राप्त इनकी प्रखर प्रतिभा की झलक इनके प्रत्येक कीर्तन में पायी जानेवाली गेय-कल्पना व साहित्य-चमत्कार के कारण स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इनकी रचनाएँ 'श्यामकृष्ण' की मुद्रा से अंकित हैं। ये महानुभाव संगीत की त्रिमूर्तियों में अन्यतम माने जाते हैं।

इनके दूसरे पुत्र सुब्बराय शास्त्री भी संस्कृत और तेलुगु, दोनों भाषाओं में प्रवीण और संगीतमर्मज्ञ थे। इन्होंने अपने ज्ञान की वृद्धि त्यागराज के सान्निध्य में की थी। इनके बहुत-कुछ कीर्तन एवं स्वरजातियाँ अब भी प्रसिद्ध हैं।

देवी भक्ति में इन्हीं के द्वारा मुद्दुस्वामी दीक्षितार दीक्षित हुए। वे बहुत एकाकी जीवन व्यतीत करने वाले थे। लगभग ६४ वर्ष की उम्र तक श्यामाशास्त्री अपने भक्ति संगीत से दक्षिण भारत को अनुप्राणित करते रहे।

□

क्षेत्रज्ञ

यह त्रिलिंग ब्राह्मण एवं कृष्णभक्त थे। इनके पद तेलुगु भाषा एवं साहित्य में सर्वश्रेष्ठ हैं एवं अपनी-अपनी अलग विशेषताओं से संबद्ध हैं। हरएक पद में प्रयुक्त शृंगार रसानुसारी कैशिकी रीति, अर्थ पुष्टि, संदर्भानुसारी राग, धातु और पदविन्यास, गाने एवं सुननेवालों को मुग्ध कर लेते हैं, जो कि 'मुव्वगोपाल' की मुद्रा से अंकित हैं। ये तंजौर के विजयराघव के समकालीन थे।

क्षेत्रज्ञ ने ४२०० से अधिक पदम् बनाए। सन् १६०५–१६१० के बीच उनका जन्म हुआ और सन् १६८० तक वे जीवित रहे। साहित्य संगीत में वे पूर्ण दक्ष थे। □

शाहजी महाराज

यह तंजौर-महाराष्ट्र-राजवंश के स्थापक एकोजी राजा के पुत्र हैं। संस्कृत, महाराष्ट्र, हिन्दुस्थानी तथा तेलुगु भाषा के प्रकांड पंडित थे। साथ ही संगीत-साहित्य-विद्या के पंडित होने के कारण इन्होंने बहुत-से कीर्तनों एवं पदों की रचना की। तिरुबारुर के त्यागराज स्वामी के बारे में इन्होंने एक पालकी-नाटक तेलुगु भाषा में रचा, जो 'पल्लकि सेवा प्रबंध' नाम से प्रसिद्ध है। इनका शासनकाल ई० सन् १६८४ से १७११ तक है।

□

स्वाति तिरुनाल

ट्रावनकोर के महाराज स्वाति तिरुनाल का जन्म १६ अप्रैल सन् १८१३ में हुआ था वे अँग्रेजी, मलयालय, संस्कृत, फारसी, हिन्दुस्तानी, अरबी, तमिल, तेलुगु, मराठी और कन्नड़ भाषाओं में निष्णात थे। सोलह वर्ष की उम्र में वे एक कुशल संगीत रचयिता बन गये थे।

स्वाति तिरुनाल सदैव काव्य और संगीतमय वातावरण में रहते थे। उनके दरबार में तंजाबुर, रंगाऐय (उत्तर भारतीय गायक), तंजावुर चिंतामणि (सारंगी वादक), चोलपुरम रघुनाथ राव (वीणा बादक), कन्निया भागवतार (त्यागराज के शिष्य), मेरुस्वामी (हरिकथा में दक्ष), सुलेमान साहिब और हलवती (भारतीय संगीतकार), तंजावुर वन्धु (पुन्निआ, शिवनंदन और बडिवेलु तथा इरेईम्मन थप्पी) इत्यादि कलाकार सुशोभित थे।

स्वाति तिरुनाल ने विभिन्न प्रकार की संगीत रचनायें अत्यन्त दक्षता से निर्मित कीं, जिनमें वर्णम् (तान वर्णम् और पद वर्णम्), स्वरजति, कृति, पदम्, तिल्लाना, जावलि, रागमालिका, ध्रुवपद, टप्पा और ख्याल जैसी सभी विधाएँ विद्यमान थीं। भरतनाट्य शास्त्र से सम्बन्धित उनके विशद ज्ञान के कारण ही उन्होंने नृत्य सम्बन्धी रचनाओं का निर्माण किया, जो आज तक भरतनाट्यम् में प्रस्तुत की जाती हैं। उनके वर्णन में 'स्वराक्षर' एक विशिष्ट प्रयोग है। उन्होंने विभिन्न रागों में लगभग चार सौ प्रतियों का निर्माण किया, जिनमें शंकराभरणम्, काम्बोदी, तोड़ी, भैरवी, और कल्याणी जैसे लोकप्रिय रागों का अधिक प्रयोग किया। मोहन कल्याणी राग में उनका कीर्तन 'सेवा श्री कण्ठम्' एक दुर्लभ रचना है। गायन और वीणा वादन में भी स्वाति तिरुनाल दक्ष थे और अपनी विशेष प्रतिभा के बल पर उन्होंने जो कुछ

निर्मित किया, वह कर्नाटिक संगीत में बड़ी श्रद्धा के साथ देखा जाता है। लगभग ३७ रचनाएँ उन्होंने ध्रुपद, खयाल और टप्पा के लिए हिन्दी में कीं। अनेक ग्रन्थ कर्ताओं ने स्वाति तिरुनाल की रचनाओं को अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है। ट्रावन कोर के बाहर स्वाति तिरुनाल को कुलशेखर पेरुमल या केरलराजा या मलयाला कुलशेखर महाराजा नाम से जाना जाता है। ३४ वर्ष की कम उम्र में ही २५ दिसम्बर १८४६ को स्वाति तिरुनाल का निधन हो गया। वास्तव में महाराजा स्वाति तिरुनाल ने कर्नाटिक व उत्तर भारतीय संगीत के लिए जो कुछ किया, वह सदैव अमर रहेगा।

□□□

दक्षिण भारत के लोकनृत्य व लोकनाट्य

उत्तर भारत की तरह दक्षिण भारत भी लोकनृत्यों की दृष्टि से काफी समृद्ध है। भरतनाट्यम् के विद्यार्थी को दक्षिण के प्रमुख लोकनृत्य एवं लोकनाट्यों के बारे में जानकारी होनी चाहिए, क्योंकि समस्त शास्त्रीय नृत्य शैलियों का उद्गम लोकनृत्य ही है।

दक्षिण भारत में मुख्य चार प्रान्त हैं—तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक और आन्ध्र। इनकी भाषाएँ क्रमशः तमिल, मलयालम, कन्नड़ और तेलगू हैं तथा राजधानियाँ क्रमशः मद्रास, तिरुअनन्तपुरम्, बंगलौर और हैदराबाद हैं। दक्षिण के शास्त्रीय नृत्यों में तमिलनाडु तथा कर्नाटक में 'भरतनाट्यम्, केरल में 'कथकलि' तथा 'मोहिनीअट्टम्' और आन्ध्र में कुचिपुड़ी अधिक विख्यात है।

जब से आदिम सभ्यता शुरू हुई है, तभी से लोकगीत और लोकनृत्य भी समाज में प्रतिष्ठित हुए हैं। हर्ष और उल्लास को अभिव्यक्त करने के लिए लोकनृत्य सदैव से सक्षम रहे हैं। हिरन की चौकड़ी, हाथी और हंस की चाल, सबकी लहराती गति, मेंढ़कों की उछाल, मोर और कबूतर की थिरकन, भौंरे और तितलियों का मंडराना इत्यादि सभी से मनुष्य को उनका अनुकरण करते हुए नाचने की प्रेरणा मिली। जैसे-जैसे मनुष्य सुसंस्कृत होता गया, तो हमारे लोकनृत्य भी लगभग छः भागों में बँट गए, यथा—१. संस्कार नृत्य (विवाह तथा जन्मोत्सव आदि से सम्बन्धित), २. कथा नृत्य (ऐतिहासिक कथाओं से सम्बन्धित), ३. ऋतु नृत्य (बसंत और वर्षा आदि ऋतुओं से सम्बन्धित), ४. त्यौहार नृत्य (होली-दिवाली आदि पर्वों से सम्बन्धित), ५. उत्सव नृत्य (वर्ष भर में होने वाले मेलों से सम्बन्धित) और ६. आध्यात्मिक नृत्य (विभिन्न देवी-देवताओं से सम्बन्धित)। भारत ही नहीं बल्कि समस्त विश्व में यह समयानुकूल नृत्य प्रचलित हैं। इतना अवश्य है, कि जंगल में रहने वाले आदिवासी, ग्राम में रहने वाले ग्राम वासी और शहर में रहने वाले नगर वासियों में जब यह प्रयुक्त होते हैं, तो साधन, शिक्षा, परम्परा और सभ्यता के अनुसार उनमें परिवर्तन पाया जाता है।

लोकनृत्य, नाट्य और नृत्त का एक सुखद समन्वय है। अनुमान के आधार पर कहा जाता है, कि भारत में पाँच सौ से अधिक लोकनृत्य हैं और इनमें प्रयुक्त होने वाले वाद्य यंत्रों की संख्या भी लगभग दो सौ से कम नहीं है। मध्यकालीन आचार्यों ने अनेक लोकनृत्य या सामाजिक नृत्यों का समावेश शास्त्र में कर लिया था। इनमें ऐसे जिन नृत्यों का उल्लेख मिलता है, उनके नाम हैं—शब्द नृत्य, चमत्कार नृत्य, गीत नृत्य, हल्लीसक नृत्य, कट्टरी नृत्य, बन्ध नृत्य, कल्प नृत्य, ध्रुवा नृत्य, विनोद नृत्य, कम्बुज नृत्य, नामावली नृत्य, गोण्डली नृत्य, चलित नृत्य, पेरणी नृत्य, जक्करी नृत्य, चिन्दु नृत्य, मण्ठ नृत्य, रूपक नृत्य, चर्चरी नृत्य, सालगसूढ़ नृत्य, स्वरमंठ नृत्य तथा लाग नृत्य।

जिन नृत्यों को हम शास्त्रीय और अशास्त्रीय कहते हैं, उन्हें प्राचीनकाल में बन्ध और अनिबन्ध नाम से पुकारा जाता था। अनिबन्ध नृत्यों की ही आज लोक नृत्य कहा जाने लगा है। बन्धनरहित होते हुए भी लोक नृत्यों के अपने कुछ सिद्धान्त और नियम अवश्य होते हैं। यह नियम समाज की विचारधारा, आदर्श, चरित्र, धार्मिक मान्यता, रीतिरिवाज, वेशभूषा, व्यक्तिगत मनोभाव आदि पर अवलम्बित होते हैं। इसी दृष्टि से लोक नृत्य भारतीय संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं।

'ऋग्वेद' में कहा गया है, कि खुले आकाश के नीचे नृत्य करते हुए लोगों के पदों की धूल से आकाश आच्छादित हो जाता था। 'यजुर्वेद' में शैलूष तथा बाँस पर चढ़कर नृत्य करने वाले नटों की चर्चा की गई है। स्त्रियों द्वारा यज्ञवेदी के चारों ओर मंडलाकार नृत्य करना वैदिक काल में अत्यन्त शुभ माना जाता था। महाभारत, वाल्मीकि-रामायण, कम्बु-रामायण आदि सभी प्रचलित ग्रन्थों में सामाजिक लोकनृत्यों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। बाघ गुफाओं में दण्ड-रासक जैसे लोकनृत्यों के चित्र आज भी उपलब्ध हैं तथा मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में निकली मूर्तियों से भी उस काल में प्रचलित लोक नृत्यों की पुष्टि होती है।

तमिलनाडु

दक्षिण भारत के विभिन्न प्रान्तों में लोक नृत्यों की समृद्ध परम्परा है। जो स्त्री नृत्य नहीं करती, वह शादी के योग्य नहीं समझी जाती। काम करने वाली प्रत्येक महिला अपने लोकनृत्यों से परिचित अवश्य होती है। तमिलनाडु के लोक नृत्यों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—१. सम्प्रदाय विशेष के सामुदायिक नृत्य, २. व्यावसायिक नृत्य समूह और ३. पहाड़ पर रहने वाली जातियों के नृत्य।

कुम्मी और कोलट्टम्

सम्प्रदाय विशेष के लोकनृत्यों में कुम्मी और कोलट्टम्मै प्रमुख हैं। तमिलनाडु के समस्त ग्रामों में इनका सर्वाधिक प्रचार है। शहरी परिवारों एवम् मन्दिरों से

सम्बन्धित उत्सवों में भी इनकी प्रधानता रहती है इन नृत्यों में अधिकतर लड़कियाँ व युवा स्त्रियाँ भाग लेती हैं फिर भी कहीं-कहीं पुरुष भी इनमें भाग लेते पाये जाते हैं। पीतल के लम्बे दीपदान या भगवान कृष्ण की मूर्ति के चारों ओर घूमते हुए यह नृत्य किए जाते हैं। स्त्रियाँ नृत्य की विविध गतियों के साथ गायन भी करती रहती हैं। मुद्राएँ सरल लेकिन आकर्षक होती हैं। गीतों में प्रकृति, ऋतु, फसल, पुष्प, पारस्परिक प्यार, ईश्वर तथा प्रधान नायकों की स्तुति तथा दार्शनिक सत्य का विवेचन रहता है। शारीरिक मुद्राएँ और उछाल देखते ही बनती हैं। इनकी मुद्राएँ देखकर कभी-कभी भरतनाट्यम् नृत्य का सा भ्रम होने लगता है। कोलट्टम् के साथ-साथ कभी-कभी नागस्वरम् की संगत भी की जाती है। कोलट्टम् के अनेक प्रकार हैं जिनमें से पिन्नल कोलट्टम् अधिक कलात्मक और आकर्षक है। बसंत ऋतु में इस नृत्य को किया जाता है। कोलट्टम् केरल में भी प्रसिद्ध है।

भजन नृत्य

यह नृत्य रामनवमी और कृष्ण जन्माष्टमी जैसे उत्सवों पर मन्दिरों में आयोजित किये जाते हैं। पीतल के दीपदान को भगवान की मूर्ति के समक्ष रखकर उसके चारों ओर नृत्य किया जाता है। इसके कुछ गीत लोक से सम्बन्धित रहते हैं तो अन्य शास्त्रीय ढंग की प्रणाली में गाये जाते हैं। इन नृत्यों में मुद्राएँ और पद संचालन सरल और सामान्य होते हैं।

ओइल अट्टम्

यह तमिलनाडु का प्रमुख लोकनृत्य है जिसमें समस्त ग्रामवासी भाग लेते हैं। कलाकार परम्परागत अनुभवी वड्यार शिक्षकों से इस नृत्य को सीखते हैं जो समूह के मुखिया कहलाते हैं। एक समूह में १५ से २० व्यक्ति तक भाग लेते हैं जिनमें वड्यार तथा हारमोनियम, मृदंगम् और जालर वाद्यों के वादक भी सम्मिलित रहते हैं। गाँव के मन्दिरों में उत्सव के समय यह नृत्य किया जाता है। इनका आधार अधिकतर 'राम नाटकम्' और 'पोन्नर सोकर नाटकम्' जैसी कथाएँ रहती हैं। नर्तक भड़कीले रंगों वाली कमीज, पायजामा, कंधे का पटका, अंगोछानुमा तौलिया तथा घुंघरू इत्यादि का प्रयोग करते हैं जिनके साथ अनुगामी नर्तक भी रहते हैं। एक व्यक्ति गीत शुरू करता है तो उसे कोरस के रूप में अन्य व्यक्ति दुहराते हैं। तिरूचिन्नापल्ली, मदुरई, और कोयम्बटूर जैसे ज़िलों में ओइल अट्टम् का अधिक प्रचार है। वहाँ भगवान मुरूग और वल्ली की कथाएँ इस नृत्य का आधार रहती हैं।

वैन्थने

यह कोलट्टम् की भाँति पुरुषों द्वारा किया जाता है। 'ओरुमी कोमली अट्टम्' त्रिची ज़िले के थोट्टू नायकरों द्वारा किया जाने वाला प्रमुख नृत्य है जिसे बाद में थेवर अट्टम् भी कहा जाने लगा।

चक्कइ अट्टम्

यह नृत्य नागपट्टिनम् के आस-पास प्रचलित रहा है। लेकिन अब वह त्रिची जिले तक पहुँच चुका है। इसमें कोई पूर्व निश्चित कथानक नहीं होता है। इसके अधिकांश गीत एक ताल या आदि ताल में भगवान अम्मइनाथन या मुरूग या मुथुमराइअम्मन् से सम्बन्धित रहते हैं। वेशभूषा में चौकोर जाकेट पहनी जाती है जिसमें फुंदने लटकते रहते है, सिर पर रंगीन अंगोछा बंधा रहता है। सात इंच लम्बी और पौन इंच मोटी चार लकड़ियाँ धागे में लटकाकर उँगलियों से पकड़ी जाती हैं जिनसे ध्वनि उत्पन्न की जाती है। कोलट्टम् और कुम्मी की तरह किया जाने वाला यह पुरुषोचित नृत्य है।

इनके अतिरिक्त बोम्मलट्टम् या कटपुतली का खेल; कवाड़ी नृत्य; करकम् नृत्य; पुरवी अट्टम् या घोड़े के मुखोटों वाला नृत्य जिसे पोइकल कुदिरई अट्टम् भी कहते हैं; थेरुकुथु या सड़क पर किया जाने वाला नुक्कड़ नाटक; कोरवन–कुरथि (स्त्री-पुरुष के जोड़े द्वारा किया जाने वाला) नृत्य जैसे अनेक लोकनृत्य प्रचलित हैं, जिन्हें विभिन्न व्यावसायिक मण्डलियों द्वारा भी अपना लिया गया है। इनमें बोम्मलट्टम् अत्यन्त लोकप्रिय, परिष्कृत एवम् सुसंस्कृत लोकनृत्य माना जाता है। तमिलनाडु का 'भागवत मेला' वहाँ का प्रसिद्ध नृत्य-नाट्य है। जो उत्तर भारत के कथकलि की तरह किया जाता है जिसमें प्राचीन कथाओं का गायन और उनसे सम्बन्धित अभिनय की प्रधानता रहती है। गद्यात्मक, पद्यात्मक और नृत्यात्मक शैली के साथ खुले रंगमंच पर होने वाला यह लोकनाट्य बाँसुरी, वाइलिन, मृदंगम् तथा आकर्षक वेशभूषा से युक्त होकर प्रबुद्ध तथा साधारण लोगों का बहुत मनोरंजन करता है।

□

केरल

केरल प्रदेश के लोकनृत्य अधिक परिष्कृत हैं जो कलात्मक दृष्टि से भी बहुत समृद्ध हैं। इन नृत्यों में धार्मिक तथा सामाजिक नृत्य का भेद करना कठिन होता है। अधिकांश नृत्य पुरुषों द्वारा किये जाते हैं लेकिन कुछ स्त्रियों के द्वारा और कुछ दोनों के द्वारा भी किये जाते हैं। इन नृत्यों को अधिकतर गीतों के साथ किया जाता है और यह गीत नर्तक प्रायः स्वयं गाते हैं। कुछ नृत्य केवल वाद्ययंत्रों की धुन पर किये जाते हैं।

केरल के अधिकतर नृत्यों को गोलाई में घूमते हुए और ताली बजाते हुए किया जाता है। कभी-कभी तालियों के स्थान पर छोटी-छोटी लकड़ियों से भी ताल का काम लिया जाता है। नर्तक की पोषाक और गहने क्षेत्र विशेष की परम्परा के

अनुसार होते हैं। दर्शकगण लोकनर्तकों के साथ ऐसे घुल मिल जाते हैं कि उन्हें अलग करके देखना कठिन होता है। नृत्यों में सरलता होती है लेकिन उनमें भावाभिव्यक्ति प्रधान होती है। केरल में सैकड़ों लोकनृत्य प्रचलित हैं जिनमें कलियट्टम्, मुदिएत्तु, कोलम् थुल्लल, कोलकलि, पूरक्कलि, वेलकलि, कंपदक्कलि, कन्नियारकलि, परिचमुत्तुकलि, थप्पुकलि, कुरवरकलि, तिरुवनथिरकलि अधिक प्रसिद्ध हैं।

संघकलि

इस लोकनृत्य को शास्त्रकलि, छतिरकलि या यात्राकलि भी कहते हैं। इसका प्रचार नम्बूदिरी ब्राह्मणों में अधिक रहा है। इसका आधार शारीरिक व्यायाम और युद्ध कौशल है। सिर और हाथ की कलाई पर लाल कपड़ा बाँधा जाता है वाद्ययंत्रों में चेन्डा, मद्दलम, एलाथलम् और गोंगु की प्रधानता रहती है। भक्ति और पूजा की प्रधानता के साथ इस नृत्य में हास्य-व्यंग्य का भी समावेश रहता है। नृत्य का अन्तिम भाग कुदमेदुप्पु कहलाता है जिसमें लाठी और तलवार जैसे आयुधों के संचालन की योग्यता का प्रदर्शन किया जाता हैं।

कईकोट्टिकलि

इसे थेरुवथिरकलि भी कहते हैं। यह केरल की स्त्रियों का आकर्षक नृत्य है जो ओवम् व थेरूवथिर जैसे पर्वों पर आयोजित किया जाता है। कोमल लास्य अंग की प्रधानता वाले इस नृत्य में जब पुरुषों ने भी भाग लेना आरम्भ किया तो उसमें नृत्य के तांडव अंग का समावेश भी हो गया। बालों में चमेली के फूलों का गजरा लगाकर केरल की स्त्रियां अपने विशेष परिधान पहनकर मधुर थेरूवथिर गीतों के साथ इसे प्रदर्शित करती हैं। समूह के एक व्यक्ति द्वारा बोले जाने वाली पंक्ति को पूरा समूह ताली बजाते हुए और गोलाई में घूमते हुए दुहराता है। प्रत्येक पग पर उनका झुकना और मुद्राओं को प्रदर्शित करना देखते ही बनता है।

ब्राह्मणिप्पट्टु

यह नृत्य अधिकतर विवाह जैसे अवसरों पर किया जाता है। ब्राह्मणि या पुष्पिणि जाति की स्त्रियों द्वारा ही यह नृत्य किया जाता है। एक स्टूल पर भगवती की मूर्ति स्थापित रहती है जिसके चारों ओर नर्तकियाँ काँसे की थालियों को बजाते हुए भक्तिपूर्ण गीत गाती हैं। जैसे-जैसे गीत की ध्वनि तीव्र होती जाती है तो नर्तकियां उसी के अनुसार नृत्यरत होने लगती हैं।

मुदिएत्तु

दरिका नामक राक्षस का संहार करने वाली भगवती से सम्बन्धित कथा इस नृत्य का आधार है। नर्तकों के चेहरे लिपे-पुते होते हैं और उनके परिधान अत्यन्त

भड़कीले होते हैं। कुरूप्पनमार लोगों द्वारा यह नृत्य विशेषतया भद्रकाली के मन्दिरों में किया जाता है।

कोलकलि

यह गोलाई में किया जाने वाला नृत्य छोटी लकड़ियों को बजाते हुए विशेष पदाघातों के साथ पुरुष और स्त्रियों द्वारा किया जाता है। जैसे-जैसे नृत्य आगे बढ़ता है, तो नर्तकों का गोलघेरा भी बढ़ता और सिमटता रहता है। यह नृत्य लकड़ी के रंगमंच पर भी किया जाता है, इसलिए इसका नाम थट्टिन्मेलकलि भी है।

पूरक्कलि

यह नृत्य मालावार के थिय्या लोगों द्वारा मार्च–अप्रैल के मध्य में देवी की उपासना स्वरूप तत्सम्बन्धी मन्दिरों में किया जाता है। शारीरिक कसरतों में दक्ष व्यक्ति ही इसे कर सकते हैं, जो केरल के परम्परागत व्यायामों से सम्बन्धित होते हैं। परम्परागत दीपदान के चारों ओर खड़े होकर नर्तक अट्ठारह विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरते हैं, जिन्हें निरम् कहा जाता है।

वेलकलि

यह बुराई पर अच्छाई से सम्बन्धित नृत्य है, जिसमें नायर जाति के व्यक्ति भाग लेते हैं। नर्तक भड़कीली पोषाकों में चमचमाती तलवारें और ढाल लेकर इस नृत्य को करते हैं।

कोलम् घुल्लल

यह नृत्य प्रायः प्रेत बाधाओं से मुक्ति के लिए किया जाता है। प्राचीन लोक वाद्यों पर किए जाने वाले इस नृत्य में नर्तक चेहरे पर मेकअप करके विभिन्न रंग-बिरंगे सुसज्जित परिधानों में इसे करते हैं। नृत्य के साथ कोई गीत नहीं गाया जाता है।

कुरवरकलि

यह निम्न जातियों द्वारा किया जाने वाला लोकनृत्य है जो उत्सवों पर मन्दिर की चहार दीवारी के बाहर प्रस्तुत किया जाता है। नर्तक शरीर और मुख पर चंदन लगाते हैं, लाल रंग वाले छेति फूलों की माला पहनते हैं, सफेद धोती तिकोनी टोपी लाल पटका धारण करते हैं तथा पैरों में घुंघरू बाँधकर परम्परागत दीप के चारों ओर वीक्कम् चेंडा जैसे तालवाद्यों की निर्धारित ताल पर नृत्य करते हैं।

परिचमुत्तुकलि

इस लोकनृत्य का उद्गम् केरल की प्रसिद्ध परम्परागत तलवारबाजी कलरिपयत्तु से हुआ हैं। नर्तक हाथों में ढाल तलवार लेकर तलवारबाजी की कला

का अनुशरण करते हुए आगे पीछे होते हैं और तलवारबाजों की मुद्राओं का अनुशरण करते हैं और गोलाई में घूमते है। मालाबार के थिय्या लोगों और त्रावणकोर के क्षेत्र में ईसाइयों द्वारा इस नृत्य को प्रस्तुत किया जाता है। वीरतापूर्ण भाव वाले गीत नृत्य के साथ अविराम गति से गाये जाते हैं और ढाल पर तलवारों की आवाजों के साथ झांझलयबद्ध रीति से बजाये जाते हैं।

कन्नियारकलि

यह केरल का प्रसिद्ध व प्राचीन लोकनृत्य है। कन्नियारकलि को देशथुकलि भी कहते हैं। इसकी गति तीव्र होती है, जिसे असुरवध सम्बन्धी भक्तिपूर्ण वीरोचित भाव सहित देवी भगवती के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। रंगबिरंगी पोशाकों वाले इस नृत्य में चालीस से अधिक पदाघात या पुरट प्रस्तुत किये जाते हैं और लगभग सात दिनों तक एरावक्कलि, करिवेल, वट्टकलि, आंडिक्कुथु, वेलों और मलाम आदि नामों से सम्बोधित होकर यह नृत्य प्रतिदिन दर्शकों का भरपूर मनोरंजन करता है। केरल में मालावार क्षेत्र के मलयम् दासों के जीवन पर आधारित यह नृत्य नायर ब्राह्मणों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ गाये जाने वाले गीतों में जमींदारी प्रथा पर प्रकाश पड़ता है। वाद्ययंत्रों में चेंडा, मद्दलम्, एलथलम् और चेंगल जैसे वाद्य-यंत्रों का प्रयोग होता है।

केरल के उपर्युक्त विशेष नृत्यों के अतिरिक्त अन्य जो नृत्य प्रचलित हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—कक्करिसिकलि, दप्पुकलि, मोपलाकलि, वट्टकलि, कोथमूरि, पोट्टाकलुकलि, पन, सर्पमथुल्लल, वेलिच्प्पदु थुल्लल, पुलयारकलि, अय्यप्पन्नुविलक्कु, कलाथुमकुदयुम्, कवडिअट्टम्, पुरत्तु, भद्रकालिथुल्लल, कम्पदडकलि, अम्मनट्टम्, थुक्कम्, आयिवारकलि, एज़मत्तुकलि, पदयानि, थियट्टु, भूतम् थुल्लल, पनरकलि, विथुचोरियल, थय्यम्, कुरथियट्टम्, थुम्पिथुल्लल, कुम्मि, कदवकलि, थप्पुमेलकलि, परयन्थिर, चेरुमारकलि।

□

कर्नाटक

कर्नाटक का यक्षगान नामक लोकनृत्य एक नृत्यनाटिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जो कर्नाटक की मुख्य लोकविधा है। इसका अंग संचालन तथा मुद्राएं कथकलि के समान होती हैं और इसे खुले रंगमंच पर गर्मियों की फ़सल कटने के बाद किया जाता है। इसमें दो प्रकार के पात्र होते हैं, जिनमें एक सौम्यभाव धारण किये रहता है और दूसरा रौद्र रूप में प्रस्तुत होता है। यक्षगान में रामायण और महाभारत की कथाओं को अभिनीत किया जाता है। नर्तक अपने गीत की पंक्तियां नाट्य के बीच में अथवा प्रधान दृश्य की समाप्ति के बाद गाते हैं।

कर्नाटक के अन्य लोकनृत्यों में कुर्ग का फ़सल नृत्य है, जो फ़सल-उत्सव (हुट्टारी) के अवसर पर किया जाता है। मैसूर राज्य के चक्कइ और कोलाट्ट नृत्य भक्तिभाव-पूर्ण लोकगीतों के साथ किये जाते हैं, जिनकी कथाओं का आधार 'रामायण' और 'महाभारत' होता है। नर्तक अपने हाथों में चक्के लिए रहते हैं और तेलुगू भाषा में गीत गाते हुए तालम् की लय के अनुसार नाचते हैं। इनके अतिरिक्त पुरवीअट्टम्, (पोइकल कुदरीअट्टम्) कर्नाटक के प्राचीन लोकनृत्यों में गिना जाता है। यह चोल तथा पांड्य राजाओं के काल से चला आ रहा है। इस आकर्षक नृत्य में गुजरात की कच्छी घोड़ी की तरह एक लकड़ी का घोड़ा बनाया जाता है, जिसकी पीठ में एक सूराख होता है। नर्तक घोड़े को अपनी कमर के चारों ओर बाँधकर नृत्य करता है। धार्मिक तथा सामाजिक अवसरों पर प्रस्तुत किये जाने वाले इस नृत्य में ऐतिहासिक कथाएँ सरल प्रतीकों में प्रस्तुत की जाती हैं। अनेक वाद्य, गीत और घूमते हुए नर्तकों से लोगों का बहुत मनोरञ्जन होता है।

□

आन्ध्र

कुचिपुड़ि नृत्य

आन्ध्र में कुचिपुड़ि नाम का एक गाँव है। इसी गाँव के नाम पर कुचिपुड़ि नृत्य का आविर्भाव हुआ है। कहा जाता हैं, कि सिद्धयेन्द्र योगी नामक एक तपस्वी ने इस नृत्य का आरम्भ किया था। बाद में विजय नगर राज्य की सहायता से इसका अच्छा प्रचार व प्रसार होता रहा है।

कुचिपुड़ि नृत्य में पैरों का काम, अंग-संचालन तथा कुछ व्यवस्थित मुद्राएँ होती हैं। परन्तु इसकी मुख्य विशेषता भाव पूर्व अभिनय है। कुचिपुड़ि नृत्य में शृंगार रस की प्रधानता होती है और इसकी रूपरेखा नृत्य नाट्य जैसी होती है। आजकल यह नृत्य भरतनाट्यम् और कथकलि जैसी नृत्य विधाओं के साथ भारत के शास्त्रीय नृत्यों में गिना जाने लगा है।

डप्पु वाद्यम्

इस लोक नृत्य में डप्पु नामक एक ढोल बजाया जाता है, उसी के कारण इसका नाम 'डप्पुवाद्यम्' पड़ गया है। नर्तक ढोल बजाता हुआ तथा आगे-पीछे कदम रखता हुआ नृत्य करता है।

माथुरी

इस नृत्य को स्त्रियाँ और पुरुष एक दूसरे की ओर खड़े होकर करते हैं। पुरुषों के हाथों में लकड़ी के छोटे-छोटे डंडे होते हैं, जिन्हें नृत्य के साथ बजाया जाता है। स्त्रियाँ ताली बजाकर उनका साथ देती हैं।

वथकम्मा

यह लोकनृत्य स्त्रियों द्वारा प्रायः विवाह के अवसर पर किया जाता है, जिसमें सैजानबाई नामक एक स्त्री की प्राचीन कथा प्रस्तुत की जाती है।

लम्बाड़ि

आन्ध्र के बंजारे (लम्बाड़ि लोगों की स्त्रियाँ रंग बिरंगी वेशभूषा धारण करके इस नृत्य को करती हैं। रात्रि में आग के चारों ओर पुरुष और स्त्रियाँ नृत्य करते हुए गीत गाती हैं।

सिद्धि

ब्रिटिश काल में राजाओं ने अपनी सुरक्षा के लिए अफ्रीकी मूल के तन्दुरुस्त अंगरक्षकों को राज्य में नियुक्त किया था, जो सिद्धि कहलाते हैं। धीरे-धीरे जब सिद्धि लोगों की वंश परम्परा बढ़ी, तो वे यहां की संस्कृति से भी जुड़ गए और दक्षिण के हैदराबाद को उन्होंने अपना मूल क्षेत्र बना लिया। इनकी वेशभूषा और नृत्यों पर अफ्रीकी प्रभाव ज्यों का त्यों चला आ रहा है। गीतों में राजा की स्थिति होती है और नृत्य में जोरदार ताल-आघातों के साथ वीरोचित भावों की प्रधानता रहती है। सिद्धि लोग तेलुगू, हिन्दी और अपने अफ्रीकी मूल की भाषा को बखूबी बोल लेते हैं। इनकी कला को आन्ध्र और अफ्रीका सङ्गम कहा जा सकता हैं।

आन्ध्र में उपर्युक्त लोक नृत्यों के अतिरिक्त कुम्मी और कोलाट्टम् नृत्य भी काफी लोकप्रिय हैं, जिनकी विस्तृत चर्चा तमिलनाडु के लोकनृत्यों में की जा चुकी है।

'शिलप्पदिकारम्' जैसे प्राचीन तमिल ग्रन्थों में कहा गया हैं, कि प्राचीन तमिल कर्नाटिक नृत्यों को दो भागों बाँटा गया था। प्रेम गाथाओं वाले 'अहकुथु' और वीर गाथाओं वाले नृत्यों को 'पुरकुथु' कहा जाता था। इन प्राचीन नृत्यों में जिन ग्यारह कुथु श्रेणी के नृत्यों का उल्लेख मिलता है, वे इस प्रकार हैं—अल्लियम्, कुदम्, पवई, कुटुकोट्टि, पांडुरंगम्, कुदई, थूडि, पेडि, मरक्कल, मल और कदयम्।

दक्षिण भारत के लोकनृत्य, लोकनाट्य और संगीतरूपक अत्यन्त समृद्ध हैं जिनमें बच्चे, स्त्रियाँ तथा पुरुष सभी पारङ्गत होते हैं। विभिन्न अवसरों पर इनकी प्रस्तुतियाँ लोक का यथेष्ट मनोरंजन करती हैं। सभी लोकनृत्य अपनी मिट्टी से जुड़े होते हैं, इसलिए वे अपनी धरती, अपना गाँव, अपना वेश और अपना देश कभी नहीं बदलते, बल्कि दूसरों को कुछ देने की क्षमता रखते हैं। उनका रंग-रूप अपना कर समाज की संस्कृति में परिवर्तन होता रहता है। शास्त्रीय संगीत हो, सरल संगीत हो, उपशास्त्रीय संगीत हो या पाश्चात्य पॉप सङ्गीत, सभी विधाएँ लोक सङ्गीत को अपना कर अपने स्वरूप को नया चोला पहनाती रहती हैं। इसीलिए हमारा लोक संगीत भारतीय संगीत का प्राण कहा जाता है। □□□

भारतीय संगीत में नृत्य का स्थान

अँग्रेज इतिहासवेत्ता डॉ० हॉल के अनुसार द्रविड़ संस्कृति ईसा से ५००० वर्ष पूर्व की मानी जाती है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में नृत्यरत युगल की जो मूर्तियाँ मिली हैं, उनसे प्रतीत होता है, कि भारतीय संगीत में नृत्य का स्थान प्राचीनकाल से ही महत्त्वपूर्ण रहा है। आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों में शैव धर्म की प्रधानता रही है तथा शिव से नृत्य का सम्बन्ध माना गया है।

ईसा से लगभग ४००० वर्ष पूर्व आर्य लोग जब भारत आये और द्रविड़ संस्कृति के साथ उनकी सभ्यता पनपी, तो उसे इण्डो-आर्य सभ्यता कहा गया। रामायण तथा महाभारत में पांड्य, चेर और चोल राज्यों का उल्लेख मिलता है, जिनकी भाषा तमिल थी। उनका साहित्य और सङ्गीत भी समृद्ध था। ईसा से १७०० वर्ष पहले तमिलनाडु में लगभग ५०० कवि तथा लेखकों का उल्लेख मिलता है। नाट्य और संगीत पर उस समय जो ग्रन्थ उपलब्ध थे, उनके नाम थे—'अगस्त्यम्' 'मुडुनुल', 'इसाइनुनुक्कम्', 'गोननोल', 'सइयंतम्', 'सेईत्रियम्', 'पंचमरकु', 'मथिवनार नामक तमिल' और 'कुथुमुल'। यह सभी ग्रन्थ काल के गर्त में समा गये, लेकिन उनका उल्लेख पश्चात्कालीन तमिल ग्रन्थों में आज भी उपलब्ध है, ठीक वैसे ही जैसे कि नाट्यशास्त्र में 'आर्य' तथा 'सूत्र' का उल्लेख मिलता है।

ऋग्वेदकालीन संहिता ग्रन्थों में सुपर नड्याय नामक नाटक का उल्लेख मिलता है। रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों में नृत्य तथा नृत्य-नाटिकाओं का प्रचुर उल्लेख किया गया है। इतिहास से ज्ञात होता है, कि ईसा से ५०० वर्ष पूर्व तक सिलालिन व कृशाश्व के नट्सूत्र अत्यन्त उन्नत अवस्था में थे और लोक में प्रचलित थे। पतंजलि (ईसा से १४० वर्ष पूर्व) ने कंसवध और बालिबन्धन नामक नाटकों का उल्लेख किया है। 'दिव्य वादन' में कहा गया है, कि राजा रुद्रानन्द के वीणा वादन पर उनकी पत्नी चन्द्रावती नृत्य करती थी। कालिदास के 'मालविकाग्नि-मित्र' के अनुसार राजसभाओं में अनेक नर्तक और नृत्य गुरु रहते थे, जिन्हें भरतनाट्य की शिक्षा दी जाती थी। देवेन्द्र की 'उत्तरादयन टीका' में राजा उदय की पत्नी के नृत्य का उल्लेख किया गया है, जो अपने पति के तंत्री वाद्य के साथ

नृत्य करती थी। 'महावंश' ग्रन्थ के अनुसार श्री लंका (शीलाँग) के राजा पराक्रमबाहु (प्रथम) की रानी रूपवती नृत्य में पारंगत थी।

जब मध्य भारत और दक्षिण भारत के मंदिरों में देवदासी प्रथा आरम्भ हुई, तो प्राचीन नाट्य और नृत्य के सूत्र विविध धर्मों के आचार्यों में प्रचलित हो गये तथा समाज में नृत्य कला का विकास होने लगा। इसी से यह ज्ञात हुआ, कि भारतीय नृत्य का इतिहास कितना पुराना और समृद्ध है। साहित्य और संगीत सम्बन्धी प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थों तथा पत्थरों पर उत्कीर्ण शिल्प से भी भारतीय नृत्य की उत्कृष्ट परम्परा पर प्रकाश पड़ता है। जैसे-जैसे काल बीतता गया, नृत्य का प्रचार प्रसार तीव्र गति से होने लगा और जावा, बालि, श्याम और कम्बोडिया तक उसका प्रभाव पड़ने लगा।

मुस्लिम शासकों के आने से भारतीय संगीत तथा नृत्य में पर्याप्त परिवर्तन हुए और उन्हीं परिवर्तनों का परिणाम हुआ उत्तर तथा दक्षिण के संगीत में विभेद। देवालय और दरबार की कलाओं में एक बड़ा परिवर्तन आ गया। ईश्वर के प्रति समर्पण तथा राजा के प्रति समर्पण के भाव ने भारतीय संगीत और नृत्यकला में जो परिवर्तन किए, वे आज तक विद्यमान हैं। इसीलिए शास्त्रीय नृत्य और अशास्त्रीय नृत्य में आज एक लम्बी दूरी दिखाई देती है। आक्रान्ताओं के भय से उत्तर भारत के शीर्षस्थ नाट्याचार्य, कलाकार और ग्रन्थों ने दक्षिण में शरण लेकर प्राचीन भारतीय संगीत को सुरक्षित रखा अन्यथा वह पूर्णतया नष्ट हो जाता और भारत अपनी प्राचीन विरासत से अपरिचित रह जाता।

तंजाबूर (तंजौर) के मराठा शासक तुलजई (१७६३-१७८७) के प्रयत्नों से सम्पूर्ण भारत के कलाकारों को प्रश्रय मिला। सर्फ़ोजी (१७८७-१८२४) और शिवाजी (१८२४-१८६५) ने इस परम्परा को और सुदृढ़ किया। उसी समय संत त्यागराज, दीक्षितार और श्यामा शास्त्री के पदों से कर्नाटिक संगीत के प्रचार में बहुत योगदान मिला। उत्तर भारत में सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, कबीर इत्यादि के पद साहित्य से यही स्थिति उपलब्ध हुई। इसी समय तंजौर भ्राताओं के नाम से विख्यात चिन्नैया, पोन्नैया, वाडिवेलु और शिवानन्दम् के प्रयत्नों से भरतनाट्य के परिष्कार अथवा सम्पादन का प्रयत्न किया गया। उसी के परिणाम स्वरूप आज भरतनाट्यम् का प्राचीन तथा अर्वाचीन शुद्ध स्वरूप हमारे सामने है।

इसके संवर्धन का पर्याप्त श्रेय त्रावणकोर के राजा स्वाति तिरुनाल को भी जाता है, जिसके प्रयत्नों से पूरे दक्षिण भारत में भरतनाट्य कला का विकास हुआ।

इस प्रकार विदेशी शासकों से बचती हुई भारत की भरतनाट्यकला धीरे-धीरे निकटवर्ती राज्यों में प्रसारित होती हुई समस्त भारत में फैलती गई और लोकनृत्यों के आधार पर नृत्य करने वाले नर्तकों तथा गुरुओं को अनुप्राणित करती हुई पल्लवित हुई।

नृत्यकला मनोरंजन के साथ-साथ आध्यात्मिक आनन्द भी प्रदान करती है, जिससे मनुष्य की आसुरी शक्तियों का दमन होता है और हृदय में सत्व गुणों का उदय होता है। साहित्य में रससिद्धान्त के प्रसिद्ध आचार्य मम्मट ने कहा है—'नाट्य के माध्यम से प्रसिद्धि, धन, कर्तव्य, सदाचार आदि की उपलब्धि होती है'। यूनान के लेखक सिसेरो के अनुसार—"नाटक जीवन का प्रतिरूप, रीति-रिवाज का दर्पण और सत्य का प्रतिबिम्ब है"।

नृत्य के माध्यम से आसान, प्राणायाम और चित्त की एकाग्रता जैसी क्रियाएँ सहज ही उत्पन्न होती हैं इसलिए भारतीय संगीत में उसे महत्वपूर्ण तथा मुक्ति देने वाला बताया गया है। द्वारका महात्म्य में लिखा है—

योनृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैरत्यंतभक्तितः ।
सनिर्वहति पापानि जन्मांतर शतैरपि ।

अर्थात् जो प्रसन्नचित्त से, श्रद्धा और भक्तिपूर्वक, भावों सहित नृत्य करते हैं, वे जन्म-जन्मान्तरों के पापों से मुक्त हो जाते हैं।

इस प्रकार प्राचीन काल से वर्तमान काल तक भारतीय संगीत में नृत्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, जो बात वाणी द्वारा व्यक्त नहीं हो सकती, वह शरीर की चेष्टाओं द्वारा आसानी से व्यक्त हो जाती है। इसीलिए भारतीय समाज में नाट्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। विभिन्न संस्कार, विभिन्न ऋतुएँ विभिन्न पर्व और विभिन्न देवी-देवताओं की उपासना से सम्बन्धित नृत्य भारतीय समाज में प्रतिष्ठित एवम् लोकप्रिय हैं। दरबार, मन्दिर और लोक संस्कृति में पलने वाले शास्त्रीय, उपशास्त्रीय और लोकनृत्य भारतीय संगीत के प्रमुख अंग हैं, जो भारत की एकता और अखण्डता का प्रतिविधित्व करते हैं।

□□□

भारतीय रंगमंच की परम्परा और स्वरूप

विभिन्न कलाओं का विकास होने के साथ जब रंगमंचीय कलाओं को खुले मैदान से किसी मण्डप या छत के नीचे लाया गया। तभी से रंगमंच की परम्परा का सूत्रपात हुआ और उसके स्वरूप को वैज्ञानिक दृष्टि से आंका गया पानी, धूप और आंधी जैसी प्राकृतिक आपदाओं से बचने के लिए मनुष्य को ऐसे मंच की आवश्यकता पड़ी जो सभी दृष्टियों से समृद्ध हो और जहाँ मंच की कलाओं का आस्वादन शान्ति और निर्भयता के साथ किया जा सके।

रंगमंच को अँग्रेज़ी में 'स्टेज़' या 'डायस' कहते हैं। दर्शक-कक्ष को अँग्रेज़ी में 'ऑडिटोरियम' कहा जाता है। इन दोनों के मिले हुए रूप को हिन्दी में 'रंगशाला' या 'प्रेक्षाग्रह' कहते हैं। वर्तमान रंगशाला के अन्दर स्थापित रंगमंच का विकास होने में आज तक पच्चीस से अधिक शताब्दियाँ लग गई हैं लेकिन पिछले कुछ वर्षों में वैज्ञानिक साधनों की उपलब्धता के कारण रंगशाला का निर्माण और उसका विकास तीव्र गति से हुआ है।

भारतीय वेदों में नाट्य शाला और रंगशाला का विवरण प्राप्त होता है लेकिन व्यवस्थित रूप से उसका विवेचन भरत के 'नाट्यशास्त्र' में ही प्राप्त होता है।

नाट्यशास्त्र के दूसरे अध्याय में तीन प्रकार के प्रेक्षागृहों (रंगशालाओं) का विधान किया गया है—१. विकृष्ट (लम्बा आयताकार), २. चतुरस्र (वर्गाकार), ३. त्र्यस्र (तिकोना)। ये तीनों तीन-तीन परिमाण के होते हैं—ज्येष्ठ, मध्यम और अवर (कनीय या कनिष्ठ)। इनमें से ज्येष्ठ (विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र), १०८ हाथ लम्बे होते हैं। मध्यम (विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र), ६४ हाथ लम्बे होते हैं और कनीया या कनिष्ठ (विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र) ३२ हाथ लम्बे होते हैं। इनमें से ज्येष्ठ प्रेक्षागृह देवताओं का, मध्यम राजाओं का और कनीय या कनिष्ठ सामान्य व्यक्तियों का होता है।

इन सब प्रकार के प्रेक्षागृहों में मध्यम (विकृष्ट, चतुरस्र तथा त्र्यस्र) ही प्रशस्त कहा गया है, क्योंकि उसमें पाठ्य और गेय अर्थात् दृश्य और श्रव्य सब कुछ स्पष्ट

एव सुविधाजनक रहता है। ६६ फुट लम्बा और ४८ फुट चौड़ा विकृष्ट-मध्यम प्रेक्षागृह ही सामान्य लोगों के लिए बनाना चाहिए। इसी में पाठ्य और गेय स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ता है। अच्छी रंगशाला का निर्माण करने के लिए अच्छी भूमि का चुनाव करके शुभ मुहूर्त में उसके निर्माण की स्थापना करनी चाहिए।

रंगशाला या प्रेक्षागृह में कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कक्ष भी निर्मित किये जाते हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. प्रवेश-पत्रालय (टिकट घर)
२. दर्शक-अलिन्द या दीर्घा (लॉबी)
३. विश्राम कक्ष (लुंज)
४. जलपान गृह (केन्टीन या रेस्तरॉं)
५. वेशकक्ष (क्लॉक रूम)
६. नेपथ्यशाला (ग्रीन रूम)
७. शौचालय तथा गुसलघर (टॉयलेट रूम तथा बाथरूम)
८. भाण्डागार (स्टोर हॉल)
९. यन्त्र-कक्ष (मशीन-रूम)
१०. वाद्यागार (म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेन्ट रूम)
११. प्रदर्शक-कक्ष (ऑपरेटर्स केबिन)
१२. अभिनेताओं का जलपान गृह (एक्टर्स रिफ्रेशमेण्ट रूम)
१३. विद्युतयन्त्र गृह (जनरेटर रूम)
१४. व्यवस्थापक कक्ष (मैनेजर रूम)
१५. मोटर स्टैण्ड (कार पार्किग)
१६. सुरक्षा गार्ड-गृह (सिक्योरिटी रूम)
१७. वाद्य भूमि (ऑर्केस्ट्रा पिट)
१८. रंगदीपन प्रकोष्ट (स्टेज लाइटिग केबिन)
१९. ध्वनिदीपन प्रकोष्ठ (स्टेज साउण्ड सिस्टम)
२०. विश्राम कक्ष (रिटायरिंग) रूम)
२१. प्रतीक्षालय (लाउन्ज)

इनके अतिरिक्त पोस्टरों को प्रदर्शित करने वाली दीर्घा, आग बुझाने वाले यन्त्र, ट्यूबवैल (नियमित व निरन्तर जल सप्लाई के लिए) एवं रंगमंच से सम्बन्धित ध्वनि एवं प्रकाश से सम्बन्धित नये-नये उपकरण तथा किसी भी दुर्घटना से बचाव के लिए एवं भीड़ तथा यातायात को नियन्त्रित करने का प्रावधान भी आज की आवश्यकता को देखकर किया जाता है।

शिल्प विज्ञान की उन्नति के कारण आज के रंगमंच का रचना विधान वास्तुकला के नवीनतम अनुसंधानों की देन है। रंगमंच की रचना का उद्देश्य यही है

कि हज़ारों श्रोता कलाकार की कला का एकसाथ बैठकर रसास्वादन कर सकें और कला के जीवन्त स्वरूप का आनन्द ले सकें। इसी दृष्टि से रंगमंच पर ध्वनि एवं प्रकाश की व्यवस्थायें नये-नये मूल्यवान यन्त्रों के माध्यम से की जाती हैं। प्रकाश व्यवस्था के अन्तर्गत नये-नये प्रयोग किये जा रहे हैं जिनमें शीर्षदीप (हैडलाइट), उज्ज्वल आलोक (लाइम लाइट), अग्रदीप (पायलेट लाइट), मन्दक (डिमर), कोण-महादीप (ग्राउण्ड स्पॉट), पार्श्वदीप (विंग स्पॉट), तलदीप (फुट लाइट), सूचीदीप (पिन स्पॉट), स्थल-प्रकाश (स्पॉट लाइट), चमकदीप (फ्लैशलाइट), मचानदीप (पर्च स्पॉट), चलदीप (मूविंग स्पॉट), छायादीप (शेडोलैम्प), चित्रदीप (प्रॉजेक्टर) के द्वारा रंगमंच पर प्रदर्शन कों अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया जाता हैं।

ये व्यवस्थाएँ दर्शकों और श्रोताओं को स्वप्न के संसार में ले जाती हैं और नाट्य और अथवा नृत्य का पूर्ण आनन्द उसे प्राप्त होता है। विदेशों में खुले रंगमंच, चलमंच (वैगन स्टेज), उन्नयन मंच (लिफ्ट स्टेज), सर्पक मंच (शिफ्ट स्टेज), द्विपक्षीय रंगमंच, मोनो सैटिंग स्टेज, पैरचपकी मंच (ट्रेडमिल स्टेज), चक्रिल रंगमंच (रिवॉल्विंग स्टेज) के नए-नए निर्माण हो चुके हैं। सभी का उद्देश्य एक है और वह है—दर्शक या श्रोता को अधिक से अधिक आनन्द विभोर करना।

संगीत के कार्यक्रम प्रायः चार प्रकार के सभाग्रहों में आयोजित किए जाते हैं—

१. दस से एक सौ श्रोताओं के लिए इसके लिए कोई दीवानखाना या छोटा सभाग्रह प्राप्त होता है।

२. एक सौ से पाँचसौ श्रोताओं के लिए मध्यम आकार का सभाग्रह उपयुक्त रहता है।

३. पाँच सौ से एक हजार श्रोताओं के लिए बड़ा सभाग्रह उपयुक्त रहता है।

४. एक हजार से अधिक संख्या के श्रोताओं के लिए खुला सभाग्रह (Open air theatre) या पंडाल उपयुक्त रहता है।

संगीत कार्यक्रमों के लिए अधिकतर सभाग्रह मध्यम आकार (८०×४०×१५) अर्थात् ४८,००० घन फुट के बनाये जाते हैं, जिनमें तीन सौ से छह सौ तक श्रोताओं के बैठने की जगह होती है।

नाट्य मण्डप से सम्बन्धित प्राचीन उल्लेख—अग्नि पुराण, हरिवंश पुराण, मत्स्य पुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण और जैन धर्म के ग्रन्थ रायबसेनीययुत्त इत्यादि ग्रन्थों में भी पूरा मिलता है। प्राचीन नाट्य मण्डप या नाट्य ग्रह राजप्रासादों अथवा देवालयों से सम्बन्धित होते थे। शारदा तनय के ग्रन्थ 'भाव-प्रकाशन' में तीन प्रकार के रंग मण्डपों का उल्लेख मिलता है—चतुरस्त्र, त्र्यस्त्र और वृत्त। यहाँ पर सभापति तथा सम्बन्धित लोगों का गायन, वादन एवम् नर्तन से युक्त भावों से रंजन होता है, उसे 'रंग मण्डप' कहते हैं। जहाँ अन्य देशीय नाट्य मण्डली वालों, नागरिकों

तथा सज्जनों को राजा की ओर से संगीत सुनाने की योजना की जाय, वह 'वृत्त' (गोलाकार) रंगमण्डप कहलाता है। यहाँ वेश्या, आमात्य, धनिक, सेनापति, मित्र और पुत्रों सहित राजा संगीत का आनन्द लेता है, वह 'चतुरस्र' रंगमण्डप कहलाता है। 'त्रयस्र' मण्डप में मार्गी संगीत, 'चतुरस्र' मण्डप में मार्गी व देशी संगीत तथा 'वृत्त' मण्डप में मार्गी तथा देशी संगीत के अतिरिक्त और भी विचित्र क्रियाएँ मिली रहती हैं। नाट्य मण्डप से सम्बन्धित यह भेद अपने ढंग के अलग हैं।

प्राचीन काल में भारत तथा यूनान इत्यादि समस्त देशों में नाट्य सम्बन्धी प्रदर्शन प्रायः दिन में ही हुआ करते थे। रात्रि में होने वाले सभी प्रयोगों में दीपकों व मशालों का प्रयोग किया जाता था। यूरोप में यह व्यवस्था १६ वीं शताब्दी तक रही, लेकिन भारत में विद्युत उपकरणों तथा गरीबी के कारण १९ वीं शताब्दी तक बनी रही। आज भी भारत के अनेक गाँवों में लोकनृत्य और लोकनाट्य मशालों तथा गैस के हण्डों की रोशनी के बीच आयोजित किये जाते हैं और जहाँ इनका भी अभाव है, वहाँ चन्द्रमा की रोशनी को मुख्य आधार बनाया जाता है।

नाट्य के आयोजकों, सहायकों, क्षीण प्रकाश, क्षीण ध्वनि, कलाकारों की भूल, से, शत्रुओं तथा प्राकृतिक प्रकोपों के कारण नाट्य प्रदर्शन में व्यवधान उत्पन्न हो सकता है, जिसे महर्षि भरत ने 'नाट्यघात' की संज्ञा दी है। अच्छे नाट्य मण्डप, नाट्य गृह, नाट्य शाला, रंग मण्डप, रंगशाला में इस प्रकार के व्यवधानों की अपेक्षा कम रहती है। अतः आज उनकी स्थापना में बहुत ध्यान रखा जाता है।

महर्षि भरत के अनुसार नाट्य अथवा नृत्य प्रदर्शन की सफलता पात्र (कलाकार), प्रयोग (प्रदर्शन) और समृद्धि (रूप सौन्दर्य एवं आभूषण) के ऊपर निर्भर करती है। जब किसी प्रयोग के दर्शक प्रसन्नता व्यक्त करें, तो उसे 'मानुषीय-सिद्धि' और जब वे रस विभोर हो जायें, तो उसे 'शारीरिक सिद्धि' कहते हैं। जब नाट्य या नृत्य में सत्व की प्रधानता हो जाती है और भावों के अभिनय का चरमोत्कर्ष स्थापित हो जाता है, तो ऐसे प्रयोग को दैवी-सिद्धि युक्त कहा जाता है, जब कोलाहल, अपशकुन एवम् किसी भी प्रकार के विघ्न उपस्थित नहीं होते, रंगमण्डप प्रेक्षकों से परिपूर्ण एवम् उत्थान रहित होता है, तो ऐसे प्रयोग या प्रदर्शन को भी दैवी सफलता से युक्त माना जाता है।

आज भवन ध्वनि की (Acoustics) के आधार पर नाट्य मण्डपों या भवनों का निर्माण किया जाता है, जिनमें निम्नांकित आवश्यकताओं मुख्य रूप से ध्यान रखा जाता है— ध्वनि अभिलेखन या ध्वन्यांकन; ध्वनि उच्चारण तथा प्रसारण और प्रकाश व्यवस्था वाले आज खुले और बन्द दोनों प्रकार के नाट्य मण्डप हमारे सामने मौजूद हैं, जो भारतीय रंगमंच की प्राचीन परम्परा और आधुनिक तकनीक दोनों का लाभ उठाते हुए कार्यरत हैं। भविष्य में नई उपलब्धियाँ होने से इनका अधिक से अधिक विकास होगा, ऐसी आशा है। □□□

नृत्य पर हिन्दू धर्म तथा भारतीय दर्शन का प्रभाव

हिन्दू धर्म भारत की प्राचीन सभ्यता का अंग है, जिसका आधार वैदिक संस्कृति है। वैदिक धर्म सनातन धर्म के रूप में विकसित हुआ, जिसके तीन सम्प्रदाय प्रचार में आए—

१. वैष्णव सम्प्रदाय, २. शैव सम्प्रदाय, ३. शाक्त सम्प्रदाय।

वैष्णव सम्प्रदाय : इस सम्प्रदाय में शंख, चक्र, गदा और पद्म को धारण करने वाले भगवान विष्णु को आराध्य माना गया है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमूर्ति में विष्णु को प्रधान मानकर उनकी उपासना करने वाले लोग वैष्णव कहलाये। कवि जयदेव ने अपने 'गीत गोविन्द' में विष्णु को आराध्य मानकर उनके दशावतारों का वर्णन किया है। इन दशावतारों में दो अवतार प्रमुख हैं—राम और कृष्ण। जो लोग इन अवतारों की साकार प्रतिमूर्ति बनाकर इनकी उपासना करते हैं, उन्हें सगुण भक्ति धारा का उपासक कहा जाता है।

शैव सम्प्रदाय : शैव सम्प्रदाय में भगवान शिव को इष्ट माना गया है, जिनकी जटा में गंगा, मस्तक पर चन्द्रमा, कण्ठ में सर्पों की माला, हाथ में त्रिशूल और डमरू स्थित हैं। इन्हें नृत्य का अधिष्ठाता माना गया है, इसीलिए शिव को नटराज कहा जाता है।

शैव सम्प्रदाय द्वारा योग और तन्त्र से सम्बन्धित अनेक वर्गों का विकास हुआ है।

शाक्त सम्प्रदाय : शाक्त सम्प्रदाय में भगवती पार्वती को शक्ति स्वरूपा मानकर उनकी आराधना की जाती है। भगवती के अनेक स्वरूपों से शाक्त सम्प्रदाय के विभिन्न वर्ग विकसित हुए, जिसमें उनके सौम्य और रौद्र रूपों से सम्बन्धित आराधना तथा अनुष्ठान इत्यादि का जन्म हुआ।

भगवान विष्णु को नाट्य का अधिष्ठाता मानकर उन्हें 'नटवर' कहा गया। भगवान शिव अर्थात् शंकर को नृत्य के उद्धत स्वरूप का प्रदर्शन करने के कारण

'नटराज' कहा गया और देवी (पार्वती) को नृत्य का लास्य रूप प्रस्तुत करने के कारण 'लास्यप्रिया' (नटी) कहा गया। प्राचीन वर्णन के अनुसार भगवान विष्णु, भस्मासुर नामक असुर के लिए सौम्य नृत्य का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। शिव प्रलय कर्त्ता होने के कारण उद्धत या ताण्डव नृत्य करते हैं और देवी अपने सुकोमल लास्य नृत्य से प्रकृति में स्थिरता, सद्भाव तथा शृंगार का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करती हैं।

हिन्दू धर्म में आत्म साक्षात्कार अथवा ईश्वर की प्राप्ति के लिए दो मार्ग बताये गये हैं—ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग।

ज्ञान मार्ग : ज्ञान मार्ग में आराधना के लिए किसी साकार माध्यम की अपेक्षा नहीं होती, इसीलिए उसका सम्बन्ध इच्छित फल की प्राप्ति के लिए केवल निराकार का चिंतन रहता है। संगीत या किसी अन्य कला से उसका कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता।

भक्ति मार्ग : भक्ति मार्ग में साकार प्रतिमा को आराध्य बनाया जाता है। अतः संगीत का सम्बन्ध गायन-वादन और नृत्य के रूप में उसके साथ सहजता से जुड़ जाता है। भक्तों ने भगवान को प्रसन्न करने के लिए जितना गायन-वादन और नर्तन किया है, उतना ही उन्होंने भगवान से भी कराया है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है, कि भगवान के साकार गुणानुवाद ने ललित कलाओं को जन्म दिया।

मूर्तिपूजा के सोलह अंगों को षोडशोपचार कहा गया है, यथा—१. आसन, २. स्वागत, ३. अर्घ्य, ४. आचमन, ५. मधुपर्क, ६. स्नान, ७. वस्त्राभरण, ८. यज्ञोपवीत, ९. चन्दन, १०. पुष्प, ११. धूप, १२. दीप, १३. नैवेद्य, १४. ताम्बूल, १५. परिक्रमा और १६. वन्दना। वैष्णव सम्प्रदाय में इन सोलह विधानों का बहुत महत्व है, इसीलिए नृत्य के क्षेत्र में भी इनका भावानुसारी प्रदर्शन किया जाता है।

कृष्ण भक्ति धारा में विभिन्न कवियों ने पद रचनाएँ कीं तथा कथानकों का निर्माण हुआ, जिन्हें नाट्य और गीत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। 'गीत गोविन्द' ने भारत की समस्त नृत्य शैलियों को प्रभावित किया। चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय ने नृत्त को आधार बनाया और सूरदास, मीरा, त्यागराज, पुरन्दरदास जैसे भक्त कवियों ने गीत संगीत की धारा बहाकर नृत्य के भाव पक्ष को पुष्ट किया। इस प्रकार नृत्य के क्षेत्र में हिन्दू धर्म और सभ्यता का बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा, जो परम्पराओं के माध्यम से आज तक विद्यमान है।

भारतीय दर्शन

भारतीय दर्शन में प्रमुख रूप से छः सम्प्रदायों को मान्यता दी गई है—१. न्याय, २. वैशेषिक, ३. सांख्य, ४. योग, ५. पूर्व मीमांसा, ६. उत्तर मीमांसा

(वेदान्त)। ये सभी वेदोक्त दर्शन हैं, जिन्हें आस्तिक दर्शन कहा जाता है। इन छः आस्तिक दर्शनों के विरोध में छः नास्तिक दर्शन भी माने गए। वेद को मानने वाला आस्तिक और उसका निन्दक नास्तिक माना गया है। छः नास्तिक दर्शनों के नाम हैं—१. चार्वाक, २. जैन, ३. वैभाषिक, ४. सौत्रान्तिक, ५. योगाचार (विज्ञानवाद) ६. माध्यमिक (शून्यवाद)। इनमें अन्तिम चार वास्तव में बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय हैं अतः नास्तिक दर्शन वास्तविक रूप में तीन ही हैं। भारतीय साहित्य पर वेदान्त दर्शन का विशेष प्रभाव रहा है, जिसे अद्वैत वेदान्त भी कहते हैं और जिनके मूल ग्रन्थ उपनिषद माने जाते हैं।

षड्दर्शनों के ६ सूत्रकार आचार्य हैं। कपिल ने 'सांख्यसूत्र' की रचना की, पतञ्जलि ने 'योग सूत्र', गौतम ने 'न्यायसूत्र', कणाद ने 'वैशेषिक सूत्र', जैमिनी ने 'मीमांसा सूत्र' और बादरायण ने 'ब्रह्म सूत्र' या 'वेदान्त सूत्र' की क्रमशः रचना की। अपने विषय की पुष्टि के लिए इन्होंने उपनिषदों को ही प्रमाण माना और उन्हीं के आधार पर अपने-अपने विषय को विकसित किया। बाद में इन सूत्रों पर विभिन्न भाष्य, वार्तिक, वृत्ति तथा टीकाएँ लिखी गईं, जिनसे षड्दर्शनों का अच्छा प्रचार और विकास हुआ।

१. न्याय

प्रमाणों द्वारा विषय के परीक्षण को न्याय कहते हैं। ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने तथा बौद्ध दर्शन का खण्डन करने के लिए इस दर्शन में विभिन्न प्रमाण दिए जाते हैं। इसमें परमात्मा तथा जीवात्मा की विशद व्याख्या की जाती है। नृत्य कला पर 'न्याय दर्शन' का बहुत कम प्रभाव पड़ा, क्योंकि इसमें अनुभूति और कल्पना को अधिक महत्व नहीं दिया जाता, जबकि न्याय में तर्क के आधार पर ही वस्तु की सिद्धि होती है।

२. वैशेषिक

विशेष नामक पदार्थ की विशिष्ट कल्पना के करने की दृष्टि से इस दर्शन को वैशेषिक कहा जाता है। यह दर्शन भौतिकवाद का निरूपण करते हुए मोक्ष की प्राप्ति का साधन बताता है। धर्म की परिभाषा के रूप में इस दर्शन का कहना है, कि जिससें अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति होती है, वही धर्म है। न्याय और वैशेषक दर्शन को अद्वैतवाद का सहायक माना जाता है। नृत्यकला पर इस दर्शन का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

३. सांख्य

सांख्य दर्शन में सम्यक् ज्ञान की प्रधानता है, अतः यह विशुद्ध ज्ञान मार्ग वाला दर्शन है, जिसके मुख्य प्रमाण प्रत्यक्ष और अनुमान माने गए हैं। तत्वों की संख्या या

ज्ञान की प्रधानता के कारण इस दर्शन को सांख्य कहा गया। इसमें उपनिषदों के मौलिक तत्वों को विकास क्रम में संजोया गया। पुरुष और प्रकृति-इन दो मूल तत्वों के आधार पर इस दर्शन में २५ तत्व माने गए हैं। सांख्य को वेदान्त का उपयोगी या अनुपूरक शास्त्र समझा जाता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार रामानुज तथा अन्य वैष्णव एवम् शैव वेदान्तियों ने सांख्य के ही आधार पर मध्ययुग में दर्शन तथा धर्म से सम्बन्धित विविध सम्प्रदायों की स्थापना की। अन्य कला और विधाओं के साथ नृत्य पर सांख्य दर्शन का विशेष प्रभाव रहा।

४. योग

जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध को स्थापित करने वाली प्रक्रिया 'योग' कहलाती है। इसीलिए योग शब्द मार्ग या प्रणाली का भी पर्याय है, जैसे भक्ति योग या भक्ति मार्ग, कर्म योग या कर्म मार्ग, ज्ञान योग या ज्ञान मार्ग। इन सभी में ऐसा समय आता है, जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है। इसलिए योग दर्शन में चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है, भले ही उसका माध्यम कुछ भी हो। योग दर्शन का नृत्य पर विशेष प्रभाव पड़ा, क्योंकि योग के प्रमुख अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की साधना नृत्य के माध्यम से सरलतापूर्वक हो जाती है। एक दृष्टि से नृत्य में भक्तियोग, राजयोग, हठयोग और कर्मयोग इत्यादि सभी का समाहार हो जाता है।

५. पूर्व मीमांसा

मीमांसा का अर्थ है अनुसंधान, समीक्षा अथवा विवेचन। परन्तु दार्शनिक जगत् में मीमांसा से वेद मीमांसा या कर्म मीमांसा का ही अर्थ ग्रहण किया जाता है। वेदों की मीमांसा धर्म-कर्म में होने के कारण इसे धर्म मीमांसा या कर्म मीमांसा भी कहते हैं। मीमांसा, कर्म मीमांसा और ज्ञान मीमांसा को कर्म काण्ड और ज्ञान काण्ड के लिए भी प्रयुक्त किया जाता है, इसीलिए प्रथम को 'पूर्व मीमांसा' और द्वितीय को 'उत्तर मीमांसा' कहा जाता है। बौद्ध धर्म के उन्मूलन में मीमांसा का प्रमुख हाथ रहा है। इसमें वेदों की व्याख्या की गई और अवैदिक धर्मों की कटु आलोचना। मीमांसा में कर्म अथवा क्रिया का सबसे अधिक महत्व है, जिसके अनुसार क्रिया, क्रियावान और क्रिया के अंगों के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु या पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। आत्मा या पुरुष प्रधान रूप से कर्त्ता या क्रियावान है अतः वह सदा कर्म करता है। इसीलिए उसे प्रधान रूप से ज्ञाता या द्रष्टा नहीं माना जाता, लेकिन कर्म अपने फल को स्वयं नियोग के माध्यम से प्राप्त करता है, इसलिए क्रियावान आत्मा भोक्ता भी हो जाती है। इस दर्शन में ज्ञान को भी क्रिया या व्यापार माना जाता है।

साहित्य शास्त्र में मीमांसा के कारण रस-मत का निरूपण हुआ, जिसे उत्पत्तिवाद या आरोपवाद कहा जाता है। रस रामादि अनुकार्य में भावों के संयोग से उत्पन्न हो जाता है। वह रंगमंच की परिस्थितियों के अनुकूल अपने को अनुकार्य समझता है और इस प्रकार अनुकार्य के रस का अनुभव करता है। रस की प्रक्रिया मूलतः अनुकार्य में और अनुकरण से अनुकर्ता नट में तथा उसका फल प्रेक्षक में होता है। नृत्य में रस प्रक्रिया मुख्य होती है, जिसके बिना वह प्रेक्षकों के हृदय को कोई आनन्द नहीं पहुँचा सकेगा। इसीलिए भावानुसारी नर्तन को 'नृत्य' और भाव विहीन नर्तन को 'नृत्त' कहा गया। नाट्य का लक्ष्य ही रसानुभूति है।

६. वेदान्त (उत्तर मीमांसा)

वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है-वेद का अन्त या अन्तिम भाग अर्थात् 'उपनिषद्' नामक ग्रन्थ। उपनिषद का प्रयोग तत्त्व ज्ञान में होता है, जो आत्म साक्षात्कार में सहायक होता है। इस दर्शन के भाष्यकारों में शंकराचार्य सबसे प्राचीन हैं अतः उनके दर्शन को ही बादरायण का सच्चा दर्शन माना जाता है। वेदान्त को अद्वैत वेदान्त भी कहते हैं। इसमें ब्रह्म और जगत का सम्बन्ध, ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध, ब्रह्म, जीव और जगत का सम्बन्ध अथवा जीवात्मा एवं परमात्मा का सम्बन्ध बताते हुए उस पर विशद व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। सत्-असत्, माया और ब्रह्म इत्यादि से सम्बन्धित विचार तार्किक दृष्टि से किया जाता है। निर्गुणोपासक सन्त रामानुज, वल्लभ, निम्बार्क मध्व पर अद्वैत वेदान्त का ही विशेष प्रभाव रहा है। इसमें तार्किक दृष्टि से शंकराचार्य और धार्मिक दृष्टि से अन्य आचार्यों को मान्यता दी गई है। वल्लभाचार्य के मान्य ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर कृष्ण का गुण-गान पुष्टि मार्गीय संतों ने अपने ढंग से किया। शंकराचार्य का प्रभाव देश व्यापी था। चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव बंगाल तथा वृन्दावन में अधिक था। वल्लभाचार्य का प्रभाव विशेष रूप से वृन्दावन, राजस्थान और गुजरात में था, जिसके कारण वृन्दावन, अयोध्या और काशी जैसे स्थान वैष्णव वेदान्त से सम्बन्ध रखने वाले सन्तों तथा अनुयायियों से भर गए।

ज्ञान और भक्ति के इस समन्वय से नृत्य कला पर विशेष प्रभाव पड़ा। माया और जीव को लेकर नृत्य की विभिन्न शैलियों में अनेक नृत्य नाटिकाओं की रचना हुई। गायन और वादन की विधाओं पर भी तत्सम्बन्धी साहित्य और संस्कृति के अनुसार प्रभाव पड़ा। इस प्रकार वेदान्त अर्थात् उत्तर मीमांसा दर्शन का प्रभाव भारतीय संगीत पर उत्तर तथा दक्षिण में समान और व्यापक रूप से पड़ा।

वैदिक युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक वर्ग उनके क्रमानुसार स्थापित हो गए थे, जिनमें विद्या तथा संगीत का ज्ञान प्रदान करने के लिए ब्राह्मणों को प्राधान्य दिया गया था। कर्म और संस्कारों के द्वारा सभी वर्गों में कला का व्यापक

प्रचार हुआ। इस युग में स्त्रियाँ गायन, वादन तथा नृत्य में प्रमुख रूप से भाग लेती थीं। नृत्य का कार्यक्रम प्रायः खुले आंगन तथा उन्मुक्त वातावरण में सामूहिक रूप से होता था। लोक को रिझाने और देवताओं की आराधना करने का बहुत बड़ा साधन नृत्य को माना जाता था।

आस्तिक और नास्तिक विचार धाराओं के अनुसार नृत्य पर भी उनका विशेष प्रभाव पड़ा। आस्तिकों के द्वारा सगुण और निर्गुण भक्ति के लिए जब नृत्य को प्रस्तुत किया गया, तो भगवान की प्रसन्नता अथवा उन्हें समग्र रूप में प्राप्त करने अथवा उनमें समाहित होने की भावना का प्रभाव नृत्य पर विशेष रूप से पड़ा, जिसके अन्तर्गत नृत्य के लास्य और तांडव स्वरूप विकसित हुए।

पौराणिक मान्यताओं और कथाओं के अनुसार जब सगुण और निर्गुण भक्ति का स्वरूप जनता के समक्ष स्पष्ट हुआ, तो नृत्य नाटिकाओं के साध्यम से ज्ञान और अज्ञान, आत्मा और परमात्मा, ज्ञानी और अज्ञानी, भक्ति और योग, भोग और समाधि, पृथ्वी और अंतरिक्ष तथा एकत्व और बहुत्व का प्रदर्शन किया जाने लगा। समाज को विविध मान्यताओं और दर्शन की शिक्षा देने के लिए भारत के षड्दर्शनों को स्थापित करने वाले आचार्यों द्वारा अथवा उनके संघों द्वारा कलाओं का विविध स्वरूप सामने आया। भक्ति परक और वैराग्य परक नृत्यों का सामंजस्य और अलगाव भिन्न-भिन्न काल में स्पष्ट दिखाई देने लगा। यह प्रभाव आज तक विद्यमान है, जिसे मन्दिरों में ही नहीं बल्कि वर्तमान समाज के विभिन्न उत्सवों में भी देखा जा सकता है।

हिन्दू धर्म की सभी शाखाओं में नृत्य को ईश्वर आराधना का विशिष्ट आधार माना जाता रहा है। इसीलिए पुराणों में भी संगीत का पर्याप्त विवरण मिलता है। आध्यात्मिक साधना के रूप में नृत्य को मोक्ष कारक और लौकिक व्यवसाय के रूप में उसे बंधन कारक माना गया है। 'नाट्यशास्त्र' के अनुसार स्नान तथा जप इत्यादि साधनों की अपेक्षा परमार्थ प्राप्ति के लिए संगीत को अधिक सहायक माना गया है।

तमिल साहित्य में संगीत के लिए 'इसइ' संज्ञा का प्रयोग होता रहा है, जिसके अन्तर्गत गीत, वाद्य और नृत्य तीनों का समावेश है। प्राचीन शिल्पकला को भी देखने से ज्ञात होता है कि हिन्दू धर्म तथा षड्दर्शनों का सम्बन्ध नृत्य से वैसा ही रहा है, जैसा कि पट और तन्तु में होता है। हिन्दू धर्म और दर्शन को जीवित रखने के लिए नृत्य कला ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, इसमें कोई संदेह नहीं है। इसीलिए नृत्य को भोग और मोक्ष दोनों का साधन माना गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद में संगीत की पर्याप्त चर्चा मिलती है। इस आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय नृत्य का प्रारम्भ से ही कलाओं में विशेष महत्व रहा है, इसीलिए हिन्दू धर्म और भारतीय दर्शन के साथ उसका सम्बन्ध अविच्छिन्न रहा है। चीन के प्राचीन साहित्य में भी भारतीय नृत्यों की प्रशंसा की गई है।

नटराज शिव की नृत्यरत प्रतिमा, कृष्ण का वंशीवादन तथा कालिय मर्दन के समय उनका ताण्डव और रासलीला में लास्य, सरस्वती का वीणा-वादन, गणेश का मृदंग वादन, नारद का तम्बूरा वादन यह सिद्ध करता है, कि हिन्दू धर्म तथा विभिन्न दर्शनों का भारतीय संगीत पर विशेष प्रभाव रहा है। संगीत के प्रति उदासीन रहने वाले महर्षियों तथा आचार्यों ने आध्यात्मिक उन्नति के लिए संगीत को बाधक माना, तो अनेक ने उसे साधक माना। इसीलिए जहाँ कुछ धर्म शास्त्रों में गायन, वादन और नृत्य की कला को निन्दा की दृष्टि से देखा गया है, वहीं दूसरी ओर अनेक शास्त्र तथा पुराण संगीत सम्बन्धी विज्ञान और कथाओं से जुड़े हुए प्राप्त होते हैं। भिन्न-भिन्न कालों में नर्तक और नर्तकियों को प्रताड़ित और अपमानित भी होना पड़ा है परन्तु गुण ग्राहक राजा और प्रजा ने उनकी स्तुति भी की है, और विशिष्ट आदर प्रदान किया है।

धार्मिक कृत्यों पर किए जाने वाले नृत्य यह सिद्ध करते हैं कि हिन्दू धर्म और दर्शन का उसके साथ अनादिकाल से सम्बन्ध रहा है, क्योंकि नृत्य की अभिव्यक्ति ने उत्सव को गरिमा प्रदान की है और उसके अंतरंग प्रयोग ने ईश्वर के प्रति शारीरिक और मानसिक समर्पण प्रदान करते हुए, मनुष्य की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। अन्त में यही कहा जा सकता है, कि पंचम वेद के रूप में मानी जाने वाली संगीत कला समाज और संस्कृति के विभिन्न भावों को ग्रहण करते हुए मानव के साथ एक अटूट सम्बन्ध बनाए हुए है, जिस पर कालधर्मी प्रभाव पड़ते रहे हैं और भविष्य में भी पड़ते रहेंगे। ईसा की प्रथम शताब्दी से प्रचलित नटराज की प्रतिमा ने भारतीय नृत्य को प्रेरणा प्रदान करते हुए, प्रत्येक युग में उसे जीवन्त रखने में सहायता प्रदान की है। विभिन्न शासकों और समाज की तुष्टि के लिए नृत्य के स्वरूप में समय-समय पर जो परिवर्तन होते गए, उन्हें रोकना कठिन था, परन्तु हिन्दू धर्म और समाज की आध्यात्मिक परम्परा और आस्था ने उसे शृंगार पक्ष के साथ-साथ धार्मिक मान्यताओं से अलग नहीं होने दिया। संस्कारों में बसी आस्था कभी लुप्त नहीं होती।

□□□

'नाट्यशास्त्र' तथा 'अभिनयदर्पण' का तुलनात्मक अध्ययन

नाट्यशास्त्र

'नाट्यशास्त्र' भरत सम्प्रदाय का ग्रन्थ है, जिसके अनुसार ब्रह्मा ने नाट्य का आविष्कार किया था। नाट्य से सम्बन्धित सभी प्राचीन सूत्रों को एकत्र करके महर्षि भरत ने उसकी शिक्षा अपने पुत्रों को दी और तभी से पंचम वेद कहे जाने वाले नाट्य का लोक में प्रचार-प्रसार हुआ।

भरत शब्द जातिवाचक रहा है अतः नाट्य का प्रदर्शन करने वालों को 'भरत' या 'नट' कहा जाता था। अभिनव गुप्त के अनुसार 'भरत' नटमात्र का वाचक है, जो एक वंश परम्परा का बोध कराता है। हमारी दृष्टि में भावों सहित अभिनय में दक्ष पुरुष को 'भरत' और अर्थहीन चमत्कारिक अभिनय-युक्त क्रीड़ा का प्रदर्शन करने वाले को लोक में 'नट' कहने की प्रथा पड़ गई होगी, इसलिए 'नट' की अपेक्षा 'भरत' कुछ सम्माननीय शब्द बन गया और 'नट' कुछ निम्न श्रेणी में गिना जाने लगा। यह भी सम्भव है, कि भरत शब्द का प्रयोग शास्त्रज्ञ व्यक्ति तक सीमित रहा हो और 'नट्' या 'नट्टुवनार' ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ हो, जो क्रियात्मक नाट्य के प्रदर्शन में दक्ष हों। तमिल भाषा की एक रचना 'पंच भरतम्' में भरत से सम्बन्धित पाँच नामों का उल्लेख किया गया है—आदि भरत (वृद्ध भरत), नन्दि भरत, मतंग भरत, हनुमद्भरत और अर्जुनभरत। ये सभी नाट्य एवं संगीत के आचार्य थे, जिन्होंने भिन्न-भिन्न ग्रन्थों की रचना की थी।

'नाट्यशास्त्र' में जिन विषयों का वर्णन किया गया है, वे इस प्रकार हैं—नाट्य का स्वरूप और महत्व, नाट्य मण्डप के निर्माण की विधि तथा उसके अंगों का विवेचन; नाट्य मण्डप की रक्षा के लिए विभिन्न देवताओं की पूजाविधि; ताण्डव नृत्त से सम्बन्धित करणों; अंगहारों एवं रेचकों का निरूपण; पूर्व रंग का विधान; नान्दी, प्रस्तावना, ध्रुवा तथा चित्रपूर्व रंगविधि का विवेचन; रस और भाव, अभिनय

के भेद और उनका विवेचन, विभिन्न अंग और उपांगों द्वारा किए जाने वाले अभिनयों का विवेचन, चारी निरूपण; मण्डलों की व्याख्या और उनका प्रयोग, गति प्रचार, लोक धर्मी तथा नाट्य धर्मी विधाएँ, वाचिक अभिनय के समस्त पक्ष, भाषा और विभाषा, काकु और स्वर, दशरूपकों की व्याख्या; इतिवृत्त-विधान, संधियों, पंच अवस्थाओं, अर्थ प्रकृतियों तथा अर्थोपक्षेपकों का विवेचन; आहार्याभिनय, सामान्याभिनय, दैवी तथा मानुषी सिद्धियाँ, निर्णायकों तथा प्रेक्षकों के गुण; संगीत शास्त्र से सम्बन्धित श्रुतियों, स्वरों, ग्राम, मूर्च्छना, जातियों और विभिन्न प्रकार के वाद्यों से सम्बन्धित भेद और प्रयोग; ताल और लय का विवेचन, ध्रुवाओं का वर्णन, गायक और वादकों के गुण-दोष, पुरुष एवं स्त्रियों की प्रकृतियाँ तथा अन्तःपुर के परिजनों का वर्णन, पात्रों की भूमिकाएँ तथा नाट्यावतरण की कथा।

संगीत शास्त्र पर विपुल सामग्री प्रदान करने वाला सर्वमान्य ग्रन्थ 'नाट्य शास्त्र' नाट्य जगत् में बड़ी श्रद्धा और प्रतिष्ठा के साथ देखा जाता है। इसमें गद्य और पद्य दोनों प्रकार की शैलियों का समावेश है। यह सूत्र शैली में लिखा ग्रन्थ है जिसके आधार पर बाद के अनेक आचार्यों ने संगीत से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की। इसमें संस्कृत और प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है। 'नाट्य शास्त्र' का समय ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी माना जाना चाहिए, क्योंकि ईसा के बाद वाले अनेक ग्रन्थों में उसका उल्लेख मिलता है, जिनमें 'पंचतंत्र', 'अग्निपुराण', 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' 'नारदीयसंहिता' और 'अभिनयदर्पण' प्रमुख हैं। अश्वघोष, कालीदास और भास की रचनाओं में भी 'नाट्य शास्त्र' का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

अभिनयदर्पण

नन्दिकेश्वर द्वारा रचित 'अभिनयदर्पण' नाट्य से सम्बन्धित एक प्राचीन लक्षण ग्रन्थ है, जो लोकप्रिय होने के साथ-साथ प्रामाणिक भी माना जाता है। भारत की लगभग सभी शास्त्रीय नृत्य विधाओं में 'अभिनयदर्पण' को आधार ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया गया है।

नन्दिकेश्वर को अनेक नामों से अभिहित किया गया है, जैसे—नन्द, नन्दिम्, नन्दिकेश्वर, नन्दि, नन्दी, नन्दीश, नन्दिभरत, नन्दिकेशान, नन्दिकेश तथा नन्दिन्, शालालंकायन और तांडवतालिक इत्यादि। जिन नन्दी ने शिव की आज्ञा से भरत को दीक्षित किया था, वह शिव के तण्डु नामक प्रमुख गण थे और वर्तमान अभिनय दर्पणकार नन्दिकेश्वर से उनका कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। तण्डु या नन्दि महर्षि शिलाद के पुत्र थे, जिनका पैतृक नाम शैलादि था। प्रोफेसर रामकृष्ण कवि के अनुसार इन्हीं ने 'नन्दिकेश्वर संहिता' की रचना की थी। प्राचीन नन्दिकेश्वर को तंत्र, योग, मीमांसा, शैव-दर्शन, नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र इत्यादि का आदि आचार्य माना जाता है, जिन्होंने चार हज़ार श्लोकों वाले 'भरतार्णव' तथा

'ताल लक्षण' जैसे ग्रन्थों की रचना की थी। शिव सूत्रों के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए उन्होंने 'नन्दिकेश्वर काशिका' और सगीत विषय को स्पष्ट करने के लिए 'रुद्रडमरुद्भवसूत्रविवरण' नामक ग्रन्थ की रचना की। उन्तीस उपपुराणों में एक 'नन्दिकेश्वरपुराण' भी है, जिसके लेखक नृत्य के आचार्य नन्दिकेश्वर से भिन्न हैं। अनेक ग्रन्थकारों ने नन्दिकेश्वर को शिव का अवतार भी बताया है। नन्दिकेश्वर द्वारा रचित 'नन्दिकेश्वर संहिता' में नाट्य शास्त्र का विशद वर्णन किया गया था, किन्तु वह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है।

नन्दिकेश्वर द्वारा रचित वर्तमान 'अभिनयदर्पण' प्राचीन नन्दिकेश्वर की वृहद रचना का एक प्रक्षिप्त भाग हो सकता है। मूल 'अभिनय दर्पण' 'नाट्यशास्त्र' के समान व्यापक नाट्यग्रन्थ रहा होगा और जब अमृत मंथन, असुर पराजय, त्रिपुरदाह तथा गंगावतरण जैसे विशाल नृत्य-नाट्य समाज में प्रचलित रहे होंगे, तो तत्सम्बन्धी मुद्राओं और उस काल के देशी नृत्यों को स्पष्ट करने के लिए वर्तमानकालीन 'अभिनयदर्पण' की रचना की गई होगी। 'अभिनयदर्पण' की उपलब्ध पांडुलिपियां प्रायः तेलगू भाषा में मिली हैं। इससे अनुमान किया जाता है, कि इसके रचयिता नन्दिकेश्वर दक्षिण के आचार्य थे, अथवा शार्ङ्गदेव की तरह उत्तर से दक्षिण की ओर जाकर बस गये थे। अभिनय सिद्धान्तों की मौलिक व्याख्या के कारण 'अभिनयदर्पण' का अपना अलग महत्व है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि नन्दिकेश्वर को एक नहीं समझना चाहिए। भरत और नारद की तरह समय-समय पर भिन्न-भिन्न नन्दिकेश्वरों द्वारा अलग-अलग ग्रन्थों का निर्माण किया गया है, जिनमें से वर्तमान 'अभिनयदर्पण' में कुल तीन सौ चौबीस श्लोक प्राप्त होते हैं, यह नंदिकेश्वर वंशानुगत नाट्यकर्मी थे, जिन्हें भगवान शिव और महर्षि भरत के प्रति अगाध श्रद्धा थी। इस 'अभिनयदर्पण' को ईसा की दूसरी या तीसरी शती की रचना माना जाता है और कुछ विद्वानों के अनुसार इसका समय दसवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है।

नन्दिकेश्वर ने कहा है, कि नाट्यवेद सर्वप्रथम ब्रह्मा ने भरत को दिया। भरत ने अपने गण गंधर्व अप्सराओं सहित, नाट्य, नृत्त और नृत्य शिव के सम्मुख प्रस्तुत किया। शिव ने अपने प्रभावशाली नृत्य को स्मरण करके अपने गणों द्वारा नृत्य कला की शिक्षा भरत को दिलवाई। इससे भी पूर्व, भरत से प्रसन्न होकर, उनको लास्य की शिक्षा पार्वती द्वारा दिलवाई थी। तण्डु से ताँडव नृत्य सीखकर आचार्यों ने मनुष्यों को बताया। पार्वती ने बाण की पुत्री उषा को लास्य नृत्य की शिक्षा दी, जिन्होंने द्वारिका की गोपियों को शिक्षा दी। गोपियों ने सौराष्ट्र की स्त्रियों को शिक्षा दी, जिन्होंने और देशों में उसका प्रचार किया। इस प्रकार यह कला, परम्परा से एक के बाद दूसरों को प्राप्त होती गई तथा संसार में प्रतिष्ठित हो गई।

नाट्य की प्रशंसा करते हुए नन्दिकेश्वर ने अपने 'अभिनयदर्पण' में कहा है, कि ब्रह्मा ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद से क्रमानुसार पाठ्य, अभिनय, गीत और रस के विषय संग्रह किए, इस कला से सम्बन्धित शास्त्रों की रचना की, जिनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है एवं जिनसे कीर्ति, प्रगल्भता, सौभाग्य तथा बुद्धिमत्तता की वृद्धि होती है और जो उदारता, धैर्य, स्थिरता तथा विलास को बढ़ानेवाला है तथा दुःख-दर्द, शोक और खेद को नष्ट करने वाला है। इस कला की प्राप्ति के लिए, ऋषि और मुनि आदि चिंतन करते रहते हैं अन्यथा यह कला नारद इत्यादि मुनियों के चित्त को कैसे आकर्षित करती ?

इस प्रकार अभिनयदर्पण में नन्दिकेश्वर ने सर्वप्रथम उन सात्विक शिव को नमस्कार किया है, जिनका आंगिक अभिनय संसार है, वाचिक अभिनय समस्त वाङ्मय (भाषाएँ) हैं और चन्द्र तारागण इत्यादि आहार्य अभिनय है। अभिनय का यह विधान नन्दिकेश्वर की मौलिक देन है। जातिवाचक विभिन्न हस्त तथा दशावतार हस्त, नवग्रह हस्त एवं कुछ नये स्थान (स्थानक) इत्यादि भी नंदिकेश्वर की मौलिक देन हैं।

तुलना

'नाट्यशास्त्र' और 'अभिनय दर्पण' का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए, जो प्रमुख निष्कर्ष निकलते हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. ग्रीवा के अभिनय में 'नाट्यशास्त्र' ने नौ स्थितियां बताई हैं, जबकि 'अभिनय दर्पण' में ग्रीवा की चार स्थितियाँ बताई गई हैं। दोनों की संख्या के साथ-साथ उनके लक्षण और विनियोगों में भी अन्तर है।

२. हस्ताभिनय के अन्तर्गत 'नाट्य शास्त्र' के अनुसार उसके मुख्यतः तीन भेद माने गए हैं, जबकि 'अभिनय दर्पण' में कुछ अन्य हस्ताभिनयों का विवेचन भी किया गया है।

३. संयुत हस्ताभिनय के अन्तर्गत 'नाट्य शास्त्र' में तेरह भेद बताये गए हैं, जबकि 'अभिनय दर्पण' में उसके तेईस भेदों की चर्चा की गई है।

४. नृत्त हस्त के अन्तर्गत 'नाट्यशास्त्र' में तीस प्रकार के नृत्त हस्तों का वर्णन प्राप्त होता है, जबकि 'अभिनयदर्पण' में केवल तेरह नृत्त हस्तों का उल्लेख किया गया है। विभिन्न भाव और विचारों से सम्बन्धित हस्त मुद्राओं के अतिरिक्त देवहस्त, दशावतार हस्त, विभिन्न जातीय हस्त, बांधव हस्त तथा नवग्रह हस्त 'अभिनय दर्पण' की मौलिक देन है।

५. 'नाट्यशास्त्र' में पदाभिनय के पाँच भेद बताए गए हैं, जबकि 'अभिनय दर्पण' में चार प्रकार के पादाभिनयों का उल्लेख किया गया है।

६. 'नाट्यशास्त्र' में छह 'स्थानक' बताए गए हैं और 'अभिनय दर्पण' में भी छह 'स्थानक' बताये गए हैं, लेकिन 'अभिनय दर्पण' के स्थानक 'नाट्यशास्त्र' के स्थानकों से भिन्न हैं।

७. 'नाट्यशास्त्र' में एक पैर से प्रस्तुत किया जाने वाला अभिनय चारी कहलाता है। नन्दिकेश्वर का भी यही कहना है परन्तु भरत ने चारी को दो भागों में विभाजित करके चारी के कुल बत्तीस भेद बताए गए हैं, जबकि 'अभिनय दर्पण' में इस प्रकार का विभाजन नहीं किया गया और चारी के कुल आठ भेदों का उल्लेख करते हुए कहा है, कि यह भेद भरत के अनुसार हैं।

८. 'नाट्यशास्त्र' में बताया गया है, कि विभिन्न चारियों के संयोग से 'मण्डल' की उत्पत्ति होती है जबकि 'अभिनय दर्पण' में पादाभिनय के अन्तर्गत 'मण्डल' नामक एक पादभेद को स्वीकार किया गया है।

९. 'नाट्यशास्त्र' अवस्था के अनुसार प्रकृतिगत वेश-विन्यास, अलंकार-परिधान तथा अंग-रचना इत्यादि को आहार्य अभिनय के अन्तर्गत माना गया हैं, जबकि 'अभिनय दर्पण' के अनुसार हार, बाजूबंद (केयूर) तथा वेश-भूषा इत्यादि से युक्त होकर किया जाने वाला अभिनय 'आहार्य अभिनय' कहलाता है। अर्थात् अंग रचना का उल्लेख 'अभिनय दर्पण' में नहीं किया गया है।

१०. 'नाट्यशास्त्र' में सात्विक अभिनय के अन्तर्गत कहा गया हैं, कि मन की एकाग्रता से सत्व इत्यादि की उत्पत्ति होती है। नाटक में लोक के स्वभावानुसार जो स्थिति बनती है, उसमें सुख-दुःख के भावों को उत्पन्न करने वाला अभिनय सात्विक अभिनय कहलाता है। नाट्य में अनेक अर्थों तथा भावों से पूर्ण स्थाई, सात्विक संचारी भावों की योजना माला में पिरोये हुए पुष्पों की तरह ठीक प्रकार करनी चाहिए ताकि नाट्य धर्म में प्रवृत्त सुख तथा दुःख के भावों को सात्विक भावों से युक्त इस प्रकार बताया जा सके कि वे यथार्थ स्वरूप वाले प्रतीत हों। जब अभिनेता अश्रु या रोमांच को अभिनय द्वारा प्रस्तुत करता है, तो उसी को सत्व कहते हैं। 'अभिनय दर्पण' में नन्दिकेश्वर ने सात्विक अभिनय को शिव रूप मानकर ऐसे शिव को नमस्कार किया है और कहा है कि सात्विक भाव जानने वाले के द्वारा ही सात्विक अभिनय किया जाता है। दोनों ग्रन्थों में आठ प्रकार के सात्विक भाव बताए गए हैं।

'नाट्यशास्त्र' में वाणी, अंग तथा सत्व पर निर्भर रहने वाले अभिनय को 'सामान्य अभिनय' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त 'चित्राभिनय' की चर्चा भी की गई है, जो ऐसे अभिनय को प्रस्तुत करता है, जिसे अंग का विशेष अभिनय कहा जा सकता है और जिसकी चर्चा शास्त्र में नही मिलती, जैसे—किसी पात्र के बोलने पर दूसरे पात्र द्वारा उसे चुप कराने के लिए अनेक प्रकार के हाव-भाव या अंग संचालन

को प्रयुक्त करना इसके अन्तर्गत प्रतीक, कल्पना एवं मनोदशाओं का गूढतम भाव प्रस्तुत किया जाता है। 'अभिनय दर्पण' में ऐसे अभिनयों की चर्चा प्राप्त नहीं होती।

११. 'नाट्य शास्त्र' में तांडव और लास्य जैसे उद्धत और सुकोमल नृत्य के दो भेद किए गए हैं, जबकि 'अभिनय दर्पण' में ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

महर्षि भरत द्वारा रचित 'नाट्य शास्त्र' और आचार्य नन्दिकेश्वर द्वारा रचित 'अभिनय दर्पण' ग्रन्थों का अध्ययन स्पष्ट करता है, कि 'नाट्यशास्त्र' नाट्य विषयक विपुल सामग्री से परिपूर्ण प्राचीन और विशाल ग्रन्थ है, जबकि वर्तमान स्वरूप में उपलब्ध 'अभिनय दर्पण' ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' के सूत्रों को समाविष्ट करते हुए समय की आवश्यकता के अनुसार कुछ नवीन उद्भावनाओं सहित अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए 'अभिनय दर्पण' ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' के काफी समय पश्चात् वर्तमान काल की कुछ शताब्दियों पहले का लिखा गया ग्रन्थ प्रतीत होता है।

□□□

अष्टाध्यायी का
दशावतार और तत्सम्बन्धी मुद्राएँ

'गीत गोविन्द' जयदेव कवि द्वारा रचित एक ऐसी कृति है, जिसे भारतीय साहित्य में एक अमूल्य धरोहर माना जाता है। संस्कृत साहित्य में 'गीत गोविन्द' को अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ देखा जाता है। राधा और कृष्ण के अलौकिक तथा दिव्य प्रेम को अभिव्यक्त करने वाली यह कृति सम्पूर्ण नृत्य जगत में लोकप्रिय है। 'गीतगोविन्द' को 'अष्टपदी' और 'अष्टताल' भी कहते हैं। इसमें कुल बारह सर्ग हैं। पहले सर्ग से सम्बन्धित प्रबन्ध में कवि जयदेव ने भगवान के विभिन्न अवतारों की स्तुति करते हुए कहा है, कि भगवान श्री कृष्ण ने लोक के उपकारार्थ दस अवतार धारण किए हैं—१. मीन (मत्स्य), २. कच्छप (कछुआ), ३. शूकर (वाराह), ४. नरहरि (नृसिंह), ५. वामन (लघु शरीर वाला), ६. भृगुपति (परशुराम), ७. राम (भगवान राम), ८. हलधर (बलराम), ९. बुद्ध (भगवान बुद्ध) १०. कल्कि (विष्णु)।

उपर्युक्त दस अवतारों से सम्बन्धित नृत्य-हस्तों की चर्चा नन्दिकेश्वर ने अपने 'अभिनय दर्पण' में की है। इन हस्तों का विवरण और 'गीतगोविन्द' अर्थात् 'अष्टाध्यायी' का पाठ नीचे दिया जा रहा है—

अष्टपदी 9

राग : मालव गौण, ताल : रूपक

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे ॥ ध्रुवपदम् ॥१॥

(हे भगवन् ! आपने) प्रलय-सागर के जल में (मत्स्यावतार धारण कर) वेदों को धारण किया (हयग्रीव नामक दैत्य ने प्रलयकाल में वेदों का अपहरण कर लिया

था, तब मत्स्यावतार धारण कर आपने वेदों का उद्धार किया)। बिना किसी कष्ट के (प्रसन्नतापूर्वक) पोत (नाव) को धारण किया। (स्वय नाव का रूप धारण कर समस्त बीजों और सप्तर्षियों की बिना खेद (दुःख) का अनुभव किए रक्षा की)। (ऐसे) हे केशव ! हे मत्स्यावतारधारी ! हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ।। ध्रुवपद ।।१।।

[इस श्लोक में अर्धमागधी रीति, उपमा तथा अतिशयोक्ति अलङ्कार, उत्साह नामक स्थायिभाव तथा वीररस हैं ।।१।।]

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ।
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे ।। २ ।।

आपके विशाल (तथा) पृथ्वी को धारण करने के कारण चक्रीयचिह्नों से चिह्नित पृष्ठ-भाग (पीठ) पर पृथ्वी स्थित है। हे कच्छपरूपधारी केशव ! हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ।।२।।

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना शशिन कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव धृतशूकररूप जय जगदीश हरे ।।३।।

आपके दाँतों पर पृथ्वी उसी प्रकार टिकी हुई है, जिस प्रकार चन्द्रमा के भीतर कलक निमग्न (डूबा हुआ दिखाई देता) है । (ऐसे) हे वाराहरूप धारण करने वाले केशव हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ।। ३ ।।

[इस पद में उपमालङ्कार हैं ।।३।।]

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम् दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ।
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे ।।४।।

आपके श्रेष्ठ कर-कमल के नख रूपी अद्भुत सींग हैं, (जिन्होंने) हिरण्यकशिपु के शरीर रूपी भौंरे का नाश किया। (अद्भुतता यह है, कि भौंरे ही कोमल कमलदल को विदीर्ण कर पराग रस पीते हैं, यहाँ इसके विपरीत शरीररूपी भौंरे का कमल पंखुड़ी के अग्रभाग (नखों) से विदर्णिन दिखाया गया है।) (इस प्रकार के) नृसिंह रूप धारी हे केशव ! हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ।।४।।

[रसमञ्जरी का कहना है, कि अन्यत्र तो भौंरे कमलाग्र का भेदन करके मकरन्द पान करके तृप्त होते हैं, किन्तु यहाँ पर तो स्वयं यह भौंरा कमलाग्र के द्वारा ही विदीर्ण हो गया। यही इस नखभृङ्ग की अद्भुतता है ।।४।।]

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन पदनखनीरजनितजनपावन ।
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे ।।५।।

त्रिविक्रम रूप धारी अद्भुत वामन (एक पैर से ऊपर के समस्त लोकों, दूसरे पैर से पृथ्वी और पाताल लोक तथा तीसरे पैर से बलि के शरीर को नापने वाले)

अपने पैर के नखजल से समस्त प्रजा को पवित्र करने वाले (आप) बलि को छल रहे हैं। (ऐसे) वामनरूपधारी हे केशव ! हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ॥५॥

[इस पद्य में अदभुत रस तथा अतिशयोक्ति अलंकार हैं ॥५॥]

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम् स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ।
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे ॥६॥

(आप) क्षत्रियों के रक्त से स्नान कराकर जगत् को पाप रहित करते हैं (तथा) सांसारिक दुःख का निवारण करते हैं। (ऐसे) हे परशुराम रूपधारी केशव ! हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ॥६॥

[इस पद में स्वभावोक्ति अलङ्कार तथा अद्भुत रस हैं ॥६॥]

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव धृतरामशरीर जय जगदीश हरे ॥७॥

(आप) युद्ध में दिक्पालों को अच्छे लगने वाले तथा मनोज्ञ रावण के मुकुट-भूषित शिरों की बलि दिशाओं को बाँट रहे हैं। (ऐसे) हे राम रूपधारी केशव ! हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ॥७॥

[इस पद में जाति अलङ्कार है ॥७॥]

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ।
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे ॥८॥

(आप) लम्बे-चौड़े शरीर पर बादलों की शोभा वाले तथा हल से मारे जाने के भय से (आती हुई) यमुना के जल की कान्ति के समान वस्त्रों को धारण करते हैं। (यमुना ने मदिरापान से मदमत्त बलराम का अनादर कर दिया था, जिससे रुष्ट होकर वे उसे हल से खींच लाये थे)। (ऐसे) हलधर रूपधारी हे केशव ! हे जगदीश ! हे हरि ! (आपकी) जय हो ॥८॥

[इस पद के नायक श्रीबलरामजी धीरललित नायक हैं ॥८॥]

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्, सदयहृदय दर्शितपशुघातम् ।
केशव धृतबुद्धशरीर, जय जगदीश हरे ॥९॥

अरे ! यज्ञविधि में श्रुतियों (वेदों) के कारण उत्पन्न होने वाली हिंसा की (आप) सहृदय होने के कारण निन्दा करते हैं। (ऐसे) बुद्ध शरीर धारण करने वाले हे केशव ! हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ॥९॥

[इस पद में वर्णित भगवान् बुद्ध धीरप्रशान्त नायक हैं। धीरप्रशान्त नायक का स्वरूप बताते हुए कहा गया है—'शान्तो विनीतो धीरश्च धीरशान्तो द्विजो वणिक्।

अर्थात् धीरप्रशान्त नायक ब्राह्मण अथवा वणिक् जाति का होता है। वह शान्त स्वभाव वाला, विनयावनत तथा धैर्यसम्पन्न होता है ॥९॥]

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं, धूमकेतुमिव किमपि करालम् ।
केशव धृतकल्किशरीर, जय जगदीश हरे ॥१०॥

(आप) म्लेच्छ-समूह का विनाश करने के लिए धूमकेतु (पुच्छलतारा, अग्नि) के समान भयंकर किसी (धूमकेतु महान उपद्रव और भयंकरता का सूचक है अतः सी कोई तलवार 'किमपि करवालं' कहा गया है) कृपाण को धारण करते हैं। (ऐसे) कल्किरूप शरीर धारण करने वाले हे केशव ! हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ॥१०॥

[कृपाण का तेज भी नील तथा भास्कर होता है, उसी तरह धूमकेतु तारा तथा औत्पातिक अग्नि भी। फलतः दोनों की समता होने से यहाँ पर उपमालङ्कार है। इस श्लोक में वर्णित नायक धीरोद्धत नायक है। धीरोद्धत नायक का लक्षण छठे श्लोक की रसिकप्रिया तथा भावप्रकाशिका में विवेचित है ॥१०॥]

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्, शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ।
केशव धृतदशविधरूप, जय जगदीश हरे ॥११॥

(हे केशव ! मुझ जयदेव कवि द्वारा कही गयी उछार, संसार की साररूप, सुख देने वाली, कल्याणकारी (स्तुति) को सुनें। हे दशावतारधारी ! हे जगदीश ! हे हरि ! आपकी जय हो ॥११॥

[इस श्लोक में शान्तरस तथा पर्यायोक्ति अलङ्कार हैं ॥११॥]

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥१२॥

वेदों का उद्धार करने वाले, संसार को धारण करने वाले, भूमण्डल का उद्धार करने वाले (हिरण्यकश्यपु) दैत्य का विनाश करने वाले, बलि को छलने वाले, क्षत्रियों का नाश करने वाले, रावण को जीतने वाले, हल को धारण करने वाले, म्लेच्छों का नाश करने वाले (इस प्रकार) दस रूपों की आकृति बनाने वाले श्रीकृष्ण भगवान् आपको नमस्कार है ॥१२॥

इति दशावतारकीर्तिधवलो नाम प्रथमः प्रबन्धः ॥

इस प्रकार दशावतारकीर्तिधवल नाम का प्रथम प्रबन्ध समाप्त हुआ।

अभिजयदर्पण के दशावतार हस्त

मत्स्यावतारहस्तः

मत्स्यहस्तं दर्शयित्वा ततः स्कंधसमौ करौ ।
धृतौ मत्स्यावतारस्य हस्त इत्यभिधीयते ॥२१६॥

यदि कंधे के बराबर उठे हुए दोनों हाथों में 'मत्स्य-हस्त' की मुद्राएँ हों, तो उसे 'मत्स्यावतार-हस्त' कहते हैं ।

कूर्मावतारहस्तः

कूर्महस्तं दर्शयित्वा ततः स्कन्धसमौ करौ ।
धृतौ कूर्मावतारस्य हस्त इत्यभिधीयते ॥२१७॥

कंधे के बराबर उठे हुए दोनों हाथों में 'कूर्म-हस्त' की मुद्राएँ हों, तो उसे 'कूर्मावतार-हस्त' कहते हैं ।

वराहावतार हस्तः

दर्शयित्वा वराहं तु कटिपार्श्वसमौ करौ ।
धृतावादिवराहस्य देवस्य कर इष्यते ॥२१८॥

दोनों बगल में, कमर तक समान स्तर में उठे हुए दोनों हाथों द्वारा 'वराह-हस्त' की मुद्राओं को अभिव्यक्ति का 'वराहावतार-हस्त' कहते हैं ।

नृसिंहावतारहस्तः

वामे सिंहमुखं धृत्वा दक्षिणे त्रिपताकिका ।
नरसिंहावतारस्य हस्त इत्यभिधीयते ॥२१९॥

बाएँ हाथ में सिंहमुख तथा दाहिने हाथ में 'त्रिपताका-हस्त' द्वारा नृसिंहावतार की अभिव्यक्ति को 'नृसिंहावतार-हस्त' कहते हैं ।

वामनावतारहस्तः

ऊर्ध्वाधो धृतमुष्टिभ्यां सव्यान्याभ्यां यदि स्थितः ।
स वामनावतारस्य हस्त इत्यभिधीयते ॥२२०॥

यदि ऊपर उठे हुए बाएँ हाथ में 'मुष्टि-हस्त' और इसी प्रकार नीचे झुके हुए दाहिने हाथ में भी 'मुष्टि-हस्त' हो, तो उसे 'वामनावतार-हस्त' कहते हैं ।

परशुरामावतारहस्तः

वामं कटितटे न्यस्य दक्षिणेऽर्धपताकिका ।
धृता परशुरामस्य हस्त इत्यभिधीयते ॥२२१॥

बायाँ हाथ कमर पर हो तथा दाहिने हाथ में 'अर्धपताका-हस्त' की मुद्रा हो, तो उसे 'परशुरामावतार-हस्त' कहते हैं।

रामचन्द्रावतारहस्तः

कपित्थो दक्षिणे हस्ते वामं तु शिखरः करः।
ऊर्ध्वं धृतो रामचन्द्रहस्त इत्युच्यते बुधैः ॥२२२॥

यदि दाहिने हाथ में 'कपित्थ' एवं बाएँ हाथ में 'शिखर-हस्त' की मुद्राएँ हों, तो उसे 'रामचन्द्रावतार-हस्त' कहते हैं।

बलरामावतारहस्तः

पताको दक्षिणे हस्ते मुष्टिर्वामकरे तथा।
बलरामावतारस्य हस्त इत्युच्यते बुधैः ॥२२३॥

दाहिने हाथ द्वारा पताका एवं बाएँ द्वारा 'मुष्टि-हस्त' प्रदर्शित किया जाए, तो उसे 'बलरामावतार-हस्त' कहते हैं।

कृष्णावतारहस्तः

मृगशीर्षे तु हस्ताभ्यामन्योन्याभिमुखे कृते।
आस्योपकण्ठे कृष्णस्य हस्य इत्युच्यते बुधैः ॥२२४॥

यदि दोनों हाथों द्वारा प्रदर्शित 'मृगशीर्ष हस्त' एक दूसरे के मुँह के सामने स्थित हों, तो उसे 'कृष्णावतार-हस्त' कहते हैं।

कलक्यावतारहस्तः

पताको दक्षिणे वामे त्रिपताकः करो धृतः।
कल्क्याख्यस्यावतारस्य हस्त इत्यभिधीयते ॥२२५॥

यदि दाहिने हाथ में पताका एवं बाएँ हाथ में 'त्रिपताका-हस्त' हो, तो उसे 'कलक्यावतार (कल्किअवतार)-हस्त' कहते हैं।

अष्टाध्यायी में बुद्धावतार दिया है लेकिन 'अभिनयदर्पण' में कृष्णावतारहस्तः बताया गया है अतः ऐसा प्रतीत होता है, कि 'अष्टाध्यायी' की विभिन्न प्रतियों में भिन्नता होने के कारण ऐसा हुआ है। यह भी संभव है, कि बौद्ध धर्मावलम्बी किसी साहित्यकार ने उसमें परिवर्तन किया हो। लेकिन अभिनयदर्पणकार को जो प्रति मिली होगी, उसमें बुद्धावतार की जगह कृष्णावतार दिया होगा। अतः नृत्य के साधक बुद्ध अथवा कृष्ण से सम्बन्धित हस्तमुद्राओं को अपनी आवश्यकता और ज्ञान के आधार पर यथोचित रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं।

□□□

भरतनाट्यम् के प्रसिद्ध कलाकारों का जीवन चरित्र

अनिता रत्नम्

भरतनाट्यम् के क्षेत्र में अनिता रत्नम् को एक कुशल नृत्यांगना, नृत्य-रचयिता, कला-उद्घोषक, अभिनेत्री-निमात्री तथा लेखक और प्रकाशक के रूप में जाना जाता है। आपकी प्रारम्भिक नृत्य शिक्षा राजी नारायण तथा अड्यार के० लक्ष्मण के निर्देशन में सम्पन्न हुई और बाद में कलाक्षेत्र नृत्य अकादमी में उसका और अधिक विकास हुआ। भरतनाट्यम् के अतिरिक्त आप कथकलि और मोहिनीअट्टम में भी दक्ष हैं।

आपने थियेटर और टीवी में अमेरिका से स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की और फिर चेन्नई लौटकर सन् १९९२ में नवीयकला को विकसित करने के लिए 'अरंगम् ट्रस्ट' की स्थापना की। अनिता ने परम्परागत नृत्य शैली की विशेषताओं को नया आयाम देते हुए आधुनिक प्रेक्षकों के लिए अपनी कला को अधिक आकर्षक बनाने का प्रयास किया, ताकि वह विश्व को पारस्परिक सामंजस्य का संदेश दे कर भारत की सांस्कृतिक विरासत को ऐसे अंदाज में प्रस्तुत कर सके, जो नवीनता के उपासकों को भी मुग्ध कर सके। अनिता के प्रयोग नृत्य की प्राचीन और परम्परागत शैली से नहीं जुड़े रहते बल्कि वे भारतीय भाव भूमि पर कलाविकास की नई सम्भावनाओं के अभिनव क्षितिज खोलने का प्रयास करते हैं, इसीलिए आप पूर्व और पश्चिम की कला के सम्मिश्रण को बुरा नहीं मानतीं। आपकी मान्यता है कि कला कभी संकुचित सीमा में आबद्ध नहीं रह सकती, क्योंकि उसमें नित नूतन सृजन की क्षमता होती है। आपकी आकर्षक नृत्य नाटिकाएँ अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में अपना अलग स्थान रखती हैं। विभिन्न पुरस्कारों से पुरस्कृत अनिता रत्नम् ने १९७९ में 'नाट्य ब्रह्मा' और १९९२ में 'नर्तकी' नामक पुस्तकों का प्रकाशन किया। आपको उपलब्ध पुरस्कारों में 'कलाईमामणि', 'उगदि पुरस्कार', 'नृत्य चूड़ामणि', 'मदुरा कलाप्रवीण', 'भरतकलारत्न', 'सिंगार मणि', 'अरुत कलाई-सेलवी' तथा 'यूनेस्को अवार्ड' उल्लेखनीय हैं। विदेशी पुरस्कारों में आपको अमेरिका में 'मीडिया अचीवमेन्ट अवार्ड', 'आउट स्टैण्डिंग टीवी अम्बेसडर' तथा 'महात्मा गाँधी अवार्ड' प्राप्त हुए।

□ □ □

अलार्मेल वल्ली

अलार्मेल वल्ली ने अल्पायु में भरतनाट्यम् सीखकर देश और विदेश में यश अर्जित किया। नायिका भेद को प्रदर्शित करने में उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली सिद्ध होता था। आपने पण्डनल्लूर सुब्बरायन पिल्लै से भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की और मद्रास को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर भरतनाट्यम् के प्रचार प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भरतनाट्यम् के शीर्षस्थ कलाकारों में आपका नाम लिया जाता है।

□□□

इन्द्राणी रहमान

प्रसिद्ध अमेरिकन नृत्यांगना रागिनीदेवी की पुत्री इन्द्राणी रहमान ने अपनी कला साधना और सौन्दर्य के कारण पूरे विश्व में नाम कमाया। बाल्यकाल से ही इन्हें अपनी माता का नृत्य जीवन देखने को मिला अतः इन्द्राणी के मन और मस्तिष्क में उसका गहराई से प्रवेश हो गया। इन्द्राणी के पिता रामलाल वाजपेयी एक स्वतन्त्रता सैनानी और भौतिक विज्ञान वेत्ता थे। १५ वर्ष की अल्पायु में आपकी शादी भारत सरकार के चीफ़ आर्किटेक्ट और श्रेष्ठ फोटोग्राफ़र हबीब रहमान के साथ हुआ था।

इन्द्राणी ने ५ वर्ष की आयु से बंगलौर में पण्डनल्लूर मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै के शिष्य और यू० एस० कृष्णराव और यू० के० चन्द्रभागा देवी से भरतनाट्यम् की शिक्षा लेना शुरू किया और बाद में पण्डनल्लूर चोक्कलिंगम् की शिष्या बनीं। अपनी माता रागिनी देवी के साथ मंच पर अवतरित होकर नृत्य करने से आपको बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई। अपनी अकेली प्रस्तुति आपने ६ मार्च १९५० को कलकत्ता के न्यू एम्पायर थियेटर में पूर्व परिषद द्वारा आयोजित समारोह में की। इनकी माता चाहती थीं कि ये ओडिसी नृत्य सीखें और जनता के बीच उसके सौन्दर्य तत्व का विवेचन करें। इन्द्राणी ने उनकी इच्छा का पालन करते हुए कला समीक्षक डॉ० चार्ल्स फेबरी (हंगरी के इन्डोलॉजिस्ट) के साथ समस्त उड़ीसा का भ्रमण किया। पुरी (उड़ीसा) के गुरु देवाप्रसाद दास की शिष्या बनकर आपने ओडिसी नृत्य की शिक्षा प्राप्त की।

आन्ध्र प्रदेश के कोरड नरसिंह राव से कुचिपुड़ी नृत्य तथा केरल कलामण्डलम् की चिनम्मू अम्मा से मोहिनी अट्टम की शिक्षा ली।

इन्द्राणी ने विविध नृत्यों का अभ्यास करते हुए विश्व के सभी प्रमुख देशों में भारतीय नृत्यों का प्रचार करते हुए नृत्य के राजदूत की तरह कार्य किया। इसी अवधि में आपको ऑल इण्डिया ब्यूटी कान्टेस्ट में मिस इण्डिया के नाम से विभूषित किया गया जिसके कारण लोग आपको मिस इन्द्राणी कहने लगे। १५ वर्ष की आयु में इन्द्राणी रहमान ने सुकन्या पुत्री को जन्म दिया और उसे बचपन से ही नृत्यों की शिक्षा देकर एक कुशल नृत्यांगना बनाया। सुकन्या ने सिक्किम रामास्वामी पिल्लै और गुरु किट्टप्पा से भरतनाट्यम् सीखा, गुरु देवाप्रसाद दास और गुरू श्रीनाम राउत से ओडिसी नृत्य तथा राजा और राधा रेड्डी से कुचिपुड़ी नृत्य की शिक्षा प्राप्त की। इन्द्राणी के पुत्र राम रहमान ने ११ वर्ष तक नृत्य सीखा तथा बाद में अमेरिका में रहकर फ़ोटोग्राफ़ी और ग्राफ़िक कला को अपनाया।

इन्द्राणी ने अपनी पुत्री सुकन्या को पैरिस में पेण्टिंग सिखा कर दिल्ली में गुरु नानाकसार तथा पण्डनल्लूर स्वामीनाथन् के निर्देशन में भरतनाट्यम् की शिक्षा दिलवा कर सिद्धहस्त बनाया। इसके बाद सुकन्या अपने अमेरिकन पति फ्रेंक विक्स के साथ अमेरिका में ही बस गई और वहाँ भरतनाट्यम् के प्रचार-प्रसार में जुट गई। बाद में इन्द्राणी भी अपने पति के साथ वहीं रहने लगीं। सुकन्या को अपनी माता तथा नानी रागिनीदेवी के साथ मिलकर 'श्री जेनेरेशन शो' प्रस्तुत करने का अवसर भी मिला। अनेक पुरस्कारों से विभूषित इन्द्राणी रहमान का निधन ७ जून सन् १९९९ में हुआ।

□ □ □

इन्दिरा कदम्बी

इन्दिरा कदम्बी ने कलामण्डलम् उषा दातार से भरतनाट्यम् की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करके अपना अरंग्रेट्रम प्रस्तुत किया और बाद में नाट्य-विशारद नर्मदा के नेतृत्व में अपनी कला को विकसित किया। भावाभिव्यक्तिपूर्ण अभिनय की बारीकियों को आपने गुरु पद्मभूषण कलानिधि नारायणन् से सीखा। स्वर्गीय कल्याणी कुट्टिअम्मा से इन्दिरा को मोहिनीअट्टम नृत्य की शिक्षा प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त आपने वेलकवडि श्रीनिवास आयंगार से शास्त्रीय संगीत की शिक्षा भी ग्रहण की।

इन्दिरा कदम्बी ने अपने भाषण प्रदर्शनों द्वारा भारत तथा विदेशों में अच्छा नाम कमाया। आपके द्वारा रचित नृत्य-नाटिकाओं में दशावतार, नवरस,

कृष्णलीला तथा रामायण उल्लेखनीय हैं। इन्दिरा में एक अच्छे नट्टुवनार के सभी गुण विद्यमान हैं। सन् १९९० में आपको भारत सरकार के साउथ सेन्ट्रल ज़ोन कल्चरल सेन्टर की ओर से सर्वश्रेष्ठ नर्तकी का पुरस्कार प्राप्त हुआ और सन् १९९६ में 'नाट्य शान्थला' की उपाधि से विभूषित किया गया। इन्दिरा कदम्बी ने कर्नाटिक संगीत के प्रमुख गायक टी० वी० रामप्रसाद के साथ मिलकर बंगलौर में सन् १९८९ में प्रदर्शन कला की वृद्धि के लिए 'नादान्त अकादमी ऑफ़ डान्स एण्ड म्यूज़िक' संस्था की स्थापना की जिसे बाद में 'अम्बलम्' नाम दिया गया।

□□□

इन्दिरा बरुआ बोरा

असम में जोरहाट के निकट सोनरी की निवासी इन्दिरा ने प्रारम्भ में कामरूपी नृत्यों को सीखा और फिर अड्यार के कलाक्षेत्र में प्रवेश किया। वहाँ रुक्मिणी देवी के निर्देशन में आपने अनेक नृत्य नाटिकाओं में भाग लेते हुए देश विदेश का भ्रमण किया। सन् १९६८ में आपने नृत्य में एम० ए० किया और फिर कुछ वर्षों बाद असम लौटकर उधर के विभिन्न शहरों में भरतनाट्यम् के कार्यक्रम प्रस्तुत किए। असम के दुलियाजन क्षेत्र में आपने भरतनाट्यम् सिखाने के लिए एक केन्द्र स्थापित किया जिसके अन्तर्गत वहाँ के अनेक विद्यार्थियों ने मणिपुरी नृत्य के साथ-साथ भरतनाट्यम् नृत्य शैली भी सीखी। डॉ० वेम्पति चिन्न सत्यम् से आपने कुचिपुड़ि नृत्य सीखा।

□□□

ई० कृष्ण अय्यर

ई० कृष्ण अय्यर का जन्म सन् १८९७ में तमिलनाडु के तिरुनेलवेलि नामक जिले में हुआ था। अपने माता-पिता अनन्त लक्ष्मी अम्माल और कैलाश अय्यर की आप चौदहवीं में से आठवीं सन्तान थे इसलिए आपका नाम कृष्ण रखा गया। कृष्ण की भाँति आपको भी अन्य परिवार में ईश्वर अय्यर और मीनाक्षी अम्माल को गोद दे दिया गया जो उसी जिले के कल्लिदाई कुरुचि नामक गाँव में रहते थे। इस गाँव में शादियों के अन्तर्गत हरिकथा और सादिर नृत्य के कार्यक्रम अधिक मात्रा में हुआ करते थे जिनका प्रभाव कृष्ण अय्यर के ऊपर विशेष रूप से होता था।

कृष्ण अय्यर ने सन् १९१४ में मद्रास क्रिश्चन कॉलेज से बी० ए० किया और फिर कानून का अध्ययन किया। सुन्दर शरीर होने के कारण आपको नाट्य

समारोहों में प्राय: स्त्री पात्र की भूमिका दे दी जाती थी। वॉयलिन विद्वान् पाप मंगलम, के० नीलकंठ अय्यर और तिरुनेलवेलि केसरि निवास अय्यर से आपने संगीत की शिक्षा प्राप्त की। नृत्य की शिक्षा आपने ई० नरेश अय्यर मदुरान्तकम् जगदम्बल से प्राप्त की। देवदासी परम्परा का उन्मूलन होने के बाद आपको लगा कि इसके साथ कहीं सादिर नृत्य (भरतनाट्यम्) का अस्तित्व भी समाप्त न हो जाये, अत: आपने उसके उत्थान का बीड़ा उठाया। मद्रास म्यूज़िक अकादेमी के सचिव पद पर कार्य करते हुए प्रतिमाह आपने नृत्य कार्यक्रम करने का संकल्प ले लिया। इस प्रकार वर्तमान भरतनाट्यम् को जीवित रखने का श्रेय आपको ही जाता है। सन् १९३५ में कृष्ण अय्यर ने महान् गुरु मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै को अपना गुरु बना लिया। आपकी प्रेरणा से ऐसे अनेक सभ्रान्त परिवारों ने भरतनाट्यम् को अपनाया, जो नृत्य की किसी परम्परा से नहीं जुड़े थे। इस स्थिति में भरतनाट्यम् नाम को प्रोत्साहन मिला और वह समाप्त होने से बच गया, क्योंकि 'सादिर' कहा जाने वाला यह नृत्य देवदासी प्रथा समाप्त होने के साथ ही लुप्त होने की कगार पर पहुँच गया था।

कृष्ण अय्यर स्वतन्त्रता सैनानी थे तथा संगीत और नृत्य के अच्छे समीक्षक थे। सन् १९३६ में उन्होंने एक और बड़ा काम किया। एक वृद्ध व्यक्ति के नृत्य को देखकर आपने उनसे दो बहनों सेल्वमणि और सरोजा को नृत्य सिखाने के लिए कहा, जो वास्तव में विशिष्ट गुरु कट्टुमन्नारकोइल मुत्तुकुमार पिल्लै थे। उन्होंने कला क्षेत्र में भी अनेक छात्र तैयार किये थे और मृणालिनी साराभाई तथा रामगोपाल जैसे नर्तकों को सिखाया। सन् १९४२ में उनकी शिष्या कमला ने अरंगेत्रम् प्रस्तुत किया, जो बाद में वज़ुवूर रमैया पिल्लै की शिष्या हो गई। इस प्रकार आकर्षक व्यक्तित्व वाले श्रेष्ठ नर्तकों की शृंखला खड़ी होने से कृष्ण अय्यर का स्वप्न साकार हुआ और भरतनाट्यम् को नया जीवन प्राप्त हुआ जिसमें प्राचीन परम्परागत प्रणाली से हटकर कुछ नए आयाम भी जुड़ गए।

□ □ □

उर्मिला सत्यनारायणन

उर्मिला सत्यनारायणन ने अभिनय की शिक्षा 'पद्मभूषण' श्रीमती कलानिधि नारायणन से प्राप्त की। नृत्य की प्रारम्भिक शिक्षा के० एन० दण्डायुधपाणि पिल्लै से प्राप्त करके गुरु कलाईमामणि श्रीमती के० जे० सरसा से आपने भरतनाट्यम् की उच्च शिक्षा प्राप्त की। विश्वविद्यालयीय शिक्षा पूर्ण करके उर्मिला ने कला जगत् को अपनी सेवाएँ अर्पित कर दीं और इसी निमित्त के कारण आपने मद्रास में 'नाट्यसंकल्प' नामक संस्था की स्थापना की।

अपने नृत्यों द्वारा उर्मिला ने देश-विदेशों में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। जिन पुरस्कारों तथा उपाधियों से आपको विभूषित किया गया, उनमें 'कलाईमामणि' (१९९७), 'दि श्रीराम अवार्ड फ़ॉर एक्सीलेंस' (१९९७), 'युवाकलाभारती' (१९९३), 'नारदगान सभा अवार्ड', 'एम० जी० आर० अवार्ड' (१९९२), 'आदित्यविक्रम बिरला कलाकिरण पुरस्कार' के नाम उल्लेखनीय हैं। अपनी प्रखर प्रतिभा, लगन और परिश्रम से आपने नृत्याभिव्यक्ति को सौंदर्यमण्डित करके भरतनाट्यम् की नृत्यांगनाओं में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है।

□□□

एम० के० सरोजा

अपनी प्रतिभा से बाला सरस्वती का स्मरण दिलाने वाली सरोजा को बाल्यकाल में कट्टुमन्नार कोइल गाँव के गुरु मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै ने जब देखा, तो उन्होंने सरोजा को पुत्री रूप में ग्रहण करके भरतनाट्यम् में पारंगत कर दिया। नौ वर्ष की अल्पायु में सरोजा मंच पर अवतरित हो गईं और शीघ्र ही कला जगत् में बेबी सरोजा के नाम से विख्यात हो गईं। रुक्मिणी देवी ने आपसे प्रभावित होकर मुथुकुमार पिल्लै के द्वारा कलाक्षेत्र में आपको नृत्य की उच्च शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध कर दिया। जब प्रसिद्ध नर्तक रामगोपाल ने सरोजा को देखा, तो उन्होंने उन्हें अपने नृत्य ग्रुप में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार सरोजा को तीन वर्षों तक विश्व के विभिन्न देशों में अपनी कला के प्रदर्शन का अच्छा अवसर मिला।

सन् १९४० के दशक में मद्रास (चेन्नई) में सरोजा को भरतनाट्यम् की श्रेष्ठ नर्तकियों में गिना जाने लगा। आपने अनेक तमिल फ़िल्मों में नृत्य प्रस्तुत किया और फिर अपने पति मोहन खोकर के साथ मिलकर भरतनाट्यम् पर एक पुस्तक की रचना की। पेरिस में सरोजा की कला पर तीन घंटे की फ़िल्म तैयार की गई तथा रोम में एक डॉक्युमैन्ट्री का निर्माण किया गया। १९७९ में एम० के० सरोजा को कलकत्ता की 'रवीन्द्र भारती यूनिवर्सिटी' द्वारा 'विज़िटिंग फ़ैलो' के रूप में चुना गया। तमिलनाडु संगीत नाटक अकादमी द्वारा आपको भरतनाट्यम् के लिए 'कलाईमामणि अवार्ड' तथा सन् १९९६ में 'राष्ट्रपति पुरस्कार' (केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी) से सम्मानित किया गया।

□□□

एम० वी० नरसिंहाचारी

नरसिंहाचारी और वसन्तलक्ष्मी पति-पत्नी के रूप में भरतनाट्यम् तथा कुचिपुड़ी के क्षेत्र में सम्माननीय प्रशिक्षक गुरु और नर्तक के रूप में विख्यात हैं।

नरसिंहाचारी को प्रारम्भिक नृत्य शिक्षा अपने पिता सत्यनारायणाचारी और बाद में कलाक्षेत्र द्वारा उपलब्ध हुई। नृत्य के अतिरिक्त आप गायक, संगीत रचयिता और मृदंगवादक भी हैं।

श्रीमती वसन्त लक्ष्मी ने प्रारम्भिक नृत्य शिक्षा अड्यार के० लक्ष्मण से ली और बाद में नरसिंहाचारी से सीखा। सन् १९६९ से आप अपने पति के साथ मिलकर विभिन्न नृत्य नाटिकाओं तथा एकल प्रदर्शनों द्वारा देश-विदेश में यश अर्जित कर चुकी हैं। १९६९ में ही आपने नरसिंहाचारी के साथ मिलकर मद्रास (चेन्नई) में 'कला समर्पण फ़ाउण्डेशन' की स्थापना की, जिसका लक्ष्य भारतीय शास्त्रीय नृत्य, संगीत, साहित्य, दर्शन और कला-इतिहास का प्रचार-प्रसार करना है। दोनों की मान्यता है कि नृत्य को आध्यात्मिक भावों का अभिव्यंजक होने के साथ-साथ मनोमुग्धकारी भी होना चाहिए।

□ □ □

एस० कनका

एस० कनका ने प्रारम्भ से ही मद्रास में गुरु वज़ूवर रमेय्या पिल्लै से भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की। इसके अतिरिक्त गुरु स्वामीमलाई राजरत्नम् से भी सीखा।

एस० कनका ने दिल्ली रहकर विभिन्न कार्यक्रमों में अच्छा नाम कमाया और देश-विदेशों में भी अपनी अभिनय प्रतिभा की छाप छोड़ी। आपने कालिदास के 'कुमारसम्भवम्' और 'मालविकाग्निमित्रम्' तथा स्वाति तिरनाल की रचना 'पद्मनाभा प्रेयस' पर नृत्य नाटिकाओं की रचना करके कलासमीक्षकों को विशेष मोहित किया।

□ □ □

कमला

दक्षिण-भारत की प्रतिभावान् नर्तकी कमला ने अपनी किशोरावस्था से ही नृत्य की दुनिया में जितनी प्रबल ख्याति पाई, उसे देखकर आश्चर्य करना पड़ता है। मद्रास प्रान्त के मायरम् नगर में १६ जून, १९३४ ई० को एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुल में आपका जन्म हुआ था। शैशवावस्था में ही कमला के अन्दर नृत्य के संस्कार दृष्टिगोचर होने लगे थे। जब ये दो वर्ष की थीं, तभी ग्रामोफ़ोन पर बजनेवाले रिकार्डों के साथ नृत्य किया करती थीं। उन दिनों इनके पिता बम्बई रहते थे, अतः कमला को बचपन में बम्बई के एक नृत्य-विद्यालय में शिक्षार्थ भेजा गया। पाँच वर्ष की आयु में ही इन्हें कथक, कथकलि तथा मणिपुरी का भी अच्छा अभ्यास हो गया। तत्पश्चात् आपको प्रसिद्ध नर्तकी अज़ूरी की मंडली में दाखिल कर दिया गया। वहाँ आपके नृत्य बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। थोड़ी अवधि में ही कमला की ख्याति समस्त बम्बई में फैल गई।

उन्हीं दिनों इस ख्याति-प्राप्त बाल-नटी पर चलचित्र-निर्माताओं की दृष्टि पड़ी और कमला को क्रमशः अनेक फ़िल्मों में नृत्य की भूमिकाएँ अभिनीत करने के सुयोग प्राप्त हुए। रजतपटीय नृत्याभिनय ने आपकी प्रतिभा को और भी चमका दिया। 'वसन्त' और 'रामराज्य' जैसे चित्रों द्वारा इन्हें बहुत ख्याति प्राप्त हुई। कुछ दिनों बाद कमला ने मद्रास के नृत्याचार्य बलहूर रामय्य पिल्लै से कर्नाटिक-संगीत तथा भरतनाट्यम् की आवश्यक शिक्षा प्राप्त की।

सन् १९५३ ई० में रानी एलिजाबेथ के राज्याभिषेक के अवसर पर आपको इंगलैंड भेजा गया।

अपनी बहनों राधा और वासंती के सहयोग से कमला के कार्यक्रम काफी प्रभावकारी रहते थे। इन्होंने सन् १९३२ में एशिया कन्वेंशन, ला-विगास में और सन् १९६४ में थिएटर द-नेशन्स, पेरिस में भारतीय कला व संगीत का प्रतिनिधित्व किया। मद्रास संगीत-नाटक संगम् ने कमला को 'कलासिगमणि' उपाधि दी। सन् १९६८ में मद्रास राज्य संगीत-नाटक अकादमी ने और सन् १९६८-६९ में संगीत-नाटक-अकादमी, दिल्ली ने इन्हें पुरस्कार दिए तथा सन् १९७० में भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' अलंकरण से विभूषित किया।

□□□

कलानिधि नारायणन्

कलानिधि नारायणन् ने कांजीवरम् के नट्टुवनार कणप्पा मुदलियार से भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की और मैलापुर गौरीअम्मा से अभिनय सीखा। इसके बाद आपने चिनैय्या नायडू से भरतनाट्यम् की गहन शिक्षा प्राप्त की।

सन् १९३८ में आप म्यूज़िक अकादमी, मद्रास के द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में अवतरित हुईं तथा सन् १९७३ में आपने मद्रास के भारतीय विद्या भवन में नृत्य सिखाना शुरू किया। बाला सरस्वती परम्परा के अभिनय में निष्णात कलानिधि नारायणन् ने भरतनाट्यम् के भावपक्ष पर विशेष कार्य किया और विभिन्न शिष्यों को उसमें पारंगत करते हुए रंगमंच के माध्यम से उसे सर्वत्र प्रसारित किया।

□ □ □

कल्याण सुन्दरम्

अपने माता-पिता के छः बच्चों में सबसे छोटे गुरु कल्याण सुन्दरम् का जन्म १ मार्च, सन् १९३२ को तजावूर (तमिलनाडु) के निकट तिरुविदैमरुदुर (मन्दिरों का नगर) में हुआ था। केवल आपके ही परिवार को तंजावूर में नन्दी की विशालमूर्ति के पीछे बने विशेष मंच पर नृत्य प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त था जिसे 'सर्वेन्द्र भूपाल कुरवंची' के नाम से जाना जाता है। पंचपकेश नट्टुवनार घराने के कुल-गौरव कल्याण सुन्दरम् की माता देवियानी भी संगीतज्ञ और नर्तकों के घराने से सम्बन्ध रखती थीं।

कल्याण सुन्दरम् ने हाईस्कूल की शिक्षा पूरी करते हुए मृदंगम् पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया था और नृत्य तो मानो उनके जीवन का अंग ही था। पाँच वर्ष की अल्पायु में कुंबकोनम् कुम्बेश्वरन् कोइल में नृत्य प्रस्तुत करके आपने लोगों को चकित कर दिया था। १६ वर्ष की आयु में आप बम्बई आ गए और वहाँ अपने गुरु गोविन्दराज पिल्लै की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन से नृत्य की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। कुपैया का घराना राजा सरफ़ोजी के दरबारी नट्टुवनार वैंकट कृष्ण के बाद दूसरी पीढ़ी में वीरास्वामी और चिनप्पा अम्माल जैसे नट्टुवनार हुए। तीसरी पीढ़ी में पंचमकेश नट्टुवनार हुए, जिनके एकमात्र पुत्र कुपैया पिल्लै और दामाद गुरु गोविन्दराव पिल्लै ने बम्बई में सन् १९४५ में 'श्री राजराजेश्वरी 'भरतनाट्य कला मन्दिर' की स्थापना की। श्री राजराजेश्वरी भरतनाट्यकला मन्दिर

के नाम से आपने भरतनाट्यम् को नया जीवन प्रदान करते हुए अनेक शिष्य तैयार किए जिनकी कला को विश्व में सराहा गया।

पुरन्दरदास, आदि शंकर, त्यागराज और सुब्रमण्य भारती जैसी हस्तियों के पदों पर आधारित नृत्य रचनाओं के लिए कल्याण सुन्दरम् को पर्याप्त यश मिला। अन्य नृत्य पद्धतियों के गुरुओं के साथ मिलकर भी आपने अनेक नृत्य नाटिकाएँ प्रस्तुत कीं, जिन्होंने उत्तर तथा दक्षिण भारतीय कला और कलाकारों में सामजस्य स्थापित किया। प्रसिद्ध नट्टुवनारों की ढाई सौ वर्ष पुरानी परम्परा के प्रतीक गुरु कल्याण सुन्दरम् का कहना है कि नृत्य हमारे जीवन का सत्य है और इसी ने मुझे प्राचीन संत कवियों की ओर उन्मुख करके नृत्य के माध्यम से उसे उद्घाटित करने का अवसर प्रदान किया है ताकि सामान्य जन को भी वह सुलभ हो सके। कुप्पैया पिल्लै कल्याण सुन्दरम् और पुत्री श्रीमती करुणाम्बल के प्रयत्नों से भरतनाट्यम् को उत्तर भारत में संस्थापित तथा लोकप्रिय करने में इस सम्पूर्ण घराने का योगदान स्मरणीय है। अनेक पुरस्कारों से विभूषित कल्याण सुन्दरम् ने नृत्य की तंजौर परम्परा को जीवित रखते हुए अपने कठोर श्रम से भरतनाट्यम् में जो नये प्राण फूंके उसे सदैव याद रखा जाएगा।

□□□

किरन सैगल

कमलेश्वर सैगल और जोहरा सैगल की पुत्री किरन सैगल को प्रारम्भ से ही घर में संगीत का वातावरण मिला क्योंकि आपके माता-पिता अलमोड़ा सेन्टर में नर्तक उदय शंकर के ग्रुप में कार्य करते थे। बाद में जोहरा सैगल पृथ्वी थियेटर्स में अभिनेत्री के रूप में कार्य करने लगी, जिनकी अभिनय क्षमता ने भारत ही नहीं बल्कि इंग्लैण्ड के लोगों को भी प्रभावित किया और इसी कारण उन्हें ब्रिटिश रंगमंच पर कार्य करने का अवसर भी प्राप्त हुआ।

गुरु चोक्कलिंगम् पिल्लै के शिष्य गुरु नानाकसार से किरन ने भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की। अतः आपके नृत्य में पण्डनल्लूर शैली की छाप स्पष्ट दिखाई देने लगी। किरन ने दिल्ली में रहकर भरतनाट्यम् का पर्याप्त प्रचार-प्रसार किया और देश-विदेश में अपनी अभिनय क्षमता से लोगों को आकर्षित किया। आजकल आपका रुझान उड़ीसी की ओर अधिक है।

□□□

कुप्पैया पिल्लै

टी० पी० कुप्पैया पिल्लै का जन्म तंजौर में १७ मार्च, १८८७ को हुआ था। आप तंजौर के तिरुविदैमरूदुर गाँव में रहते थे। आपका घर सदैव घुँघरू और मँजीरों की झंकार से भरा रहता था। पिता पंचपकेश से ही इनके नट्टुवनार घराने की परम्परा शुरू हुई। पंचपकेश ने श्रेष्ठ नर्तकों का एक ग्रुप तैयार किया था और फिर उसमें एक के बाद एक भरतनाट्यम् के यशस्वी कलाकार उत्पन्न होते गए। तंजौर, बड़ौदा और रामनाथपुरम् के राज घरानों में पंचपकेश का स्थान विद्वान् के रूप में नियुक्त किया गया था। वे संस्कृत और तेलगू शास्त्रों के विद्वान् थे। तमिल भाषा में आपने चेतलूनारायण अयंगार के साथ मिलकर 'अभिनय नवनीतम्' (नृत्य का क्रियात्मक शास्त्र) प्रकाशित किया था, जिसमें 'नन्दी भरतम्' नाम से एक अंश नन्दिकेश्वर के 'अभिनयदर्पण' के अनुवाद रूप में था।

पिता के देहान्त के समय कुप्पैया मात्र तेरह वर्ष के थे। कठोर परिश्रम से वे एक श्रेष्ठ गुरु और कला प्रस्तोता के रूप में जाने गए। भरतनाट्यम् की प्रारम्भिक शिक्षा आपने तंजावूर कन्नैया नट्टुवनार से प्राप्त की थी। पुडुकोट्टई अम्मालु तथा जयलक्ष्मी जैसे कलाकारों को आपने तैयार किया। सुब्रमण्यम् नायडू से कुप्पैया ने संगीत सीखा और चिनैया रामानुजम् अयंगार से संस्कृत तथा तेलगू की शिक्षा प्राप्त की। आप तंजौर दरबार और ब्रहदीश्वर मन्दिर के स्थायी नृत्य शिक्षक थे तथा तंजौर के तिरुविदैमरुदुर के मध्यार्जुन मन्दिर में अनेक वर्षों तक आपने नृत्योत्सवों को अपनी सेवा प्रदान की। आपके शिष्यों में प्रसिद्ध देवदासियों थोवूर शुब्बु लक्ष्मी, बंगलौर सीता, पुडुकोट्टई, अम्मालु, बड़ोदागौरी कान्तिमती के नाम उल्लेखनीय हैं।

कुप्पैया का परिवार सरफ़ोजी के समय के वेंकटकृष्ण नट्टुवनार का वंशज है, जिससे सम्बन्धित एक पुत्री के बेटे वीरास्वामी नट्टुवनार का भी बहुत नाम हुआ। सन् १९१७ में कुप्पैया के पुत्र महालिंगम् का जन्म हुआ, जिन्होंने 'स्त्रियों को केवल परम्परागत गुरुओं से ही शिक्षित किया जा सकता हैं' जैसी मान्यता को निरन्तर कर दिया। उनके कथनानुसार सादिर (भरतनाट्यम् का पूर्व नाम) भी ऐसे व्यक्तियों द्वारा सिखाया जाता रहा, जो न परम्परावादी थे और न कभी मंच पर अवतरित हुए। महालिंगम् पिल्लै और उनके भाई मरूदप्पा ने भरतनाट्यम् की कठोर शिक्षा प्राप्त की। कुप्पैया की पुत्री करुणाम्बल अपने पति गोविन्दराज पिल्लै के साथ बम्बई आ गईं, जहाँ सन् १९४५ के लगभग 'राजराजेश्वरी भरतनाट्यम् कला मंदिर' की स्थापना करके आपने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। इस केन्द्र में योग, नृत्य और अभिनय की कठोर शिक्षा दी जाने लगी। यहाँ पंडनल्लूर ज्ञान सुन्दरम् संगीत की शिक्षा देते थे और नट्टुवंगम् की कक्षाएँ उनके मामा गोविन्दराज नट्टुवनार लेते थे। गोविन्दराज की बहन से कुप्पैया के पुत्र महालिंगम् पिल्लै का

विवाह हुआ। महालिंगम् की शिष्याओं में पद्मिनी और ललिता (त्रावनकोर सिस्टर्स) ने जब फ़िल्म क्षेत्र में पदार्पण किया, तो महालिंगम् भी स्थायी रूप से बम्बई आगए। महालिंगम् के पुत्र विश्वनाथ भी एक श्रेष्ठ नट्टुवंगम् विशेषज्ञ कहलाए। महालिंगम् के तंजौर शैली में अभिनय और मृदंगवादन को बहुत सराहना मिली। महालिंगम् के भाई कल्याणसुन्दरम् भी भरतनाट्यम् के दक्ष शिक्षक हैं, जिनका कथन—'कटि से ऊपर सौन्दर्य और नीचे तेजस्विता' (Grace above the hips and force below it) नृत्य जगत् में प्रचलित है। कल्याण सुन्दरम् ने नृत्य में सदैव नवीनता को स्वीकार किया, लेकिन महालिंगम् को परम्परागत कला में कोई परिवर्तन कभी स्वीकार नहीं हुआ।

कुप्पैया पिल्लै ने 'सर्वेन्द्र भूपाल कुरवंजी' को पुनरुज्जीवित करके १९४० के दशक में तिरुविदैमरुदुर में उसे प्रस्तुत किया। कड़े अनुशासन और शुद्ध शास्त्रीय नृत्य परम्परा के लिए आप सदैव विख्यात रहे। कुप्पैया ने पाँच सौ से अधिक श्रेष्ठ नर्तक तैयार किए, जिनमें पद्मिनी (न्यूयार्क), श्रीधरन (कानपुर), केशवनारायण (हैदराबाद), राजलक्ष्मी (कलकत्ता), कलासदन मणि, गुरु पार्वतीकुमार तथा रमणि (मुम्बई), सुधा चन्द्रशेखर (कनाडा), विजयलक्ष्मी प्रकाश (लॉस एञ्जिलस) राधा सुब्रमण्यन् (ओन्टारियो) तथा पद्मकाण्ड (मलेशिया) के नाम उल्लेखनीय है।

कुप्पैया ने 'कमला चक्रम्' नाम से एक ग्रन्थ लिखा, जिसमें कमल के फूल की पखुड़ियों के अन्तर्गत एक सौ तैंतालीस चालों का चक्र बनाया। आपको अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। कुप्पैया के परिवार ने भरतनाट्यम् के क्षेत्र में अभूतपूर्व सेवाएँ प्रदान कीं, जिनमें सुब्रमण्यम् पिल्लै (चाचा), गोविन्दराज पिल्लै (दामाद), महालिंगम् पिल्लै और कल्याण सुन्दरम् (पुत्र), श्रीमती करुणाम्बल गोविन्दराज पिल्लै (पुत्री), श्रीमती मैथली कल्याण सुन्दरम् (पुत्रवधू), जी० बसन्त कुमार और एम० विश्वनाथ (पौत्र) इत्यादि के नाम प्रमुख हैं।

□□□

कृष्ण वेणि

कृष्ण वेणि लक्ष्मणन् ने अड्यार कलाक्षेत्र में भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की। रुक्मिणी देवी अरुण्डेल द्वारा रचित नृत्य नाटिकाओं में आपने काफी भाग लिया। रामायण नृत्य नाटिका में सीता के रूप में उनकी भूमिका स्मरणीय है। कला क्षेत्र के ट्रुप के साथ आपने अनेक देशों का भ्रमण किया। कृष्ण वेणि ने कला क्षेत्र की परम्परागत नृत्य शिक्षा पर गहराई से ध्यान देकर नृत्य की शुद्धता को सदैव कायम रखा।

□□□

के० एन० दक्षिणामूर्ति

के० एन० दक्षिणामूर्ति पिल्लै का जन्म २६ जुलाई सन् १६२८ को ऐसे परिवार में हुआ, जो नाट्य विद्वान् तथा संगीतकारों की प्राचीन परम्परा से जुड़ा हुआ था। आपके पिता प्रसिद्ध नादस्वर विद्वान् कराइकल नटेश पिल्लै और बाबा भरतनाट्यम् विद्वान् तिरुनल्लार रामकृष्ण पिल्लै भी प्रसिद्ध कलाकार थे। चाचा नाद स्वर चक्रवर्ती विरुवदुदुरई टी० एन० राजरथम् पिल्लै और बड़े भाई नृत्य रचयिता पद्मश्री के० एन० धन्द्मथपाणि पिल्लै ने भी अपने-अपने क्षेत्र में अच्छा यश अर्जित किया।

दक्षिणामूर्ति ने एक मृदङ्ग वादक के रूप में अपना कार्यक्षेत्र (कैरियर) चुना और फिर भरतनाट्यम् के प्रति उनका लगाव बढ़ता गया। सन् १६५३ से आपने विद्यार्थियों को नृत्य की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। इसके लिए उन्होंने अपने भाई धन्युथपाणि की शैली को आधार बनाया, जो अपने स्वरूप में सौन्दर्य-तत्त्व का समावेश करते हुए अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती थी।

नई दिल्ली में दक्षिणामूर्ति ने 'नाट्यकलालयम्' संस्था के माध्यम से भरत-नाट्यम् के हजारों छात्र तैयार किये। इनमें हेमामालिनी, स्वप्नसुन्दरी, यामिनीकृष्णमूर्ति, सोनल मानसिंह, अञ्जना बनर्जी, अन्ने मारी गैरटन, तरवीन मेहरा, हेमा राजगोपाल और गीता चन्द्रन, वीनु दक्षिणामूर्ति, उषा श्रीनिवासन, नलिनी शेष राव, मनीष चावला और रागिनी कृष्णन तथा उर्वशी के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुरु दक्षिणामूर्ति ने देश-विदेशों की यात्रा करके पर्याप्त यश अर्जित किया और आपके शिष्यों ने भी ख्याति प्राप्त करके देश-विदेशों में भरतनाट्यम् का प्रचार किया।

तमिलनाडु सरकार ने सन् १६८५ ई० में दक्षिणामूर्ति को कलाईमामणि उपाधि से विभूषित किया तथा सन् १६६२ में आपको साहित्य कला परिषद् द्वारा सम्मानित किया गया। अपने शिष्यों द्वारा एक सौ से अधिक अरङ्गेत्रम् प्रस्तुत कराने वाले दक्षिणामूर्ति वर्तमान पीढ़ी के उन गुरुओं में से हैं, जिन्होंने भारत की राजधानी दिल्ली को अपनी कर्मभूमि चुनकर भरतनाट्यम् का विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार किया।

□ □ □

के० पी० किट्टप्पा पिल्लै

(जन्म सन् १९१३)

भरतनाट्यम् के स्तम्भ माने जाने वाले गुरु के० पी० किट्टप्पा पिल्लै तंजावुर परम्परा के नाट्याचार्य थे, जिन्होंने कर्नाटिक संगीत और नृत्य के क्षेत्र में एक इतिहास का निर्माण किया। आपने वर्तमान भरतनाट्यम् को व्यवस्था देते हुए, उसमें अलारिप्पु, जतिस्वरम्, वर्णम् या स्वरजति, पदम्, जावली और तिल्लाना का क्रम निर्धारित किया और नृत्य से सम्बन्धित संगीत रचनाएँ तैयार कीं, जो आज तक चल रही हैं। आपके पिता पून्निया पिल्लै अन्नामलाई यूनिवर्सिटी चिदम्बरम् के संगीत कालेज में प्रोफेसर और प्रिंसीपल के पद पर कार्यरत रहे। वह किसी नट्टुवनार से ऐसे प्रथम संगीतकार थे, जिन्हें म्यूजिक अकादमी मद्रास ने 'संगीत-कलानिधि' की उपाधि से विभूषित किया था। आपके बाबा कन्नुस्वामी पिल्लै और नाना पण्डनतलूर मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै भी श्रेष्ठ संगीतकार थे।

किट्टप्पा के शिष्यों में वैजयन्ती माला, सुधारानी रघुपति, हेमामालिनी, पद्मलोचनी नागराजन् और बंगलौर पद्मिनीराव के नाम प्रमुख हैं। आपको नाट्यकलानिधि, ई. कृष्ण अय्यर मैडल, 'संगीत नाटक अकादमी अवार्ड' और कालिदास सम्मान जैसे अनेक सम्मानों से विभूषित किया गया था। किट्टप्पा की सुदृढ़ नृत्य परम्परा ने भरतनाट्यम् को गौरवान्वित किया, यह निर्विवाद है।

□□□

कोमला वर्दन

कोमला वर्दन का जन्म एक रूढ़िवादी परिवार में हुआ था, फिर भी डॉक्टर पिता और संगीत प्रेमी माँ ने कोमला की नृत्य में दिलचस्पी देखकर उन्हें भरतनाट्यम् की विधिवत् शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति दे दी। बहुत कम उम्र में कोमला नृत्य में पारंगत हो गई थीं। १३ वर्ष की उम्र में ही आपने सिंगापुर में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करके लोगों को चकित कर दिया। वहाँ उन्हें 'नृत्यरानी' सम्मान से सम्मानित किया गया। उसके बाद आपकी लोकप्रियता बढ़ती रही, जो शीघ्र विश्वव्यापी हो गई। बचपन में ही कोमला ने अनेक स्वर्णपदक प्राप्त किए। जनवरी १९७५ में नेहरू युवक केन्द्र द्वारा आयोजित कार्यक्रम में 'उच्चकोटि की नृत्यांगना' सम्मान से विभूषित किया गया। सन् १९८५ में कर्नाटक सरकार ने 'राजोत्सव पुरस्कार', सन् १९८७ में तमिलनाडु सरकार ने 'कला भारती' तथा

'साहित्य कला परिषद् सम्मान' से सम्मानित किया; सन् १९८९ में 'बंगलौर गहना समाज' ने सम्मानित किया। साहित्य और कला पर लिखी गई आपकी पुस्तक का विमोचन सन् १९८५ में राष्ट्रपति द्वारा किया गया।

कोमला ने नृत्य के अतिरिक्त गायन एवं वादन का भी अभ्यास किया, उनके पति भी एक प्रशासनिक अधिकारी के अतिरिक्त एक अच्छे संगीतकार हैं, जिनसे कोमला को पर्याप्त दिशा निर्देश प्राप्त होते रहे।

□ □ □

गीता चन्द्रन

दिल्ली की 'नाट्यवृक्ष' संस्था की संस्थापक गीता चन्द्रन उन भरतनाट्यम् नृत्यांगनाओं में से हैं, जिन्होंने विभिन्न परम्परागत गुरुओं के निर्देशन में अपनी कला को विकसित किया। आप तंजावूर शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं। गीता ने नृत्य की प्राथमिक शिक्षा देवदासी परम्परा की गुरु स्वर्ण सरस्वती से प्राप्त की थी। कर्नाटिक कण्ठ संगीत में भी आप दक्ष हैं। देश-विदेश के विभिन्न समारोहों में अपनी नृत्य प्रस्तुति के द्वारा आपने अच्छा यश अर्जित किया और टेलीविज़न, वीडियो तथा फ़िल्म जैसे माध्यमों को विशेष रूप से अपनाया।

गीता चन्द्रन ने जन सम्पर्क और वीडियो फ़िल्म निर्माण में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त करके नई दिल्ली के नाट्यकलालयम् में गुरु के० एन० दक्षिणामूर्ति (के० एन० दण्डायुधपाणि के लघु भ्राता) के निर्देशन में भरतनाट्यम् की बारीकियों का विकास किया और गुरु वी० कृष्णमूर्ति, श्रीमती जमुना कृष्णन तथा श्रीमती कलानिधि नारायणन के सम्पर्क में आकर अभिनय पक्ष का विकास किया। आपने अपना अरंगेट्रम सन् १९७४ में प्रस्तुत किया था। 'सिंगारमणि', 'ऑल इण्डिया क्रिटिक्स अवार्ड' तथा 'मीडिया इण्डिया अवार्ड' जैसे पुरस्कारों से विभूषित गीता चन्द्रन नृत्य के क्रियात्मक और शास्त्रीय क्षेत्र में समान रूप से दक्ष हैं।

□ □ □

चन्द्रलेखा

गुजरात की नृत्यांगना ने भरतनाट्यम् की शिक्षा एलप्पा पिल्लै से प्राप्त की। बाला सरस्वती द्वारा स्थापित कण्डप्पन स्कूल ऑफ भरतनाट्यम् का प्रतिनिधित्व भी उन्होंने किया।

नृत्य की साधना के अतिरिक्त चन्द्रलेखा को नृत्य की प्राचीन परम्परा को जीवित रखने और उस पर निरन्तर कार्य करने में सदैव रुचि रही। भरतनाट्यम् पद्धति में नवग्रह जैसी नृत्य रचनाओं के माध्यम से लोगों को आपने इस शैली के

प्रति काफी आकर्षित किया। इस प्रकार के कार्यों से उन्होंने यह बताने की चेष्टा की, कि भरतनाट्यम् केवल रूढ़िवादी परम्परा ही नहीं है, बल्कि वह नवीन सृजन को भी प्रोत्साहित करता है। जीव और माया को आपने नायक-नायिका के रूप में देखकर जो रचनाएँ भरतनाट्यम् के माध्यम से प्रस्तुत कीं, उनकी सर्वत्र प्रशंसा हुई। कला में अनुशासन और परम्परागत विशेषताओं के प्रति आपको सदैव लगाव रहा, ताकि भारतीय संस्कृति को समुचित ढंग से सुरक्षित रखा जा सके। फ़िल्म 'माया दर्पण' में चन्द्रलेखा ने नृत्य निर्देशन किया है। नृत्य के अतिरिक्त कथा साहित्य और काव्य रचना में भी उनकी विशेष रुचि रही। □□□

चित्रा विश्वेश्वरन

चित्रा विश्वेश्वरन ने भरतनाट्यम् की प्रारम्भिक शिक्षा तंजौर घराने की टी० एन० राजलक्ष्मी से कलकत्ता में प्राप्त की। उसके बाद मद्रास में वजूवुर रमैय्या पिल्लै से सीखा। आपने मद्रास में नृत्य शिक्षा देने के लिए अपना केन्द्र 'चिदम्बरम्' नाम से स्थापित किया।

चित्रा ने देश-विदेश में अपने कार्यक्रम दिए और अच्छा यश प्राप्त किया। कर्नाटिक संगीतकार जी० एन० बाल सुब्रमण्यम् के भतीजे आर० विश्वेश्वरन से चित्रा का विवाह सम्पन्न हुआ, जिन्होंने वीणा, सन्तूर और गिटार वादन के क्षेत्र में अच्छा यश अर्जित किया। □□□

जयलक्ष्मी ईश्वर

जयलक्ष्मी ईश्वर का नाम भरतनाट्यम् की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नृत्यांगनाओं में लिया जाता है। कलाक्षेत्र की विशिष्टताओं को उपलब्ध करके आपने आधुनिक और परम्परागत नृत्य को ध्यान में रखते हुए अपनी विशिष्ट शैली का विकास किया। मूक, वधिर और अल्प विकसित बच्चों में कला का संचार करने के लिए आपने अपना काफी समय देकर उसे भी एक लक्ष्य बनाया, ताकि वे भी एक कलाकार की भाँति एकल नृत्य और सामूहिक नृत्य प्रस्तुत कर सकें।

जयलक्ष्मी ईश्वर 'अभिनया स्कूल फ़ॉर भरतनाट्यम्' संस्था की संस्थापक हैं और दिल्ली की त्रिवेणी कला संगम संस्था के भरतनाट्यम् विभाग की प्रमुख हैं। विभिन्न संस्थाओं द्वारा जो उपाधियाँ आपको प्राप्त हुई, उनमें 'नाट्यकलाई सेल्वी' और 'नाट्यकला नायिकी' उल्लेखनीय हैं। भरतनाट्यम् के अतिरिक्त आप ओडिसी नृत्य में भी दक्ष हैं, जिसकी शिक्षा आपने केलुचरण महापात्र, मायाधर राउत और रमणिरंजन से प्राप्त की। राष्ट्रीय पुरस्कार से पुरस्कृत शास्त्रीय कन्नड फ़िल्म 'हंसगीते' में आप तंजौर नृत्यांगना के रूप में अपनी कला प्रस्तुत कर चुकी हैं। □□□

टी० के० महालिंगम् पिल्लै

तिरुविदैमरुदुर कुप्पैया महालिंगम् पिल्लै भरतनाट्यम् के क्षेत्र में एक विख्यात परम्परा के वंशज हैं जिन्हें आधुनिक भरतनाट्यम् का महान् नट्टुवनार, सर्जक तथा नृत्य रचयिता माना जाता है।

महालिंगम् पिल्लै ने भरतनाट्यम् के उस घराने में जन्म लिया, जिन्होंने सादिर (भरतनाट्यम् का पूर्व नाम) नृत्य की रक्षा करते हुए वर्तमानकाल तक उसकी परम्परा को जीवित रखा। इस परम्परा ने हजारों शिष्य और सैकड़ों श्रेष्ठ नर्तक तैयार किए। आपके कुल में वैंकट कृष्णन नट्टुवनार, उनके पुत्र वीरा स्वामी पिल्लै और उनके पौत्र पंचपकेश नट्टुवनार ने अपूर्व यश अर्जित किया तथा प्रपौत्र कुप्पैया पिल्लै के ज्येष्ठ पुत्र महालिंगम् पिल्लै ने इस परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए भरतनाट्यम् को नया जीवन प्रदान किया।

कुप्पैया पिल्लै के ज्येष्ठ पुत्र महालिंगम् पिल्लै का जन्म सन् १९१७ में हुआ था। आपने अपने पिता टी० कुप्पैया पिल्लै और चाचा टी० एस० गोविन्दराज पिल्लै से भरतनाट्यम् पण्डनल्लूर ज्ञानी पिल्लै से कर्नाटिक संगीत की शिक्षा प्राप्त की। आपने संस्कृत तेलगू और तमिल का गहन अध्ययन करके नृत्य की तंजौर (तंजावूर) प्रक्रिया को जीवित रखा और बम्बई (मुम्बई) को अपना कार्यक्षेत्र चुना। सन् १९५० में आपका सम्पूर्ण परिवार बम्बई आ गया, जहाँ कुप्पैया पिल्लै और गोविन्दराज पिल्लै द्वारा सन् १९४५ में स्थापित 'श्री राजराजेश्वरी भरतनाट्य कला मंदिर' के विकास में सम्पूर्ण परिवार जुट गया।

महालिंगम् पिल्लै को अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया, जिनमें 'कलाईमा मणि', 'संगीत नाटक अकादमी अवार्ड', 'शार्ङ्गदेव फेलोशिप', 'भरतकला-मरियार', 'भरतसिंहम्', 'महाराष्ट्र गौरव पुरस्कार' 'वैदुरियम्', 'ई० कृष्ण अय्यर मंडल अवॉर्ड' और 'नाट्य चक्रवर्ती' उल्लेखनीय हैं। भरतनाट्यम् के क्षेत्र में महालिंगम् पिल्लै और उनके सम्पूर्ण परिवार तथा पूर्वजों के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकेगा।

□ □ □

तंजोर ब्रदर्स (शिवानन्दम्, वाडिवेलु, चिन्नय्या और पुन्नय्या)

भरतनाट्यम् के क्षेत्र में तंजोर ब्रदर्स के नाम से विख्यात शिवानन्दम् और वाडिवेलु ने नये क्षितिज खोले, जिससे भविष्य की नई पीढ़ी लाभान्वित हुई। आपने महान् संगीतकार मुत्थुस्वामी दीक्षितार से विधिवत कर्नाटिक संगीत की शिक्षा ग्रहण की। तंजावुर दरबार में आपने अपना अरंगेत्रम् प्रस्तुत किया। नट्टुवनार परम्परा से सम्बन्धित तंजोर ब्रदर्स ने अपने दो अन्य भाइयों चिन्नय्या और पुन्नय्या के साथ मिलकर भरतनाट्यम् को एक नया स्वरूप प्रदान किया, जो वर्तमान काल तक चला आ रहा है।

□□□

धनञ्जयन तथा शान्ता धनञ्जयन

वी० पी० धनञ्जयन को बचपन से ही काव्य, संगीत और संस्कृत में रुचि थी। गुरु चन्दुपणिक्कर के निर्देशन में आपने कलाक्षेत्र शैली में दक्षता प्राप्त की। रुक्मिणी देवी की रामायण नृत्य नाटिका में आपको राम का अभिनय सौंपा गया। आपका जन्म १९६८ में हुआ। भरत कलांजलि नामक संस्था का निर्देशन करते हुए आपने अपनी पत्नी के साथ देश-विदेशों में अच्छा यश अर्जित किया।

□□□

पद्मा सुब्रमण्यन

तमिल फ़िल्मों के निर्माता और निर्देशक के० सुब्रमण्यन की पुत्री पद्मा सुब्रमण्यम् ने बचपन से ही भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की। प्रारम्भ में आपने नृत्योदय नृत्य अकादमी की कौशल्या से सीखा। इस अकादमी की स्थापना के० सुब्रमण्यम् ने उन नृत्य प्रतिभाओं के लिए की थी, जो नृत्य सीखना चाहती हैं, लेकिन जिनके पास धन नहीं है। इस प्रकार इस अकादमी द्वारा सभी को निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाने लगी। बाद में पद्मा सुब्रमण्यम् ने मैलापुर गौरी अम्मा, दण्डायुद्ध पाणि पिल्लै और बजूबुर रमैया पिल्लै से नृत्य सीखा। माता, बहन नीला, ननद श्यामला बाल कृष्णन

इत्यादि संगीतकारों के बीच पद्मा को पूरा संगीतमय वातावरण उपलब्ध हुआ। अतः इनके नृत्य के साथ सदैव पारिवारिक व्यक्तियों का संगीत सहयोग मिलता रहा।

पद्मा सुब्रमण्यम् ने मद्रास विश्वविद्यालय से संगीत में एम० ए० किया। 'भारतीय नृत्य और मूर्ति कला में 'करण' विषय में अन्नामलाई यूनिवर्सिटी चिदम्बरम् से सन् १९७९ में आपने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। मीनाक्षी कल्याणम् नृत्य नाटिका में उन्होंने तत्सम्बन्धी ज्ञान का प्रयोग करते हुए नृत्य रचनाएँ प्रस्तुत कीं, जिन्हें सर्वत्र सराहा गया, लेकिन परम्परावादी गुरुओं ने उसका विरोध किया। पद्मा की रचनात्मक प्रतिभा ने भरतनाट्यम् को नई दिशा प्रदान की, आपने 'भरताज़ आर्ट दैन एण्ड नाउ' नामक अँग्रेजी पुस्तक का निर्माण किया, अनेक नृत्य-नाटिकाओं में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का उपयोग किया। पद्मा सुब्रमण्यम् से सम्बन्धित दो वृत्तचित्रों का निर्माण भी हो चुका है।

□ □ □

पद्मिनी रवि

बंगलौर में स्थापित भरतनाट्यम् की वज़ुवूर शैली की प्रख्यात नृत्यांगना पद्मिनी रवि ने वज़ुवूर रमैया पिल्लै से नृत्य की शिक्षा ग्रहण की। वज़ुवूर पद्धति से सम्बन्ध रखने वाले गुरु के० जे० सरस से भी आपने सीखा। विवाह के पश्चात् आप बंगलौर में स्थापित हो गईं। सन् १९७९ में वहाँ आपने 'प्रधान डांस सेन्टर' की स्थापना की। अपनी सैकड़ों छात्राओं के साथ नृत्य की प्रस्तुति ने उन्हें कर्नाटिक में सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया। देश-विदेश में अपनी अनेक आकर्षक और कलात्मक नृत्य प्रस्तुतियों के द्वारा पद्मिनी ने अच्छा यश प्राप्त किया है।

□ □ □

पद्मिनी रामचन्द्रन

नायर परिवार में जन्मी पद्मिनी का बचपन त्रिवेन्द्रम् के पूजापुरा में स्थित मलय कॉटेज में व्यतीत हुआ। घर में संगीत और नृत्य के विशिष्ट गुरुओं का आगमन रहने से आपके अन्दर भी कला के संस्कार जाग उठे। आपकी चाची ने उनकी रुचि देखकर कथकली के महान गुरु गोपीनाथ के पास भेज दिया। आठ वर्ष की अल्पायु में त्रिवेन्द्रम् में आपने अरंगेत्रम् प्रस्तुत किया। गुरु टी० के० महालिंगम्

पिल्लै, वजुवूर रमैय्या पिल्लै तथा एस० के० रामेश्वरन से भी आपने भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की।

सन् १९४४ में पद्मिनी ने अपनी बहन ललिता और रागिनी के साथ सम्मिलित होकर नृत्य के कार्यक्रम प्रस्तुत करना शुरू कर दिया। इस ग्रुप को 'त्रावणकोर सिस्टर्स' के नाम से खूब प्रसिद्धि मिली। प्रख्यात नर्तक उदयशंकर ने इनकी कलात्मक प्रतिभा को आँककर इन्हें अपनी फ़िल्म 'कल्पना' के लिए अनुबंधित कर लिया। तमिल फिल्म 'मणमागल' के बाद पद्मिनी को अनेक तमिल तथा हिन्दी फ़िल्मों में काम करने का अवसर मिला, जिनमें 'जिस देश में गंगा बहती है', उल्लेखनीय है। फ़िल्मी व्यस्तता के कारण आप मंचीय कार्यक्रमों को अधिक समय नहीं दे पाईं।

सन् १९६१ में पद्मिनी का विवाह हो गया और वे अमेरिका चली गईं। अपने नृत्य केन्द्र के द्वारा वहाँ आपने भरतनाट्यम् का यथेष्ट प्रचार-प्रसार किया है। आपकी पुरानी शिष्याओं में ऋचा शर्मा और दीप्ति नवल ने भी अपने-अपने क्षेत्र में अच्छा नाम कमाया। सन् १९७४ में आपने बँगलौर में 'नाट्य प्रिय' संस्था को जन्म दिया, जिसने अनेक मेधावी नर्तक प्रदान किये। सन् १९९६ ई० में कर्नाटक की नृत्यकला अकादमी से आपको 'शान्थल-अवार्ड' प्राप्त हुआ। आप कर्नाटिक सरकार के भरतनाट्य एजूकेशन बोर्ड की अध्यक्षा भी रही हैं।

□□□

पद्मिनी राव

पुन्नैया ललित कला अकादमी बंगलौर की संस्थापक श्रीमती पद्मिनी राव ने तंजौर के गुरु के० पी० किट्टप्पा पिल्लै से नृत्य और नट्टुवंगम की शिक्षा ग्रहण की। इनके अतिरिक्त आपने लीला रामनाथन, पद्मभूषण डॉ० के० वैंकट लक्ष्मम्मा तथा कलानिधि नारायणन से भी शिक्षा ग्रहण की और कुचिपुड़ी नृत्य कोरड़ा नरसिंहराव से सीखा। अल्प समय के लिए मायाराव के अधीनस्थ रहकर आपने नृत्य रचना का ज्ञान प्राप्त किया। सरकारी तथा निजी छात्रवृत्तियों को प्राप्त करके पद्मिनीराव ने भारत तथा यूरोप में नृत्य-कार्यक्रम प्रस्तुत करके अच्छा यश अर्जित किया। रंगमंच तथा फ़िल्मों के लिए भी आपने अनेक नृत्य नाटिकाओं की रचना की है। 'नवसंधि नृत्य' आपको अपने गुरु से अपनी विशिष्ट प्रतिभा के कारण प्राप्त हुआ।

'जावलीज़ ऑफ़ चिन्नैया' और 'अडवूज़ इन भरतनाट्यम्' ग्रन्थों की रचयिता पद्मिनी राव नृत्यगुरू के रूप में गत अनेक वर्षों से कार्यरत हैं। विभिन्न संस्थाओं से सम्बद्ध रहकर आप एक अनुभवी सचिव, परीक्षक और अधीक्षक के रूप में स्थापित हैं। पद्मिनी राव को जिन पुरस्कारों से विभूषित किया गया, उनमें 'सर्वश्रेष्ठ भरतनाट्यम् गुरु', 'कर्नाटक कलातिलक', 'नाट्यकला-सरस्वती' और 'नाट्यकला चतुर' उल्लेखनीय हैं।

□□□

गीता चन्द्रन

पद्मिनी राव

मल्लिका साराभाई

जयलक्ष्मी ईश्वर

पारुल शाह

प्रोफ़ेसर पारुल शाह का जन्म ११ जनवरी सन् १९५२ में हुआ था। भरतनाट्यम् के क्षेत्र में विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त करते हुए आपने गुजरात के रास नृत्य पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। शैक्षणिक योग्यताओं में आपने भौतिक विज्ञान में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करके एल० एल० बी० की उपाधि प्राप्त की। भरतनाट्यम् की विशेष शिक्षा का श्रेय आप अपनी गुरु श्रीमती अंजलि मेड़ (१९२८-१९७९) को देती हैं, जो रुक्मिणी अरुण्डेल की पहली और मुख्य शिष्याओं में से थीं। श्रीमती अंजलि बम्बई में नाम करके बड़ौदा की एम० एस० यूनिवर्सिटी के ललितकला संकाय की प्रमुख विभागाध्यक्ष हो गई थीं। गुजराती भाषा में नृत्य से सम्बन्धित दो ग्रन्थ भी अंजलि बेन ने लिखे थे।

तीन सौ वर्ष पुरानी 'कुरवंजी नृत्य-नाट्य' की परम्परा को सुरक्षित रखने में पारुल शाह ने अपनी गुरु के साथ पूरा सहयोग किया। सन् १९७७ में सौराष्ट्र की इस कीर्तिमयी परम्परा को बड़ौदा में आपने ही सबसे पहले प्रस्तुत किया। बाद में आपके प्रयत्न से पूरे देश में कुरवंजी का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ और उसी के कारण गुजरात में भरतनाट्यम् के प्रति अनुराग जगा। पारुल शाह को एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भरतनाट्यम् की नृत्यांगना, नृत्य रचयिता, गुरु और शोधकर्त्ता के रूप में जाना जाता है। 'सिंगार मणि', 'महाकाल संगीत रत्न' के अतिरिक्त 'दस उच्च विभूतियों' एवं 'वर्ष की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी' के रूप में उपाधि-प्राप्त पारुल शाह आकाशवाणी, दूरदर्शन तथा एम० एस० यूनिवर्सिटी से जुड़ी रहकर नृत्य के क्रियात्मक एवं शास्त्रीय पक्षों पर नये प्रयोग, सेमिनार और मंच प्रदर्शन के प्रति समर्पित हैं।

□ □ □

पार्वती कुमार

नृत्य-शिक्षक एवं नृत्य-निर्देशक पार्वतीकुमार का जन्म सन् १९२१ में महाराष्ट्रीय परिवार में हुआ। बचपन से ही पार्वतीकुमार में नर्तक बनने की तीव्र उत्कंठा थी और उन्होंने कथक, कथकलि तथा बम्बई में चन्द्रशेखर के सान्निध्य में भरतनाट्यम् का अध्ययन कर सन् १९४७ में आपने मद्रास जाकर देवदासी M. D. Gori से अभिनय की उच्च शिक्षा प्राप्त की। नृत्य-कला के प्रति पूर्ण निष्ठा के कारण पार्वतीकुमार आज इन विशुद्ध शास्त्रीय नृत्य-प्रणालियों के सम्माननीय गुरु हैं। उनकी पत्नी सुमति भी अच्छी नृत्यांगना हैं।

पार्वतीकुमार शास्त्रीय नृत्य तक ही सीमित नहीं रहे, बल्कि सन् १९४३ से उन्होंने नृत्यनाटिका को रूप देने का कार्य भी हाथ में लिया और 'रिद्म आफ कल्चर', 'देख तेरी बम्बई', 'कृष्णलीला' और 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' जैसी प्रसिद्ध नृत्य-नाटिकाओं का निर्देशन किया। 'कृष्णलीला' और 'देख तेरी बम्बई' पेरिस में भी पेश की गईं। उन्होंने बालकों के लिए नृत्य-नाटिका 'सोना और सात बौने' और 'बिल्ली मौसी की फजीहत' भी तैयार की। 'भारत की कहानी' और 'बाई १९५१' इनकी ही कृतियाँ हैं। गत कुछ वर्षों में उन्होंने फ़िल्मों में भी नृत्य-निर्देशन किया।

श्री पार्वतीकुमार ने रसभाव-सिद्धान्त के बारे में अनुसंधान किया और अभी वे महाराष्ट्र में भरतनाट्यम् नृत्य के बारे में अनुसंधान कर रहे हैं।

□□□

प्रतिभा प्रहलाद

प्रतिभा प्रहलाद ने भरतनाट्यम् की प्रारम्भिक शिक्षा बंगलौर के यू० एस० कृष्णराव तथा उनकी पत्नी चन्द्रभागा देवी से प्राप्त की और बाद में गुरु वी० एस० मुत्तुस्वामी पिल्लै से सीखा। अभिनय की विशिष्ट शिक्षा आपने कलानिधि नारायणन और कुचिपुड़ी नृत्य की शिक्षा गुरु वेम्पति चिन्नासत्यम् से प्राप्त की। विभिन्न देशों में नृत्य के कार्यक्रम प्रस्तुत करके प्रतिभा ने अच्छा नाम कमाया और अपने गुरु की पद्धति को विकसित करते हुए भरतनाट्यम् में कुछ नए प्रयोग भी किए।

प्रतिभा नृत्य रचयिता तथा नृत्य-संयोजक के रूप में भी विख्यात हैं। अपनी संस्था 'प्रसिद्ध फाउण्डेशन' के माध्यम से आपने नृत्य सम्बन्धी अनेक सेमिनार, सभाएँ और मंचीय कार्यक्रम प्रस्तुत करके विशेष लोकप्रियता प्राप्त की। जन-सम्पर्क के क्षेत्र में एम० ए० करके प्रतिभा ने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भरनाट्यम् की कला का प्रचार-प्रसार करके अभिनन्दनीय कार्य किया है।

□□□

फ्रांसिस बारबोजा

फ्रांसिस बारबोजा को बचपन से ही नृत्य में रुचि थी। आप एक महान नर्तक बनने का स्वप्न देखते थे। 'यक्षगान' के कार्यक्रम देखने में आपको विशेष आनन्द प्राप्त होता था। अपनी इच्छा को साकार करने के लिए आपने प्रसिद्ध गुरु मध्यस्त द्वारा भरतनाट्यम् की शिक्षा लेना प्रारम्भ किया और बाद में अनेक गुरुओं के निर्देशन में सीखते रहे, जिनमें कुबेरनाथ तंजौरकर, गुरु राधाकृष्णन, प्री० सी० वी० चन्द्रशेखर, श्रीमती अंजलि मेढ़, मिस नरगिस के० और प्रदीप बरुआ के नाम उल्लेखनीय हैं। एम० एस० यूनिवर्सिटी बड़ौदा से आपने भरतनाट्यम् में प्रथमस्थ श्रेणी प्राप्त की। अनेक नृत्य नाटिकाओं और भाषण नृत्य प्रदर्शनों द्वारा फ्रांसिस बारबोजा ने देश-विदेश में पर्याप्त ख्याति अर्जित की। ईसाई धर्म के पादरी के रूप में कार्यरत रहते हुए भी आपने भरतनाट्यम् की कला को प्रचारित तथा प्रसारित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। भरतनाट्यम् को आप ईसाई धर्म का प्रेम और सद्भावना देने वाली कला समझते हैं। 'क्रिश्चियनिटी एण्ड इंडियन डान्स फार थीसिस' लिखकर उन्होंने सितम्बर सन् १९८३ में कला और धर्म पर आयोजित विश्व सेमिनार में भाग लिया। आपने बम्बई रहकर भरतनाट्यम् पर अनेक लेख और 'Christianity in Indian Dance Forms' नामक पुस्तक लिखी है।

जिस प्रकार क्रिश्चियन होते हुए फ्रांसिस बारबोज़ा ने भरतनाट्यम् अपनाया, उसी प्रकार मद्रास के मुस्लिम परिवार में जन्मे ज़ाकिर हुसैन ने भी अल्पायु में अपने भरतनाट्यम् से लोगों को स्तम्भित कर दिया है।

□ □ □

बाल सरस्वती

बाल सरस्वती की प्रतिभा ऐसे उद्यान में विकसित हुई, जो दिव्य सुगन्ध से पूरित था। सदियों तक यह परिवार कर्नाटक-संगीत का गौरव-स्तम्भ रहा। बाल सरस्वती के छह पीढ़ी पूर्व दादी पपाम्मल तंजोर-दरबार की संगीतकार एवं नर्तकी थीं। पपाम्मल की पुत्री रुक्मिणी तंजोर-दरबार की गायिका थीं। रुक्मिणी की पुत्री कामाक्षी नृत्यांगना थीं। कामाक्षी के पुत्र पुन्नुस्वामी और पुत्री सुन्दरम्मल संगीतकार थे। सुन्दरम्मल धनम् वीणा-वादक थीं और उनकी पुत्री जयम्मल भी संगीतकार थीं और उन्हीं की पुत्री बाल सरस्वती हैं, जिनका जन्म १३ मई १९१८ को हुआ।

संगीत उनकी रगों में था। बाल सरस्वती को शिक्षा चार वर्ष की आयु में स्वर्गीय कण्डप्पन से मिली। कण्डप्पन विख्यात तंजोर-बंधुओं में से एक—श्री चिन्नैया के प्रपौत्र थे। बाल सरस्वती का प्रथम नृत्य-प्रदर्शन (अरंगेट्रम) अमनाश्री अम्मन मन्दिर (कांचीवरम्) में हुआ। बाल सरस्वती को गौरी अम्मल और चिन्नैया नायडू का पथ-प्रदर्शन भी मिला। बाल सरस्वती ने कुचिपुड़ि-वेदान्तम् लक्ष्मीनारायण शास्त्री से अभिनय और विस्तृत प्रदर्शन का अध्ययन किया।

'बाला' ने भरतनाट्यम् के सजीव चमत्कार से विश्व को अवगत करा दिया। सन् १९३१ में पूर्व-पश्चिम संगीत सम्मेलन, टोक्यो में नृत्य पेश किया। सन् १९६२ में उन्होंने अमरीका की यात्रा की। बाल सरस्वती अकादमी-पुरस्कार एवं 'पद्मभूषण' के अलंकरण से भी विभूषित हुईं। 'बाला' के नृत्यों से उत्तर-भारत में भरतनाट्यम् कला-संस्कृति के अंग के रूप में प्रतिष्ठापित हुआ। 'बाला' भरतनाट्यम्, विशेषतया सात्त्विक अभिनय, की प्रतीक थीं।

पचास वर्षों तक नृत्य-मंच पर छाई रहनेवाली अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त 'बाला' ९ फरवरी १९८४ को केवल ६६ वर्ष की आयु में दिवंगत हो गईं। इनकी पुत्री लक्ष्मी नाइट आजकल अमेरिका रहकर भरतनाट्यम् का प्रचार-प्रसार कर रहीं हैं।

□□□

मंजरी चन्द्रशेखर

मंजरी चन्द्रशेखर पण्डनल्लूर शैली का प्रतिनिधित्व करने वाली श्रेष्ठ नृत्यांगनाओं में गिनी जाती हैं। आपने अपने पिता और माता गुरु सी० वी० चन्द्रशेखर तथा जया चन्द्रशेखर से नृत्य की शिक्षा प्राप्त की। परम्परागत और क्रमबद्ध ढंग से नृत्य का अभ्यास करके आपने अपने पिता द्वारा रचित प्रमुख नृत्य नाटिकाओं में भाग लिया और फिर बड़ौदा में स्थापित हो गईं। 'नृत्यश्री' नामक अपनी संस्था से जुड़कर आपने नई-नई नृत्य नाटिकाओं का सृजन और मंचन किया। कुछ समय पश्चात आप दिल्ली आ गईं और वहाँ भरतनाट्यम् की शिक्षिका के रूप में कुछ वर्षों तक कार्यरत रहीं। अपने पिता के नृत्य ट्रुप (ग्रुप) में सम्मिलित होकर आपने अनेक देशों का भ्रमण करके भरतनाट्यम् के क्षेत्र में विशेष कीर्ति प्राप्त की और बाद में चेन्नई (मद्रास) को अपना कार्य क्षेत्र बना लिया।

□□□

बाला सरस्वती

रुक्मिणी देवी

यामिनी कृष्णामूर्ति

प्रतिभा प्रहलाद

मल्लिका साराभाई

भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० विक्रम साराभाई और उनकी पत्नी प्रसिद्ध नृत्यांगना मृणालिनी साराभाई की पुत्री मल्लिका साराभाई ने नृत्य और अभिनय के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। गुजराती फ़िल्म 'मैना गुर्जरी' में अभिनय के लिए उन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार प्राप्त हुआ। मनोविज्ञान, मैनेजमेंट, साइकलौजी, मॉडलिंग, सम्पादन, रंगमंचीय अभिनय, हिन्दुस्तानी और कर्नाटिक कण्ठ संगीत आदि विविध विषयों के अध्ययन तथा बैडमिंटन जैसे खेलों में रत रहते हुए मल्लिका साराभाई ने नृत्य को सर्वोच्च स्थान दिया। आपकी माता द्वारा स्थापित दर्पण अकादमी में आपने सहनिर्देशक के रूप में कार्य करते हुए डॉक्यूमेंट्री फ़िल्मों के निर्माणार्थ चित्रकाठी नामक फ़िल्म सम्भाग का कार्य शुरू किया। पुरुलिया के छऊ नृत्य और अन्य लोकनृत्यों के उत्थान के प्रति आपकी रुचि सदैव से बनी रही। आपने एशिया में पहला 'इन्टरनेशनल फॉक फेस्टिवल महोत्सव,-८४' आयोजित किया, जिसमें विभिन्न देशों के २०० नर्तकों ने भाग लिया।

१४ वर्ष की उम्र में मल्लिका ने नृत्य जगत में पैर रखा। अपनी माता श्रीमती मृणालिनी साराभाई और पथगुणी रामास्वामी से भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की। गुरु सी० आर० आचार्यलु से कुचिपुड़ी नृत्य सीखा और संगीत नाटक अकादमी सहित अन्य सम्मान प्राप्त किए। एम० ए० और पी-एच० डी० उपाधियों के बाद मल्लिका साराभाई नृत्य, अभिनय, प्रोडक्शन, प्रकाशन इत्यादि कार्यों में अधिक व्यस्त हो गईं। सन् १९८२ में श्री विपिन शाह के साथ उनका विवाह हो गया, जो अमेरिका में प्रकाशन व्यवस्था से सम्बन्धित थे। मल्लिका ने उनके साथ मिलकर अहमदाबाद में 'मैपिन' नामक पुस्तक प्रकाशन संस्थान शुरू किया। मल्लिका की प्रतिभा को निखारने और प्रोत्साहित करने में उनके माता पिता व पति तीनों का हाथ रहा। आपका वैवाहिक जीवन अधिक स्थिर न रह सका, लेकिन मल्लिका की विविध व्यस्तताओं ने उन्हें अपने पथ पर आरूढ़ रखा। मल्लिका साराभाई ने पीटर ब्रुक के 'महाभारत' (फ्रेंच व अँग्रेजी) में द्रौपदी का अभिनय करके अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी बहुत यश अर्जित किया। सन् १९७७ में पेरिस में १५ वें अन्तर्राष्ट्रीय नृत्य समारोह में मल्लिका ने भारत का प्रतिनिधित्व किया और उन्हें विश्व की २२ कला संस्थाओं के ४०० नर्तकों में से सर्वश्रेष्ठ एकाकी नर्तक के रूप में चुना गया, जिसको पाने वाली आप सबसे कम उम्र की एशियाई नर्तकी थीं, जिन्हें 'गोल्डन स्टार अवार्ड' प्राप्त हुआ। मल्लिका साराभाई की प्रतिभा, सौन्दर्य, योग्यता और अपने क्षेत्र में कर्मठता के कारण उन्हें सराहा गया।

□ □ □

माया कुलकर्णी

माया कुलकर्णी ने बम्बई में गुरु पार्वतीकुमार से भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की। बाद में दण्डायुधपाणि की शिष्या जया लक्ष्मी अल्बा से शिक्षा ली। आपने न्यूयार्क में अर्थशास्त्र से एम० ए० करते हुए भरतनाट्यम् के अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत किए। शाकुन्तलम् नृत्य नाटिका की नृत्य रचना भी आपने की, जिसका अमेरिकी दर्शकों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। कलानिधि नारायणन और गुरु किट्टप्पा पिल्लै से नृत्य की शिक्षा लेकर आपने देश-विदेश में भरतनाट्यम् का व्यापक प्रचार-प्रसार किया। भरतनाट्यम् के संगीत में उत्तर भारतीय संगीत का समावेश करके आपने एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। माया कुलकर्णी बाद में न्यूयार्क (अमेरिका) जाकर बस गईं।

□□□

मालविका सरुक्कई

मालविका सरुक्कई ने भरतनाट्यम् की शिक्षा बम्बई में राजराजेश्वरी कला मन्दिर के विशिष्ट गुरुओं से प्राप्त की। आपका सर्वप्रथम प्रदर्शन सन् १९७२ में हुआ, जिसने कला प्रेमियों और कला समीक्षकों का ध्यान आकर्षित किया। इसके बाद मालविका मद्रास चली गईं और वहाँ स्वामी मलाई राजरत्नम् पिल्लै से अपनी शिक्षा कायम रखी तथा कलानिधि नारायणन से अभिनय में दक्षता प्राप्त की। भरतनाट्यम् के प्रचार प्रसार में मालविका सरुक्कई ने पर्याप्त योगदान दिया है और आज वे इस विधा की एक शीर्षस्थ कलाकार के रूप में जानी जाती हैं।

□□□

मीनाक्षी चितरंजन

मीनाक्षी ने भरतनाट्यम् की शिक्षा पण्डनल्लूर शैली के गुरु चोकलिङ्गम् पिल्लै और उनके पुत्र सुब्बारामा पिल्लै से प्राप्त की। आपने सन् १९६५ में नृत्य के मंच पर पदार्पण किया और फिर देश तथा विदेशों में अपने प्रदर्शनों द्वारा अच्छा यश प्राप्त किया। आपने अपनी विशिष्ट प्रतिभा के कारण जो सम्मान अर्जित किए, उनमें 'नाट्यकला भूषणम्', 'कलाईमामणि' 'नाट्य सेल्वम्' तथा 'नृत्य चूड़ामणि' उल्लेखनीय हैं। सन् १९९१ में मीनाक्षी ने चेन्नई (मद्रास) में नृत्य शिक्षण के लिए 'कलादीक्षा' नामक संस्था की स्थापना की। अपने नृत्य में पण्डनल्लूर शैली का सौन्दर्य प्रतिबिम्बित करने में आप पूरी आस्था रखती हैं।

□□□

मीनाक्षी शेषाद्रि

मीनाक्षी अपनी मां की तीसरी संतान हैं, जिनका जन्म सिन्दरी (बिहार) में हुआ था। आपका वास्तविक नाम शशिकला है।

बाल्यकाल से ही मीनाक्षी की प्रतिभा उजागर होने लगी थी। आपने अपनी माता सुन्दरी शेषाद्रि और पण्डनल्लूर चोकलिंगम् पिल्लै से भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की। चार वर्ष की आयु में ही अरंगेत्रम् प्रस्तुत करके आपने लोगों को चमत्कृत कर दिया।

मीनाक्षी ने कुचिपुड़ी नृत्य की शिक्षा जयराम राव और वेम्पत्ति चिन्नासत्यम् से ली। इसके अतिरिक्त ओडिसी और कथक की शिक्षा भी आपने श्रेष्ठ गुरुओं के निर्देशन में प्राप्त की। अपनी माता से मीनाक्षी ने कर्नाटिक संगीत और प्रेमादेवी तथा उस्ताद हिलाल अहमद खाँ से हिन्दुस्तानी संगीत सीखा। 'प्राचीन भारतीय सभ्यता' जैसे विषय पर आपने स्नातकोत्तर की डिग्री हासिल की।

फ़िल्म क्षेत्र में अभिनय करते हुए मीनाक्षी शेषाद्रि ने सभी को अपनी कला का दिग्दर्शन कराया, लेकिन मंच के कार्यक्रमों को आपने हमेशा वरीयता दी। फ़िल्म और रंगमंच के क्षेत्र में आपने देश-विदेश में अपूर्व यश अर्जित किया। विवाह के बाद आपको अधिकांश रूप से अमेरिका रहना पड़ रहा है, लेकिन नृत्य के प्रति वे सदैव समर्पित रहने का संकल्प ले चुकी हैं।

□ □ □

मीनाक्षी सबानायकम्

मीनाक्षी सबानायकम् (आजकल मीनाक्षी चितरंजन) ने चोक्कलिंगम् पिल्लै के पुत्र पण्डनल्लूर सुब्बरायन पिल्लै से भरतनाट्यम् सीखा। इसके अतिरिक्त आपने शास्त्रीय कर्नाटिक संगीत सीखकर कण्ठ संगीत में भी दक्षता प्राप्त की। इस प्रकार मद्रास को अपना कार्य क्षेत्र बनाकर आप भरतनाट्यम् के प्रति समर्पित होकर कार्यरत हैं।

□ □ □

मृणालिनी साराभाई

मृणालिनी साराभाई का जन्म केरल प्रान्त के एक ब्राह्मण-वंश में हुआ था। यह प्रान्त कथकलि नृत्य का उद्गम-स्थान माना जाता है। वर्तमान शिक्षित नर्तकियों में आपका प्रमुख स्थान है। बहुत-कुछ सीखने और ख्याति प्राप्त करने के बाद भी अभी तक आप कुछ-न-कुछ सीखने में ही संलग्न रहती हैं।

सर्वप्रथम बारह वर्ष की आयु में आपकी माता जी ने आपको उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से स्विट्ज़रलैंड भेज दिया था। वहाँ आपने रशियन बैले तथा ग्रीक डांस सीखा। उसके बाद आप स्वदेश लौट आईं। यहाँ गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'शान्ति-निकेतन' में लगभग तीन वर्षों तक आपने भारतीय नृत्यों की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् गुरुदेव के साथ आपने भारत के सभी प्रमुख स्थानों का भ्रमण करते हुए नृत्य-प्रदर्शन भी किए। इस लम्बी यात्रा से आपको उत्तम ख्याति एवं सम्मान की प्राप्ति हुई। सन् १९३९ ई० में आपने अमेरिका के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में कुछ दिनों के लिए जावा में ठहर गईं और वहाँ की नृत्य-कला का अध्ययन करने में संलग्न हो गईं। इसी में कई मास गुजर गए। अध्ययन की भूख बढ़ती ही चली गई। न्यूयार्क पहुँचने के पश्चात् आपने 'अमरीकन अकादमी ऑफ आर्ट' में प्रविष्ट होकर डिप्लोमा प्राप्त किया। इसी बीच आपको अमरीका की अन्तरिम यात्राएँ करने का संयोग प्राप्त हुआ। इन यात्राओं में आपको पर्याप्त ख्याति और विभिन्न अनुभव मिले। अमेरिका से भारत लौटकर आपने बंगलौर-स्थित 'श्री रामगोपाल शिक्षणालय' में प्रवेश किया और फिर अपनी अनेक संगीत-यात्राओं में नृत्य-कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इस प्रकार इस तपस्विनी कलानेत्री ने अपने जीवन में नृत्य-कला पर अद्वितीय अधिकार प्राप्त कर नृत्य-जिज्ञासुओं के लिए एक ठोस और ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत कर दिया। श्रीमती मृणालिनी साराभाई के निर्देशन में अहमदाबाद की एक नृत्य-संस्था पूरी तौर से कार्यरत है।

□□□

मोहन खोकर

मोहन खोकर का जन्म क्वेटा (जो आजकल पाकिस्तान में है) में ३० दिसम्बर १९२४ को हुआ था। आपने पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर से बी० ए० किया और लाहौर में ही पंजाब घराने के प्यारेलाल से कथक की शिक्षा ली। मद्रास के कला क्षेत्र में आपने भरतनाट्यम्, कथकलि की शिक्षा कलामण्डलम् माधवन, अम्बुपाणिकर तथा उदयशंकर तकनीकि की शिक्षा कामेश्वर और जोहरा कमलेश्वर सेहगल से प्राप्त की। सन् १९५० ई० में मोहन खोकर बड़ौदा की महाराजा रायाजीराव यूनिवर्सिटी के नृत्य विभाग के प्रमुख नियुक्त हुए और वहाँ १९६४ तक

कार्यरत रहकर नृत्य के विद्यार्थियों को लाभान्वित किया, बाद में आपको संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली में नृत्य के विशेष अधिकारी का पदभार सँभालना पड़ा तथा बाद में निदेशक का कार्यभार सँभालना पड़ा। भारत सरकार की ओर से सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल के प्रमुख के रूप में अनेक देशों की यात्रा की। अनेक संस्थाओं में उन्होंने नृत्य सम्बन्धी प्रशिक्षण शिविर और व्याख्यान माला आयोजित कीं।

सन् १९७९ में मोहन खोकर को रवीन्द्र भारती यूनिवर्सिटी कलकत्ता का विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्त किया गया। रेडियो, दूरदर्शन और भारत की विशिष्ट शिक्षा संस्थाओं में आपको नृत्य का समीक्षक, परीक्षक और सलाहकार नियुक्त किया गया। सन् १९६० के लगभग आप 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' नई दिल्ली में नृत्य समीक्षक रहे। आपने विभिन्न प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के लिए ५०० से अधिक लेख लिखे और भारतीय नृत्य पर पाँच प्रमुख ग्रन्थों का निर्माण किया, जिनके नाम हैं— ट्रेडीशंस ऑफ़ इण्डियन क्लासीकल डांस : अडवूज़; हिज़ डांस, हिज़ लाइफ़; नर्तक उदयशंकर की जीवनी; दि स्प्लेण्डोज़ ऑफ़ इण्डियन डांस, डांसिंग फॉर दैम सैल्वस तथा फोक, ट्राइबल और रिचुअल डांस ऑफ इण्डिया। नृत्य सम्बन्धी लगभग २० हजार फ़ोटो ग्राफ्स उन्होंने खींचे और नृत्य के विभिन्न गुरुओं तथा विद्वानों से सम्बन्धित भेंट-वार्ताओं की लगभग ३०० घण्टे रिकार्डिंग की। मोहन खोकर के भारतीय नृत्य सम्बन्धी संग्रह को विश्व का सबसे बड़ा संग्रह माना जाता है।

अनेक सम्मानों से विभूषित मोहन खोकर ने अपना सम्पूर्ण जीवन नृत्य को को समर्पित किया और चेन्नई (मद्रास) में ७४ वर्ष की अवस्था में आपका निधन हुआ।

□□□

यामिनी कृष्णमूर्ति

भारत के स्वातन्त्र्योत्तर सांस्कृतिक पुनरुज्जीवन के परिप्रेक्ष्य में यामिनी कृष्णमूर्ति आज परम्परागत शास्त्रीय नृत्य भरतनाट्यम् की श्रेष्ठ नर्तकियों में हैं। सन् १९५७ में हुए उनके प्रथम कार्यक्रम के समय से ही उन्हें प्रसिद्धि मिली। नृत्य-मुद्राओं की परिपूर्णता, अंगशुद्धि, विशिष्ट व प्रभावकारी अभिव्यञ्जना और अद्‌भुत लयज्ञान तथा प्रस्तुतीकरण की अनूठी कला ने इस नृत्यांगना को उच्च शिखर पर पहुँचा दिया है।

यामिनी सन् १९५० से पाँच वर्षों तक 'कलाक्षेत्र' में रहीं और श्रीमती रुक्मिणीदेवी अरुण्डेल के निर्देशन में भरतनाट्यम् सीखा। बाद में यामिनी को सरकारी छात्रवृत्ति मिली, जबकि उन्होंने बाल सरस्वती के गुरु कांजीवरम् एलप्पा पिल्लै और गुरु किटप्पा पिल्लै (तंजौर) से भरतनाट्यम् सीखा। उन चार वर्षों में यामिनी ने वेदान्तम् लक्ष्मीनारायण शास्त्री, पशुपति वेणुगोपाल कृष्ण शर्मा तथा अन्यों से कुचिपुड़ि नृत्य सीखा।

उसके पश्चात् यामिनी बराबर आगे बढ़ती गईं। उन्होंने भारत-भर का भ्रमण किया। सन् १९५८-५९ में वे दिल्ली में रहीं, जबकि उन्होंने सभी अन्तर्राष्ट्रीय समारोहों में नृत्य पेश किया। उन्होंने पाकिस्तान, नेपाल, बर्मा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड तथा यूरोपीय देशों की यात्रा की। यामिनी के पिता श्री एम० कृष्णमूर्ति संस्कृत-विद्वान् हैं और यामिनी के पथ-प्रदर्शक भी।

कुचिपुड़ि नृत्य में भी यामिनी का योगदान उल्लेखनीय है। यामिनी ने गुरु पंकज चरणदास से उड़ीसी नृत्य भी सीखा और 'पञ्चकन्या' नृत्य पेश किया।

भारत सरकार ने कुमारी यामिनी कृष्णमूर्ति को सन् १९६८ में 'पद्मश्री' के अलंकरण से विभूषित किया। □□□

यू० एस० कृष्णराव और चन्द्रभागा देवी

भरतनाट्यम् के प्रति पूर्ण समर्पित गुरु कृष्णराव ने मैसूर शैली के भरतनाट्यम् की प्रारम्भिक शिक्षा कोलार पुट्टप्पा से प्राप्त की और बाद में पण्डनल्लूर मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै के निर्देशन में पण्डनूर शैली में पारङ्गत हुए। आपने गुरु कुञ्जुकुरुप से कथकलि सीखा। सन् १९७२ से सन् १९७७ तक यू० एस० कृष्णराव बंगलौर यूनिवर्सिटी में नृत्य के ऑनरेरी शिक्षक रहे। आपने विदेशों में भरतनाट्यम् के प्रदर्शन करके अच्छी ख्याति अर्जित की। नृत्य पर 'आधुनिक भरतनल्ली नृत्य काले' नामक कन्नड़ ग्रन्थ के सहयोगी लेखक रहे और प्राचीन ग्रन्थ 'लास्य रञ्जन' का अँग्रेजी भाषान्तर अपनी पत्नी चन्द्रभागा देवी के साथ मिलकर किया। आपने अँग्रेजी में भरतनाट्यम् से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द की 'डिक्सनरी' भी तैयार की। १९८८ में कृष्णराव और उनकी पत्नी को केन्द्रीय नाटक संगीत अकादमी का विशिष्ट गुरुओं को दिया जाने वाला सम्मान (अवार्ड) प्राप्त हुआ।

चन्द्रभागा देवी ने नाट्यकलानिधि पण्डनल्लूर मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै से भरतनाट्यम् की शिक्षा प्राप्त की। अपने पति यू० एस० कृष्णराव के साथ मिलकर आपने अनेक नृत्य नाटिकाओं की रचना की, भाषण प्रदर्शन प्रस्तुत किए और देश-विदेशों में कार्यक्रम प्रस्तुत करके अनेक शिष्यों को प्रशिक्षित किया।

□□□

रमा वैद्यनाथन

नई दिल्ली के गणेश नाट्यालय की संस्थापक रमावैद्यनाथन का स्थान भरतनाट्यम् की श्रेष्ठ नर्तकियों में लिया जाता है। रमा ने अपनी प्रस्तुति द्वारा देश-विदेशों में पर्याप्त यश अर्जित किया है। आपकी प्रारम्भिक नृत्य शिक्षा यामिनी कृष्णमूर्ति द्वारा हुई और बाद में गुरु सरोजा वैद्यनाथन के निर्देशन में सीखकर अपनी कला का और अधिक विकास किया। सन् १९९९ में चेन्नई (मद्रास) में म्यूज़िक अकादमी के विख्यात समारोह में रमा को 'सर्वश्रेष्ठ नर्तकी' की उपाधि से विभूषित किया गया।

□□□

रागिनी देवी

भारतीय नृत्यों के प्रति लगाव रखने वाली अमेरिकन महिला रागिनी देवी का जन्म सन् १८९६ में अमेरिका के मिसीगन नगर में हुआ था। इनका वास्तविक नाम ऐस्तर शेरमन्द था। बचपन से ही रागिनी भारतीय नृत्यों से प्रभावित थीं। अतः किशोरावस्था में ही उन्होंने भरत के 'नाट्यशास्त्र' और नन्दिकेश्वर के 'अभिनय दर्पण' ग्रन्थों को पढ़ना शुरू कर दिया था। कथकली नृत्य के प्रति उनका विशेष लगाव था।

रागिनी देवी सन् १९३० में भारत आ गईं। गौरी अम्माल तथा बाला सरस्वती के अभिनय और कलामण्डलम् पुरप्पाद एवम् वोडियम की कला से वे बहुत प्रभावित हुईं। नृत्य के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करके उन्होंने क्रियात्मक और सैद्धान्तिक दोनों क्षेत्रों में कार्य किया। आपने भौतिक विज्ञान के विशेषज्ञ तथा स्वतन्त्रता संग्राम-सैनानी रामलाल बाजपेयी से विवाह किया। मद्रास पहुँचकर रागिनी ने प्रसिद्ध देवदासी मैलापुर गौरी अम्माल से भरतनाट्यम् सीखा। अपनी पुत्री (मद्रास में जन्मी) का नाम इन्होंने इन्द्राणी रखा, जो भविष्य में भरतनाट्यम् की प्रसिद्ध नृत्याङ्गना बनी।

रागिनी देवी ने अनेक लेखों के अलावा 'डान्स डाइलेक्ट्स ऑफ इण्डिया' और 'नाट्याञ्जलि' नामक पुस्तकें लिखी। उनकी सदैव यही इच्छा रही कि किसी भी प्रकार भारत के शास्त्रीय नृत्यों की पुनःप्रतिष्ठा हो। इस दृष्टि से उन्होंने भारत तथा विदेशों का भ्रमण करके भारतीय नृत्यों पर भाषण—प्रदर्शन आयोजित किए। कुछ समय पश्चात् वे बम्बई के निकट पूना नगर में आकर बस गईं। महाराजा त्रावणकोर द्वारा आयोजित आर्ट-फेस्टिवल में भाग लेने के लिए रागिनी देवी को

केरल जाने का अवसर मिला। वहाँ वे कवि वल्लथोल और उनके सहयोगी मुकुन्द राजा के सम्पर्क में आईं तथा कथकलि नृत्य की उस रूढ़िवादी परम्परा को तोड़कर कथकलि की पहली महिला शिष्या बनीं। केरल के कथकली जगत में यह एक क्रान्ति थी, जिसने पूरे विश्व में कथकलि का नाम प्रचलित कर दिया। रागिनी ने केरल में रहकर कथकलि का गहन अध्ययन किया और फिर उसके कार्यक्रम देने लगी। गुरु गोपीनाथ के साथ सहयोगी बनकर रागिनीदेवी ने समस्त भारत में कथकलि नृत्य के कार्यक्रम दिए। गुरु कुञ्जुकुरूप, गुरु रावुन्नी मेनन और अन्य अनेक कथकलि विद्वानों से कथकलि की गहन शिक्षा लेते हुए उन्होंने भारतीय संगीतकारों से वाद्य संगीत तथा लोकनृत्यों की शिक्षा भी प्राप्त की। इस प्रकार रागिनी देवी ने भरतनाट्यम् और कथकलि पर समान रूप से अधिकार प्राप्त करके उनका विश्वव्यापी प्रचार किया।

रागिनी देवी का कहना था कि भरतनाट्यम् भारतीय नृत्यों का सर्वश्रेष्ठ और आकर्षक प्रकार है जो हमारे वर्तमान को अतीत के साथ जोड़ने वाली एकमात्र कड़ी है। परम्परा कोई बाधा नहीं होती, बल्कि वह कला की उन्नति में सदा ही सहायक सिद्ध होती है। भारत की कलाएँ हजारों वर्षों की तपस्या और दैवी सम्पदा का परिणाम हैं। जनवरी सन् १९८२ में ८६ वर्ष की अवस्था में अमेरिका के न्यूजर्सी शहर स्थित 'एक्टर्स होम' में रागिनी देवी का निधन हुआ।

□□□

रामगोपाल

बंग-प्रदेश के ये प्रसिद्ध नृत्यकार उदयशंकर के प्रमुख शिष्य हैं। जिन दिनों रामगोपाल अपने नगर में ही नृत्य का प्रदर्शन कर रहे थे, इनकी कला से प्रभावित होकर एक अमेरिकन नर्तकी (लौमेरी) इन्हें अपने साथ जापान ले गई। वहाँ अपनी ख्याति का सिक्का बैठाकर तथा अनुभव प्राप्त करके ये स्वदेश लौटे। फिर आप स्वतन्त्र रूप से पेरिस, लन्दन, न्यूयार्क, हालीवुड आदि देशों का दौरा करके सन् १९३९ में भारत लौट आए। इन यात्राओं के बाद आपने अनुभवी कलाकारों की एक मंडली बनाकर विदेशों का भ्रमण किया। भारत-सरकार की ओर से अन्तर्राष्ट्रीय नृत्य-महोत्सव में भाग लेने आप न्यूयार्क भी गए। वहाँ से लौटने पर 'हमारा हिन्दुस्तान' नामक फिल्म में आपने शिव-ताण्डव तथा राधा-कृष्ण नृत्य का प्रदर्शन किया और भारत के प्रमुख नगरों में अपनी कला प्रदर्शित की। आपने पाश्चात्य एवं आधुनिक युग की पृष्ठभूमि में भारतीय नृत्यों का परिष्कार कर उन्हें जीवित रखा और विदेशों में भारतीय नृत्य-कला का गौरव बढ़ाया। आपकी मण्डली में मृणालिनी और शेवन्ती-जैसी कुशल नर्तकियों का विशेष योग रहा।

भारत में आपने 'रामगोपाल आर्ट एण्ड कल्चर सेन्टर' नामक एक कला-संस्था की स्थापना की है। इसमें विद्यार्थियों को भरतनाट्यम् तथा कथकलि की शिक्षा विशुद्ध रूप से दी जाती है। रामगोपाल के नृत्यों में 'धरणी-नृत्य', 'शिव-ताण्डव', 'सान्ध्य नृत्य', 'इन्द्र और शचि', 'राजपूत और प्रार्थना', 'गोधूलि-वेला' आदि विशेष आकर्षक हैं।

रामगोपाल का जन्म २० नवम्बर, १९१७ को हुआ था। छह वर्ष की अवस्था से ही आपकी नृत्य-शिक्षा आरम्भ हो गई थी। आपने दक्षिणी नृत्य, कथकलि के सर्वश्रेष्ठ आचार्य कुञ्जिकुरुप से तथा भरतनाट्यम् आचार्य मीनाक्षीसुन्दरम् पिल्लै से सीखा। इनके अतिरिक्त एलप्पा मुदालियर तथा आचार्य गौरी से भी आपने तालीम पाई। कुछ समय तक रामगोपाल ने कथक नृत्य की भी शिक्षा ग्रहण की। इस प्रकार बीस वर्ष की अवस्था में ही आप नृत्य-कला में प्रवीण होकर चमकने लगे।

आजकल आपने अपना स्थायी रहन-सहन लन्दन में कर रखा है और इंग्लैण्ड में एक विद्यालय की भाँति के सर्किल में विदेशी छात्र-छात्राओं को भारतीय शास्त्रीय नृत्य आधुनिक ढंग से सिखाते हैं। साथ ही अपने प्रदर्शनों के अतिरिक्त वहाँ के चलचित्रों में भी आप कार्य करते हैं, जिससे आपको अच्छी आय हो जाती है।

□□□

रीता देवी

बंगाल के टैगोर परिवार से सम्बन्धित रीता देवी ने भरतनाट्यम् के अतिरिक्त अन्य नृत्य पद्धतियों में भी महारत हासिल की। आपने उड़ीसा में नृत्य प्रभाकर गुरु पंकज चरण दास से ओडिसी; मद्रास में गुरु वेंगपति चिन्नसत्यम् से आन्ध्र का कुचिपुड़ी नृत्य; नाट्य कलानिधि पण्डनल्लूर चोक्कलिंगम् पिल्लै से तमिलनाडु का भरतनाट्यम्; केरल कलामण्डलम् में गुरु पी० करुणाकर पणिक्कर से कथकलि; केरल में ही कलामण्डलम् लक्ष्मी और चिन्नम्मु अम्मा से मोहिनीअट्टम्; गुरु हाउबाँम अथोम्बासिंह तथा गुरु अरम्बम याथिरबिसिंह से मणिपुरी नृत्य और रसेश्वर साइकीया तथा जतिन गोस्वामी से शास्त्रीय नृत्य सीखा।

उपर्युक्त नृत्यों में पारंगत होकर रीता देवी ने भारतीय नृत्य जगत में अपना नाम तो किया ही, लेकिन विदेशों में भी उन्हें नृत्य के एक महान स्कॉलर और कलाकार के रूप में देखा गया। उनकी कला साधना और प्रशंसा ने उन्हें भारत से छीन लिया और वे सन् १९७२ में अमेरिका स्थित न्यूयार्क यूनिवर्सिटी में नृत्य शिक्षिका के रूप में कार्यरत हो गईं।

रीता देवी ने बम्बई विश्व विद्यालय से बी० ए० किया और भरतनाट्यम् के प्रचार में अपने भाषण-प्रदर्शनों द्वारा जो योग दिया है, वह महत्वपूर्ण है।

रीता देवी कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की भतीजी की पुत्री और लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ की पुत्री हैं, जो असमी साहित्य के जनक कहे जाते हैं। इस प्रकार रीता देवी को कला और साहित्य विरासत में प्राप्त हुए। दि इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ़ फाइन आर्ट्स् मद्रास ने आपको नाट्यकला भूषणम् की उपाधि से विभूषित किया। भारतीय नृत्य जगत का दुर्भाग्य है कि रीता देवी जैसी प्रतिभा ने विदेश को अपनी कर्म भूमि बना लिया। लेकिन रीता के मन और प्राण भारत की मिट्टी में ही बसे हुए हैं और वे अपने को एक देवदासी के रूप में देखती हैं।

□ □ □

रुक्मिणी देवी अरुण्डेल

भरतनाट्यम् दक्षिण-भारत की एक पूर्ण विकसित कला है। इस नृत्य में दक्ष श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल नृत्य-जगत् में विशेष स्थान रखती हैं।

रुक्मिणी का जन्म सन् १९०४ ई० में तंजौर (दक्षिण-भारत) के एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री नीलकान्त शास्त्री संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। सबसे छोटी कन्या होने के कारण रुक्मिणी पर सम्पूर्ण परिवार का स्नेह और दुलार था। बाल्यकाल से ही संगीत और नृत्य-कला के प्रति रुचि होने के कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा जार्ज एस० अरुण्डेल द्वारा हुई और फिर सन् १९२० ई० के लगभग इन्हीं अरुण्डेल महोदय से आपका विवाह हो गया। दाम्पत्य जीवन में प्रविष्ट होने के पश्चात् भी आपकी कला-साधना पूर्ववत् जारी रही। आपके पति स्व० डॉ० जी० एस० अरुण्डेल 'थियासॉफ़िकल सोसाइटी' के प्रधान थे।

स्वर्गीय एनी बीसेन्ट ने रुक्मिणीदेवी को प्रतिभा के विकास में यथाशक्ति सहयोग प्रदान किया। सन् १९२६ ई० में अपनी विदेश-यात्रा के समय रुक्मिणीदेवी का परिचय आस्ट्रेलिया में विश्व-प्रसिद्ध नर्तकी अन्ना पावलोवा से हुआ। उनसे आपको नृत्य-सम्बन्धी अनुभव और प्रोत्साहन दोनों मिले। तत्पश्चात् कई देशों में भ्रमण करते हुए रुक्मिणी देवी ने नृत्य और नाटक आदि ललित कलाओं का विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

सन् १९३५ ई० में जब आप नृत्य-कला का पूर्ण लगन से अभ्यास कर रही थीं, दैवयोग से आपकी भेंट मद्रास में श्री मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै से हो गई। वहाँ आप

भरतनाट्यम् के एक प्रदर्शन में भाग ले रही थीं। श्री पिल्लै की कला से प्रभावित होकर रुक्मिणी देवी ने उनको अपना कला-गुरु स्वीकार कर नृत्य-कला की उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त की और शीघ्र ही जनता में अपने नृत्य-प्रदर्शनों द्वारा विख्यात हो गईं।

कला-प्रसार के लिए रुक्मिणी देवी ने सन् १९३६ ई० में मद्रास के समीप अड्यार नामक स्थान में एक अन्तर्राष्ट्रीय कला-केन्द्र की स्थापना 'कलाक्षेत्र' के नाम से की। इस संस्था में नृत्य, संगीत, चित्र-कला और गृह-शिल्प-शिक्षा की व्यवस्था है। इस संस्था में स्वयं रुक्मिणी देवी अपने सहयोगी कलाकारों के साथ कला की सेवा कर रही हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं तथा आप राज्य-परिषद् की सदस्या भी हैं।

सन् १९५३ ई० में आप अमेरिका का भ्रमण करने गई थीं, जहाँ आपने अपने कला-प्रदर्शन द्वारा यथेष्ट ख्याति प्राप्त की और कलाकेन्द्र के लिए पर्याप्त धन एकत्र किया। रुक्मिणी देवी की कला साधना भारत की प्राचीन संस्कृति से ओत-प्रोत है। उनके अभिनय व प्रदर्शन में भारतीय पौराणिक गाथाएँ एवं धर्म-शास्त्रों की कथाएँ पाई जाती हैं। आपके द्वारा प्रदर्शित नटराज की मुद्रा देखने-योग्य ही होती है। ऐसा प्रतीत होता हैं कि उनका शारीरिक गठन मानो नृत्य-कला के लिए ही हुआ हो। रुक्मिणी देवी की नृत्य-पोषाक और अलंकार असली रत्नों के होते हैं, जिनसे वे कला-प्रदर्शन के समय दीप्तिमयी हो उठती हैं।

आपकी प्रतिभाशाली शिष्याओं में श्रीमती राधा और शारदा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनको आपने भरतनाट्यम् में पूर्ण रूप से निपुण कर दिया है।

□ □ □

रोहिण्टन कामा

रोहिण्टन ने भरतनाट्यम् की शिक्षा ११ वर्ष की आयु में वैजयन्तीमाला के बम्बई स्थित नाट्यालय में ग्रहण की। छः वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद आपने अपना अरंगेत्रम् प्रस्तुत किया और फिर वैजयन्तीमाला द्वारा प्रस्तुत नृत्य नाटिकाओं में भाग लेते हुए देश-विदेश का भ्रमण किया। भरतनाट्यम् की गहन शिक्षा आपने गुरु किट्टप्पा से ग्रहण की और फिर बम्बई की एस० एन० डी० टी० वीमेन्स यूनिवर्सिटी में भरतनाट्यम् का प्रशिक्षण देने के लिए नियुक्त हो गए।

□ □ □

ललिता श्रीनिवासन

ललिता श्रीनिवासन ने भरतनाट्यम् की शिक्षा नाट्य विद्वान् एच० आर० केशवमूर्ति से प्राप्त की। तदुपरान्त गुरु डॉ० श्रीमती वैंकट लक्ष्मम्मा के निर्देशन में सीखने के बाद में मुगूर जीजम्मा और श्रीमती नर्मदा से भी नृत्य की शिक्षा प्राप्त की। बंगलौर स्थित नूपुर संस्था की संस्थापक-निर्देशक ललिता ने भरतनाट्यम् के विकास, संरक्षण तथा प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान देकर अपने कार्यक्रमों तथा प्रशिक्षण द्वारा प्रभूत यश अर्जित किया।

□□□

लक्ष्मी विश्वनाथन

लक्ष्मी विश्वनाथन को प्रारम्भिक शिक्षा रमैय्या पिल्लै स्कूल की कौशल्या, कर्तलम् गणेश पिल्लै और कलाक्षेत्र की शंकरी से प्राप्त हुई। कांजीवरम् एलप्पा पिल्लै के निर्देशन में आपने भरतनाट्यम् का गहन अध्ययन किया। सन् १९५३ में लक्ष्मी ने अपना अरंगेत्रम् प्रस्तुत किया।

कर्नाटिक संगीत से गहरा लगाव रखने वाले परिवार में लक्ष्मी का जन्म हुआ और प्रारम्भ से ही आपको अपनी माता से कलाक्षेत्र में पदार्पण करने की प्रेरणा मिलती रही। वह पहली ब्राह्मण महिला थीं, जिन्होंने फ़िल्मों में प्रवेश किया। लक्ष्मी की बहन चारुमती ने आपके नृत्य कार्यक्रमों में पदम् गाए, परन्तु कभी-कभी लक्ष्मी स्वयं भी नृत्य करते हुए अपने मुख से गाना पसन्द करती थीं। सन् १९७१ में इज़राइल और सन् १९७२ में आपने मलेशिया तथा अमेरिका की यात्रा की। लक्ष्मीविश्वनाथन की रुचि नृत्य नाटिकाओं की रचना में विशेष रूप से रही।

□□□

लीला रामनाथन

लीला रामनाथन ने भरतनाट्यम् की शिक्षा जिन प्रसिद्ध गुरुओं से प्राप्त की, उनके नाम हैं—मैसूर पुट्टप्पा पिल्लै, रामगोपाल, बालसुब्रमण्य पिल्लै, मैलापुर गौरी अम्मा, मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै, मुत्थिया पिल्लै, किट्टप्पा पिल्लै, और पण्डनल्लूर गोपाल कृष्ण। मृणालिनी साराभाई के साथ मिलकर आपने अपने प्रदर्शनों द्वारा देश-विदेश में अच्छी ख्याति अर्जित की। ईस्ट-वैस्ट एज्यूकेशन ट्रस्ट के संरक्षण में संचालित मीनाक्षी सुन्दरम् सेन्टर ऑफ़ परफ़ार्मिंग आर्ट्स की संस्थापक-निदेशक के रूप में आपने अनेक शिष्यों को भरतनाट्यम् में प्रशिक्षित किया। नृत्य सम्बन्धी शोधकार्य, नृत्यनाटिकाओं की रचना और मञ्च प्रस्तुति तीनों में ही आपने अपनी दक्षता प्रस्तुत की है। □□□

रोहिन्टन कामा

फ्रान्सिस बारबोजा

वसुन्धरा डोरई स्वामी

उर्मिला सत्यनारायणन्

लीला सेम्सन

लीला सेम्सन ने भरतनाट्यम् को शिक्षा के लिए अड्यार के कलाक्षेत्र में प्रवेश लिया और वहाँ रुक्मिणीदेवी के द्वारा इस कला की गहन शिक्षा प्राप्त की। कलाक्षेत्र की विशेषताओं को ग्रहण करते हुए लीला ने नृत्यनाटिकाओं के माध्यम से देश-विदेश में अच्छी ख्याति अर्जित की। कलाक्षेत्र से नृत्य में एम० ए० का डिप्लोमा प्राप्त करके वहाँ कुछ समय तक विद्यार्थियों को नृत्य का शिक्षण भी प्रदान किया और कलाक्षेत्र रेपरटरी कम्पनी की सदस्या रहकर कलाक्षेत्र की कार्य प्रणालियों में हाथ बँटाया। दिल्ली से बी० ए० की उपाधि प्राप्त करके लीला ने दिल्ली में नृत्य शिक्षण प्रदान करते हुए अपने सोलो नृत्य कार्यक्रमों के माध्यम से भरतनाट्यम् का पर्याप्त प्रचार-प्रसार किया है।

□ □ □

वसुन्धरा डोरास्वामी

भरतनाट्यम् की नृत्याङ्गना और गुरु मैसूर निवासी डॉ० वसुन्धरा डोरास्वामी ने पण्डनल्लूर शैली की शुद्धता को कायम रखते हुए भरतनाट्यम् में नवीनता लाने की चेष्टा की है। एक अच्छी नृत्य रचयिता होने के कारण आप नृत्य संरचनाओं में आध्यात्मिक दृष्टिकोण को सर्वोपरि रखती हैं। अल्पायु में ही आपको कर्नाटक संगीत अकादमी द्वारा 'कलातिलक' नामक सम्माननीय पुरस्कार प्राप्त हो गया था।

लोक संस्कृति में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद वसुन्धरा ने 'भरतनाट्यम् और योग' विषय पर थीसिस लिखकर डाक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। आप 'टॅग-टा' और 'कलारिपॅअट्टु' जैसी युद्धककला में भी दक्ष हैं। दूरदर्शन केन्द्र, मैसूर विश्वविद्यालय तथा भारत सरकार के सांस्कृतिक विभाग में आप भरतनाट्यम् से सम्बन्धित चयन समितियों की सदस्य और परामर्शक हैं। वसुन्धरा को जिन पुरस्कारों से विभूषित किया गया, उनमें कर्नाटक का 'राज्योत्सव अवार्ड', आस्ट्रेलिया का 'नाट्यज्योति' और अमेरिका का 'मिलेनियम अवार्ड' उल्लेखनीय हैं। वसुन्धरा की मान्यता है कि आन्तरिक शक्ति की वृद्धि तथा अभिनय को सहज अभिव्यक्ति के लिए प्राणशक्ति का विकास आवश्यक है, जिसके लिए नर्तक को नृत्य के अलावा नियमित रूप से योगाभ्यास भी करना चाहिए। इसका प्रचार-प्रसार करने की दृष्टि से आपने एक घण्टे के 'सूर्यनमस्कारम्' नामक कार्यक्रम की नृत्य रचना की है, जो नृत्य और योग का विशिष्ट समन्वय प्रस्तुत करता है। □ □ □

वैजयन्ती माला

फ़िल्मों की प्रसिद्ध अभिनेत्री और भरतनाट्यम् की नृत्याङ्गना वैजयन्ती माला ने गुरु दण्डायुधपाणि पिल्लै और वज़ूवूर रामय्या पिल्लै से अल्पायु में नृत्य की शिक्षा लेना प्रारम्भ कर दिया था। बाद में तंजौर किडप्पा से लम्बी अवधि तक नृत्य सीखा जो कि आपके नट्टुवंगम् में भी संगत करते थे। इनके निर्देशन में वैजयन्ती माला ने पण्डनल्लूर शैली में महारत हासिल की।

वैजयन्ती माला ने बम्बई में 'नाट्यालय डांस अकादमी' की स्थापना की, जिसके माध्यम से उन्होंने अनेक विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया। अपने सौन्दर्य, अभिनय-क्षमता एवं नृत्य प्रतिभा के बल पर आप फ़िल्म क्षेत्र और रंगमंच दोनों पर छाई रहीं। बम्बई में ही वहाँ के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ० बाली से आपने विवाह कर लिया। नृत्य रचना में विशेष रुचि रखने के कारण आपने 'अजागर कुवन्जी', 'तिरुपवाई', 'सन्तसखु' और 'चण्डालिका' जैसी नृत्य नाटिकाएँ तैयार करके उनका देश तथा विदेशों में मञ्चोकरण किया। अनेक पुरस्कारों से विभूषित होकर वैजयन्तीमाला ने फिल्मों से सन्यास लेकर राजनीति के क्षेत्र में भी पदार्पण किया। आपका प्रधान लक्ष्य है भारतीय संस्कृति की सुरक्षा और कला के माध्यम से उसके गुणों का प्रसार।

वैजयन्ती माला ने लगभग २० वर्ष फ़िल्मों को दिए और ६० से अधिक हिन्दी फिल्मों तथा कुछ तमिल फ़िल्मों में अभिनय किया। हिन्दी क्षेत्र में आप तमिल फ़िल्म के हिन्दी संस्करण 'बहार' से अवतरित हुईं। आपकी माँ शास्त्रीय संगीत की श्रेष्ठ गायिका थीं। दादी रूढ़िवादी होते हुए भी खुले मस्तिष्क वाली थीं, जो संगीत और नृत्य को बहुत पसन्द करती थीं। उन्हीं के कारण वैजयन्ती माला अभिनय और नृत्य के क्षेत्र में आ सकीं, पति डॉ० बाली ने भी उन्हें कला के क्षेत्र में बहुत प्रोत्साहित किया। आपका पुत्र प्रवीन (फ़िल्मी नाम) तमिल फ़िल्मों में सफलता प्राप्त करके हिन्दी फ़िल्मों में आने का इच्छुक है। प्रारम्भ में प्रवीन ने अमेरिका में कानून की शिक्षा प्राप्त करके मॉडलिंग के क्षेत्र में प्रवेश किया। आपको घुड़सवारी, टेबिल टेनिस और विभिन्न खेलों में प्रारम्भ से ही रुचि रही।

□□□

शान्ताराव

शान्ता बचपन से ही सौन्दर्य और प्रतिभा की धनी थीं। सन् १९३९ में आप केरल कलामण्डलम् (उस समय का कोचीन और आज का केरल प्रदेश) में कथकलि नृत्य सीखने गईं। उस समय सम्पूर्ण भारत के नृत्य जगत में कथकलि और कलामण्डल की बड़ी धूम मची हुई थी। उदयशकर और गोपीनाथ जैसे नर्तक और टैगौर जैसे कवि भी कथकलि से प्रभावित थे। कलामण्डलन् के निर्माता कवि वल्लथोल का आतिथ्य पाकर शान्ता गद्‌गद् हो गईं थीं। जिन्होंने शान्ता से कहा था कि तुम्हारा शरीर इतना सुन्दर और नृत्य के योग्य है कि तुम शीघ्र ही भारत की सर्वोत्कृष्ट नर्तकी बनोगी।

शान्ता ने कथकलि नृत्य के तांडव और लास्य अंग पर शीघ्र ही प्रभुत्व स्थापित कर लिया। आपकी गुरु खुन्नी मेनन आपको नृत्य सिखाने में गौरव महसूस करती थीं। वहीं शान्ता ने वृद्ध गुरु पणिक्कर से मोहिनीअट्टम् को शिक्षा ली। सन् १९४० में आपने दक्षिण भारत के त्रिचूर में अपना कथकलि प्रदर्शन किया। सन् १९४२ में आपने मद्रास के 'म्यूजियम थियेटर' तथा 'म्यूजिक एकेडमी....' में अपना भरतनाट्यम् नृत्य प्रस्तुत किया। सन् १९४० में जब आप सीलोन (श्रीलङ्का) गईं तो वहाँ कंण्डियन नृत्य सीखा। आपने विद्वान मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै जैसे महान गुरु से भरतनाट्यम् सीखा और शीघ्र ही पण्डनल्लूर शैली में दक्ष हो गईं। जनता ने शान्ता को 'भारत की प्राचीन कला का सर्वश्रेष्ठ पुष्प' की मौखिक उपाधि से विभूषित किया। नौवर्णम् (नौ घण्टे की अवधि वाले), और आठ तिल्लाना, सात जतिस्वरम् दो शब्दम्, तीन अलारिप्पु और बीस पदम् पर उनका विशेष अधिकार था। शान्ता के नृत्य में तीन घण्टे की प्रस्तुति में प्रत्येक देशी और विदेशी दर्शक मन्त्र मुग्ध से बैठे रहते थे। उस समय की प्रख्यात कवयित्री श्रीमती सरोजनी नायडू ने शान्ता को 'दक्षिण से उतरी वसन्त ऋतु' कहा था। भारतीय तथा यूरोपियन समीक्षकों ने शान्ता के लिए 'आधुनिक मालविका' और 'एक और केवल एक शान्ता' जैसे शब्द इस्तेमाल किए थे।

□ □ □

सरोजा

सरोजा का जन्म १९३७ में कर्नाटक के बेल्लारी नगर में हुआ था। छह वर्ष की आयु से आपने अपनी बहिन बसन्ता के साथ श्रीमती ललिता से भरतनाट्यम् सीखना शुरू किया, जो तंजावुर कट्टुमन्नार, मुथुकुमारन पिल्लै की शिष्या थीं। आपने वीणा वादन और कर्नाटिक कण्ठ संगीत का भी ज्ञान प्राप्त किया। सन् १९५२ में सरोजा ने अपना अरंगेत्रम् प्रस्तुत किया और फिर दक्षिण भारत में सर्वत्र कार्यक्रम

देना प्रारम्भ किया। आई० ए० एस० ऑफ़ीसर श्री सी० आर० वैद्यनाथन के साथ १६ वर्ष की आयु में सरोजा का विवाह सम्पन्न हुआ। कुछ वर्ष बिहार में रहकर आप दिल्ली में स्थापित हो गईं और वहाँ सन् १९८८ में गणेश नाट्यालय नाम से एक नृत्य केन्द्र स्थापित कर दिया। आपने देश-विदेशों में अपने ग्रुप के साथ भरतनाट्यम् के अनेक कार्यक्रम करके अच्छी ख्याति प्राप्त की। सरोजा ने 'दि साइंस ऑफ़ भरतनाट्यम्', 'कर्नाटिक संगीतम्' और 'भरतनाट्यम् एन इनडैप्थ स्टडी' नामक पुस्तकें लिखी और 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ भरतनाट्यम्' शोध-प्रबन्ध तैयार किया। आपने अनेक पुरस्कार प्राप्त करके भरतनाट्यम् के प्रति अपने समर्पण के भाव को साकार किया है।

□ □ □

सी० वी० चन्द्रशेखर

२२ मई सन् १९३५ में जन्मे चन्द्रशेखर ने भरतनाट्यम् के क्षेत्र में अपना अलग स्थान बनाया है। आप एक नर्तक ही नहीं बल्कि नृत्यगुरु, नृत्य रचयिता, संगीत रचयिता, शास्त्रज्ञ, संस्थागत प्रबन्धक और बड़ौदा की महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी के ललितकला संकाय में विभागाध्यक्ष तथा डीन प्रोफ़ेसर भी रहे। कलाक्षेत्र मद्रास के विशिष्ट प्रतिभा सम्पन्न नर्तकों में आपका नाम लिया जाता है। अपनी पत्नी नृत्याङ्गना जया के साथ मिलकर आपने बड़ोदरा (बड़ोदा) में 'नृत्यश्री' नामक स्कूल की स्थापना की और बाद में चेन्नई जाकर केन्द्र का नृत्य शिक्षण क्रम जारी रखा।

चन्द्रशेखर की पुत्रियाँ चित्रा और मञ्जरी ने भी नृत्य के क्षेत्र में अच्छा नाम कमाया है। आपके गुरुओं में संगीत कलानिधि बुदलूर कृष्णमूर्ति शास्त्री, संगीत कलानिधि मुदिकोण्डन वेंकटरमैयार और एम० डी० रामनाथन के नाम उल्लेखनीय हैं। कर्नाटिक और हिन्दुस्तानी पद्धतियों में चन्द्रशेखर ने अनेक नृत्य नाटिकाओं का निर्माण एवं मञ्चन करके कीर्ति प्राप्त की। आप देश की विभिन्न संस्थाओं से सम्बद्ध रहे तथा विभिन्न पुरस्कारों से आपको अलंकृत किया गया जिनमें 'चूड़ामणि' और केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा सन् १९९३ का पुरस्कार प्रमुख हैं। भारत के अतिरिक्त आपने विश्व के अनेक प्रमुख देशों में अपनी कला प्रस्तुति से यश अर्जित किया और उत्तर भारत तथा दक्षिण में समान रूप से लोकप्रिय रहे।

□ □ □

रमा वैद्यनाथन्

इन्दिरा कदम्बी

सुचेता चापेकर

सोनल मानसिंह

सुचेता भिड़े (चापेकर)

श्रीमती सुचेता भिड़े (चापेकर) नृत्य के क्रियात्मक और सैद्धान्तिक दोनों पक्षों पर समान रूप से अधिकार रखती हैं। सुचेता भिड़े ने भरतनाट्यम् विद्वान गुरु पार्वतीकुमार से नृत्य सीखा और उनके साथ मिलकर नृत्य के शास्त्रीय पक्ष पर काफी काम किया। तंजावूर के मराठी शासकों से सम्बन्धित भरतनाट्यम् और उसके मराठी पदों पर आपने गहराई से काम किया, जो उनके गुरु पार्वतीकुमार का प्रधान विषय रहा। इसमें शाहजी महाराज की नृत्य रचनाएँ प्रधान थीं। म्यूज़िक अकादमी मद्रास में आपने गुरु किट्टप्पा के सहयोग से जब 'त्याग प्रबन्ध' नामक कार्यक्रम प्रस्तुत किया तो उसकी बहुत प्रशंसा हुई। नृत्य के क्षेत्र में सुचेता भिड़े इतनी प्रसिद्ध हुईं कि श्री चापेकर के साथ शादी होने के उपरान्त भी लोग उन्हें सुचेता भिड़े के नाम से ही पहचानते हैं।

□ □ □

सुधारानी रघुपति

सुधारानी ने अल्पायु में ही भरतनाट्यम् की शिक्षा लेना प्रारम्भ कर दिया था। आपने यू० एस० कृष्णराव तथा चन्द्रभागा देवी से भरतनाट्यम् की शिक्षा ली तथा यू० एस० कृष्णराव के निर्देशन में अपना अरंगेत्रम् प्रस्तुत किया और बाद में मुत्थैया पिल्लै तथा किटप्पा जैसे गुरुओं से सीख कर पण्डनल्लूर शैली में दक्षता प्राप्त की। समाज शास्त्र और दर्शन शास्त्र में स्नातक होने के पश्चात् आपने अमेरिका जाकर अध्ययन किया। अमेरिका से शिक्षा प्राप्त कर जब आप भारत आईं, तो रघुपति के साथ विवाह हो गया। भरतनाट्यम् के क्षेत्र में प्राचीन और नवीन के मिलन पर वे दीर्घकाल तक विचार करती रहीं। सन् १९७० में आपने 'भरतालय' नामक संस्था की स्थापना की। इस केन्द्र में भरतनाट्यम् की गंभीर शिक्षा का ध्येय रखते हुए आपने संगीत, साहित्य और योग जैसे बिषयों का भी समावेश किया।

सुधारानी ने पूर्व और पश्चिम में अपनी कला से अच्छा यश अर्जित किया है। विज़िटिंग प्रोफेसर के रूप में आपको न्यूयार्क की कॉलगेट यूनिवर्सिटी में बुलाया जाता है। सन् १९८१ में मानवाधिकार दिवस पर आपको यू० एन० ओ० में भरतनाट्यम् प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था। 'पद्मश्री', 'नृत्यचूड़ामणि' और 'कलाईमणि' जैसे अनेक पुरस्कारों से आप विभूषित हो चुकी हैं। 'नाट्यशास्त्र' के अभिनयात्मक सार को लेकर आपने संस्कृत श्लोकों का अँग्रेज़ी भाषान्तर करते हुए 'लघुभरतम्' पुस्तक तैयार की है ताकि देश-विदेश के अहिन्दी भाषी छात्र भरतनाट्यम् से लाभान्वित हो सकें। सन् २००० में आपने अपनी आयु के ५५ वर्ष पूर्ण करके ५६ वें वर्ष में प्रवेश किया है और नई शताब्दी में जीवन के अन्त समय तक भरतनाट्यम् के प्रति समर्पित रहने का संकल्प लिया है।

□ □ □

सोनल मानसिंह

स्वतन्त्र भारत के गवर्नर श्री मंगलदास पकवासा की पौत्री सोनल मानसिंह ने श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल और अभिनेत्री देविकारानी की पावन प्रेरणा से अपना जीवन नृत्य को समर्पित कर दिया। परिवार के कला प्रेम ने इन्हें बहुत प्रोत्साहित किया। आपकी माता श्रीमती पूर्णिमा पकवासा कण्ठ संगीत के प्रति बहुत लगाव रखती थीं। सोनल को पाँच वर्ष की उम्र से ही उन्होंने नृत्य सिखाना शुरू कर दिया। बड़े-बड़े गायक, वादक और नर्तक आपके परिवार में प्रायः आया-जाया करते थे अतः सोनल के संगीत संस्कार और दृढ़ होते चले गए।

सोनल ने नृत्य की शिक्षा मणिपुरी नृत्य से प्रारम्भ की और फिर प्रसिद्ध गुरु प्रो० यू० एस० कृष्णराव और उनकी नृत्याङ्गना पत्नी चन्द्रभागा देवी से भरतनाट्यम् सीखना शुरू किया, जो प्रतिष्ठित गुरु पण्डनल्लु मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै के शिष्य थे। सोनल ने सन् १९६१ में बंगलौर में अपना अरंगेत्रम् प्रस्तुत किया। परिवार नहीं चाहता था कि वे नृत्याङ्गना बनें, क्योंकि नर्तकियों को नीची दृष्टि से देखा जाता था। लेकिन उनकी लगन और कला के प्रति श्रद्धा और समर्पण के भाव को देखकर सभी को उनके आगे झुकना पड़ा। जब आपका परिवार बम्बई (महाराष्ट्र) में रहा, तो वहाँ आपको पं० के० जी० गिण्डे से कण्ठ संगीत, देवव्रत वर्मन से सितार और श्री जयकर तथा श्रीमती जयलक्ष्मी (पण्डनल्लुर परम्परा) से भरतनाट्यम् सीखने का अवसर मिला। वहीं आपने सन् १९६३ में एलफिस्टन कॉलिज बम्बई से जर्मन साहित्य से बी० ए० किया। भाषाओं के प्रति लगाव के कारण अँग्रेजी, ओडिसी, जर्मन, तेलुगु, हिन्दी, मराठी, गुजराती, और संस्कृत में निपुणता प्राप्त कर ली।

मद्रास जाकर आपने नाट्यशास्त्र के विद्वान डॉ० टी० एन० रामचन्द्रन से करण और अङ्गहार सम्बन्धी शास्त्रीय ज्ञान उपलब्ध किया। मैलापुर गौरी अम्मल (प्रतिष्ठित देवदासी नर्तकी) से अभिनय की बारीकियाँ सीखीं, जो बाल सरस्वती और रुक्मिणी देवी जैसी अनेक प्रतिष्ठित नृत्याङ्गनाओं की गुरु थीं। मद्रास में ही सोनल ने कुछ समय तक गुरु वेम्पति चिन्नसत्यम् से कुचिपुड़ी नृत्य सीखा।

उड़ीसा के कटक नामक शहर में ललित मानसिंह के साथ सोनल का विवाह सम्बन्ध तय हुआ, तब से वह सोनल मानसिंह के नाम से प्रसिद्ध हुईं। अपने ससुर मायाधर मानसिंह (संगीत और नृत्य के विद्वान) की प्रेरणा से आपने उनके मित्र प्रसिद्ध गुरु केलुचरण महापात्र से ओडिसी नृत्य की शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद सोनल के नृत्य कार्यक्रमों ने देश-विदेश में धूम मचा दी। इस धूम ने उनके वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी के अहंकार वाली दरार उत्पन्न कर दी। अब सोनल को चुनना था, कि वह पति के लिए समर्पित रहें या नृत्य के लिए। अन्ततः उन्होंने नृत्य को ही

अपना साथी चुना। इसके बाद आपने संघर्ष करते हुए दिल्ली को अपना निवास स्थान बनाया और वहाँ गुरु मायाधर राउत से ओडिसी नृत्य की शिक्षा बरकरार रखी। जर्मनी में सोनल मानसिंह एक कार दुर्घटना में क्षतिग्रस्त होकर जीवन की आशा छोड़ बैठी थीं, लेकिन ईश्वर की कृपा, सघन चिकित्सा और मित्रों की शुभेच्छाओं से उन्हें नया जीवन मिला। जब वे भारत लौटीं, तो जोधपुर में महाराजा जोधपुर के चचेरे भाई नरेन्द्र भट्टी के सम्पर्क में आईं। श्री भट्टी से उन्होंने शादी तो नहीं की, लेकिन वे उनकी योग्यता, कलाप्रियता व शालीनता से प्रभावित होकर उनकी निकट सहचरी बन गईं।

खट्टे-मीठे अनुभवों के बाद भी सोनल मानसिंह ने अपनी कला यात्रा में कहीं कोई विराम नहीं आने दिया। दिल्ली में सन् १९७७ में आपने एक नृत्य केन्द्र की स्थापना की और प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को एक कतार खड़ी कर दी। अपनी रचनात्मक प्रतिभा के बल पर आपने भरतनाट्यम् और मणिपुरी शैलियों में अनेक नृत्य रचनाएँ तैयार करके उनका मञ्चीकरण किया। सङ्गीत नाटक अकादमी अवार्ड से विभूषित होकर अपने को गौरान्वित महसूस किया और पूरे उत्साह के साथ नृत्य सम्बन्धी अनुसन्धान, गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार नृत्य-शिक्षा तथा मञ्चीय कार्यक्रमों के आयोजनों में संलग्न रहने लगीं। गुरु जीवनपाणि के मार्ग दर्शन में आपने ओडिसी नृत्य प्रणाली में अनेक प्रयोग किए। सोनल मानसिंह ने जीवन के लम्बे संघर्ष को ही नृत्य के प्रति और अधिक सजगता बरतते हुए अपना आराध्य बना लिया है।

□ □ □

हेमा मालिनी

हेमा मालिनी ने नृत्य की प्रारम्भिक शिक्षा अड्यार से प्रशिक्षित भरतनाट्यम् नृत्याङ्गना कु० इन्दिरा तथा सिक्किल रामास्वामी पिल्लै से प्राप्त की। हेमा की शिक्षा-दीक्षा तो दिल्ली में ही हुई परन्तु भरतनाट्यम् की विशेष शिक्षा आपने मद्रास जाकर मैलापुर गौरी अम्माल, थिरुवाडपुत्तुर, स्वामीनाथ पिल्लै तथा तञ्जौर के० पी० किट्टप्पा पिल्लै से प्राप्त की। श्री वेम्पति चिन्नप्पि सत्यम् से आपने कुचिपुड़ि तथा कला मण्डलम् नटनम् गोपाल कृष्णन से मोहिनीअट्टम् सीखा।

वी० एस० चक्रवर्ती और जयाचक्रवर्ती की पुत्री हेमा प्रारम्भ से ही प्रसिद्ध नर्तकी वैजयन्तीमाला और पद्मिनी से बहुत प्रभावित थीं।

नृत्य-कला का प्रोत्साहन देने की दृष्टि से आपने मद्रास में 'नाट्य बिहार कला केन्द्रम्' की स्थापना की। अपने सुगठित शरीर और अभिनय प्रतिभा के कारण हेमा

मालिनी को फ़िल्म निर्माता राजकपूर ने अपनी फिल्म 'सपनों का सौदागर' की नायिका के लिए चुन लिया था। इसके बाद हेमा मालिनी फ़िल्मों की प्रसिद्ध नायिका बन गईं। लेकिन फ़िल्मों में व्यस्त रहते हुए भी आपने रङ्गमञ्च पर अपने कार्यक्रम देना बन्द नहीं किया। इस प्रकार दोनों क्षेत्रों में कार्य करते हुए आपने फ़िल्म-ससार में अपार लोकप्रियता प्राप्त की और अनेक पुरस्कारों से विभूषित हुईं। फ़िल्म अभिनेता धर्मेन्द्र के साथ आपका प्रेम-विवाह सम्पन्न हुआ। कला जगत की दीर्घकालीन सेवाओं के बाद सन् २००० में आपको एन० एफ० डी० सी० के चेयरमैन का पदभार सौंपा गया। हेमा की दो पुत्रियाँ (एषा और आहना) भी कला जगत से प्रभावित होकर उसे अपना कार्यक्षेत्र चुनने की इच्छुक हैं। □□

भरतनाट्यम् के उपर्युक्त कलाकारों का परिचय प्रत्यक्ष सम्पर्क, पत्राचार, पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं के आधार पर एकत्रित किया गया है। भरतनाट्यम् नर्तकों के अतिरिक्त कुछ ऐसे नृत्यकारों का परिचय भी इसमें दिया गया है, जो नृत्य के क्षेत्र में भरतनाट्यम् के कलाकार तो नहीं कहलाते, लेकिन उन्होंने अपने विशाल दृष्टिकोण एवं कठोर परिश्रम द्वारा भारतीय नृत्य कला के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है और एक कीर्तिमान स्थापित किया है। अतः वे भी ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। ऐसे नर्तकों ने भारत की विभिन्न शास्त्रीय नृत्य-शैलियों और लोकनृत्यों का अध्ययन करके मञ्च के माध्यम से विश्व को भारतीय संस्कृति के प्रति आकर्षित किया है।

अनेक नर्तक युवा से वृद्ध हो चुके हैं, विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं, अनेक ने नृत्य को छोड़कर केवल गृहस्थ जीवन अपना लिया है, अनेक वृद्धावस्था का जीवन-यापन कर रहे हैं, अनेक भारत छोड़कर विदेशों में बस चुके हैं और अनेक कलाकार कालकवलित हो चुके हैं। ऐसे कलाकारों की कोई सूचना उपलब्ध न होने के कारण उनके जीवन परिचय में हम ठीक-ठीक तथ्यों का समावेश नहीं कर पाए हैं। एक बड़ी कठिनाई तब सामने आती है, जब गुरु लोग अपनी उम्र बढ़ाकर बताते हैं और नर्तकियाँ अपनी उम्र घटाकर बताती हैं। ऐसी स्थिति में आयु से सम्बन्धित तथ्य प्रामाणिक रूप में प्रकाशित करना सम्भव नहीं होता।

भरतनाट्यम् में दक्ष अनेक स्त्री और पुरुष कलाकार ऐसे हैं जिन्होंने फ़िल्म अभिनय को अपनाकर मञ्च-नृत्य को अपने जीवन में गौण स्थान दे दिया है, ऐसे कलाकारों का जीवन-वृत्त ज्ञात न होने के कारण हम उसका समावेश उपर्युक्त कलाकारों में नहीं कर पाए हैं, जैसे—त्रावनकोर सिस्टर्स, साँई-सुब्बुलक्ष्मी, रेखा, वहीदा रहमान, आशा पारिख, जयप्रदा, श्रीदेवी, रञ्जन, कमल हासन इत्यादि। इसी प्रकार प्रयत्न करने पर भी भरतनाट्यम् के कुछ महत्वपूर्ण प्राचीन गुरु और आधुनिक यशस्वी कलाकारों का जीवन परिचय हमें उपलब्ध नहीं हो सका जिसे भविष्य के संस्करण में देने का प्रयत्न किया जाएगा। □□□

वैजयन्तीमाला

हेमामालिनी

वी०पी० धनंजयन और शान्ता

भरतनाट्यम् के कुछ प्रसिद्ध गुरु और कलाकारों का कार्यकाल

- ☐ इन्दिरा राजन (जन्म सन् १९४२)
- ☐ एम० डी० गौरी (सन् १९००–१९७०)
- ☐ एस० एस० मणिक्कम् (निधन सन् १९५२)
- ☐ कुबेरनाथ तञ्जौरकर (जन्म सन् १९१७)
- ☐ के० एन० दण्डायुधपाणि (सन् १९२१–१९९४)
- ☐ के० एल्लप्पा (सन्१९१३–१९७४)
- ☐ के० गणेशन (सन् १९१८–१९८३)
- ☐ के० जे० गोविन्दराजन (सन् १९३५–१९७४)
- ☐ के० महालिङ्गम् (जन्म सन् १९१६)
- ☐ के० मुथुकुमार (सन् १८७४–१९९०)
- ☐ के० रामैया (जन्म सन् १९४१)
- ☐ के० ललिता (सन् १९१८–१९९२)
- ☐ गुण्डप्पा (मैसूर) और के० पुट्टप्पा (निधन सन् १९६८)
- ☐ जयश्री वेणु गोपाल (जन्म सन् १९४३)
- ☐ जे० वेणु गोपाल (जन्म सन् १९४०)
- ☐ टी० ए० राजालक्ष्मी (सन् १९१७)
- ☐ टी० एन० पिच्चैया (जन्म अज्ञात—सन् १९४९)
- ☐ टी० एम० अरुणाचलम् (सन् १९१२–३९८०)और ए०जयालक्ष्मी (सन्१९३४)
- ☐ टी० के० करुणाम्बल (सन् १९२३)
- ☐ टी० के० गणेशन (सन् १९२३–१९८७)
- ☐ टी० पी० कुप्पै (सन् १८८७–१९८१)
- ☐ टी० बाला सरस्वती (सन् १९१८–१९८४)
- ☐ टी० स्वामीनाथन (सन् १८८३–१९७२)
- ☐ डी० मोहनराज (जन्म सन् १९२९)
- ☐ नाना कसार (जन्म सन् १९३०)
- ☐ पद्मा सुब्रह्मण्यम् (जन्म सन् १९४१)
- ☐ पार्वतीकुमार (जन्म सन् १९२१)
- ☐ पी० आर० थिलगम् (जन्म सन् १९२६)
- ☐ पी० एस० मीनाक्षी सुन्दरम् (सन् १८६९–१९५४)
- ☐ मैथिली कल्याण सुन्दरम् (सन् १९४०)
- ☐ यू० लक्ष्मीनारायणन (जन्म सन् १९२६)
- ☐ रुक्मिणी देवी सन् (१९०८–१९८४)
- ☐ वी०एस० मुथूस्वामी(सन् १९२१–१९९२)
- ☐ वी० रमैया (सन् १९१०–१९९४)
- ☐ वी० सदाशिवन (सन् १९२१–१९९०)
- ☐ सम्मपति भूपाल (सन् १९२७–१९७५)
- ☐ सरोज खोकर (सन् १९३०)
- ☐ सी० एन० राधाकृष्णन(जन्म सन् १९२८) और एच० आर० केशवमूर्ति (जन्म सन् १९२८)
- ☐ सी० एस० कुञ्चितपदम् (सन् १९२८-१९९१)

☐ ☐ ☐

भरतनाट्यम् की गुरु परम्परा

१. मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै

(अ)

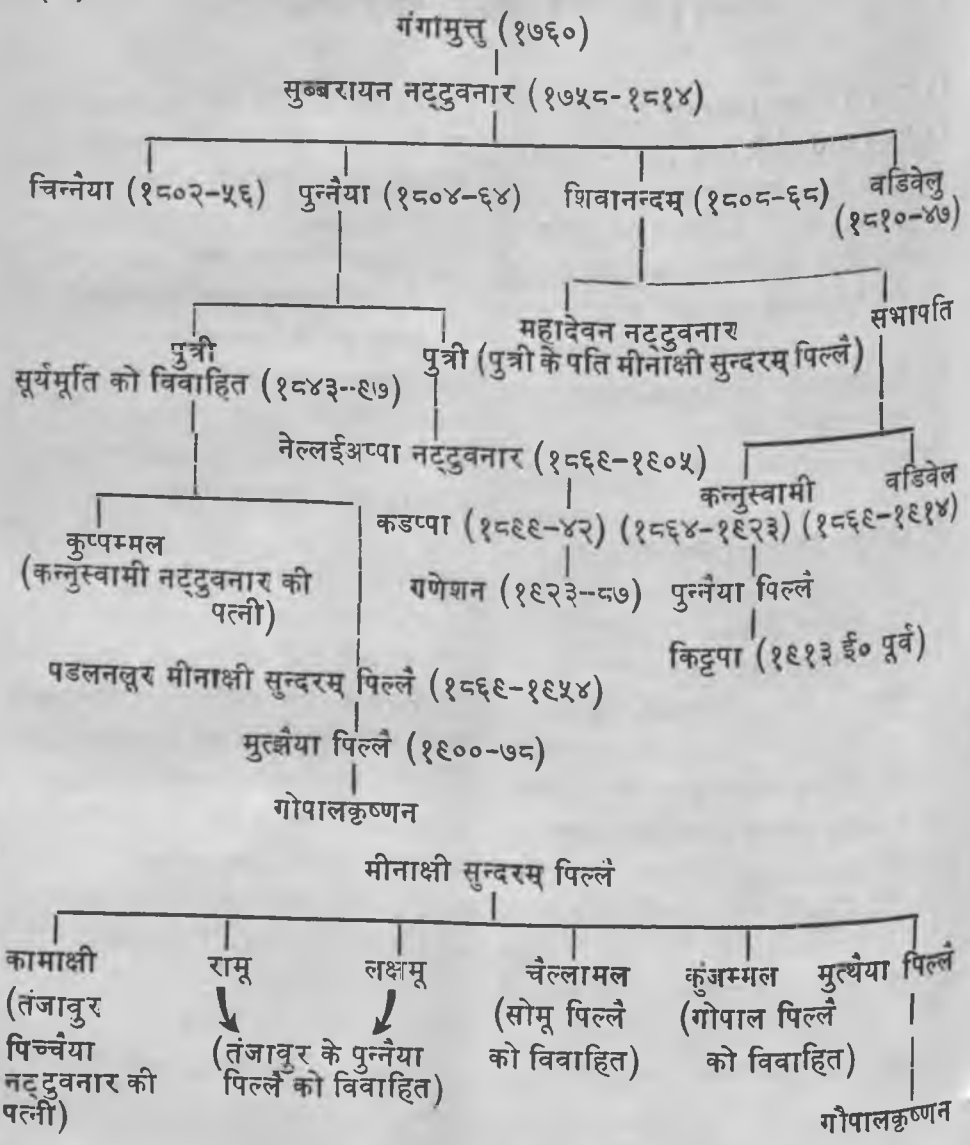

(ब)

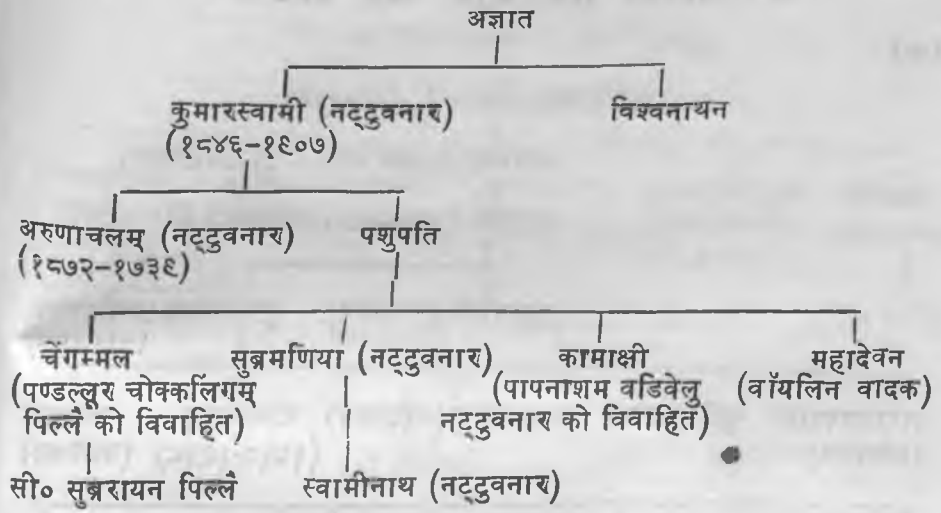
अज्ञात
कुमारस्वामी (नट्टुवनार)
(१८४६-१९०७)
विश्वनाथन
अरुणाचलम् (नट्टुवनार)
(१८७२-१७३९)
पशुपति
चेंगम्मल
(पण्डल्लूर चोक्कलिंगम्
पिल्लै को विवाहित)
सुब्रमणिया (नट्टुवनार)
कामाक्षी
(पापनाशम वडिवेलु
नट्टुवनार को विवाहित)
महादेवन
(वॉयलिन वादक)
सी० सुब्बरायन पिल्लै
स्वामीनाथ (नट्टुवनार)

□□□

२. बाला सरस्वती का परिवार

(अ)

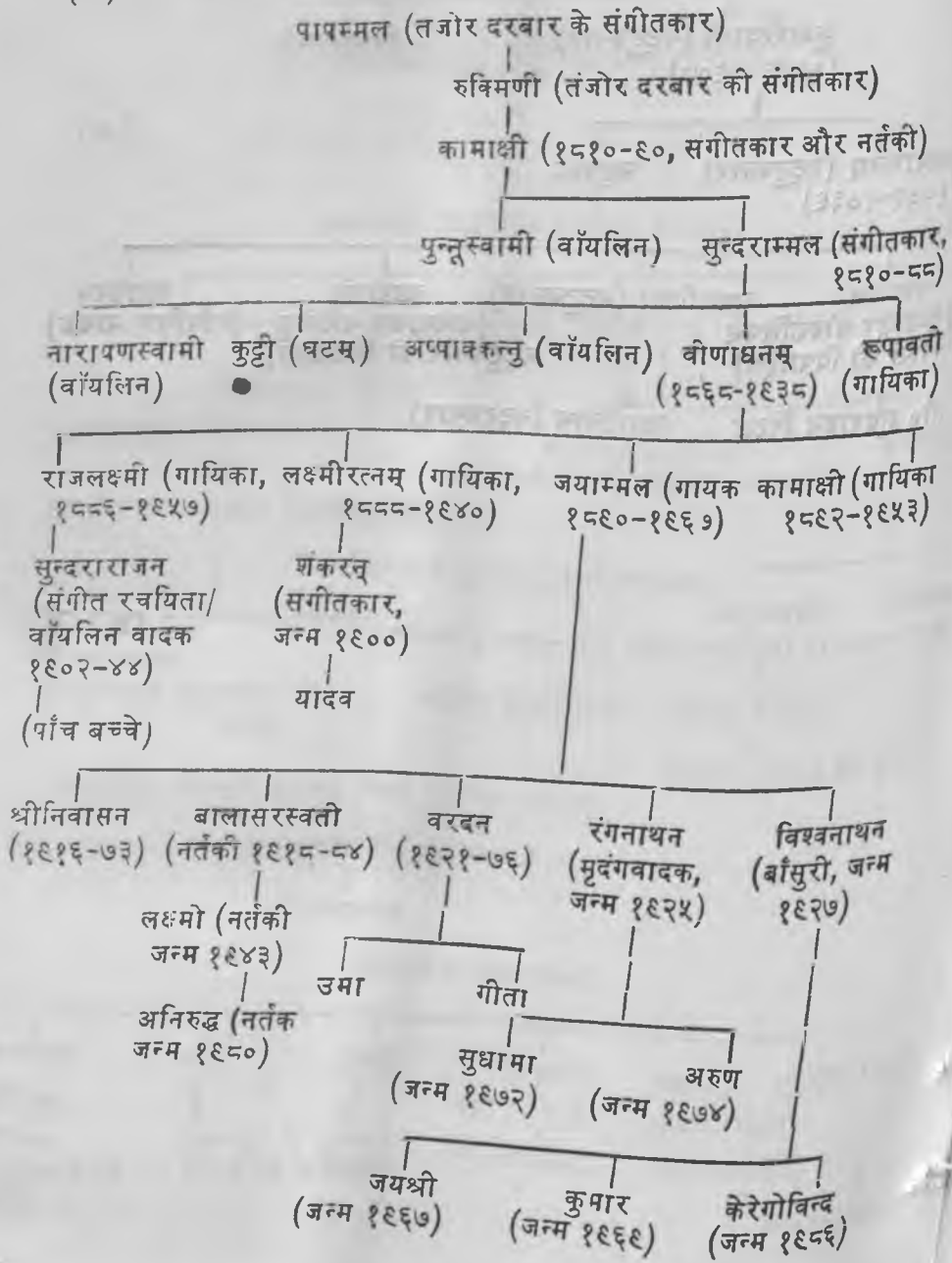

(ब)

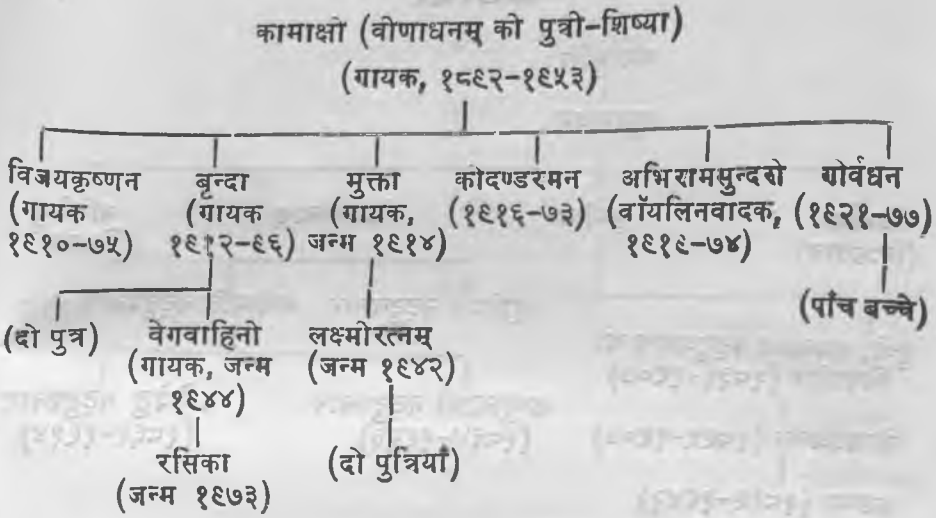
कामाक्षी (वीणाधनम् की पुत्री-शिष्या)
(गायक, १८९२-१९५३)
विजयकृष्णन (गायक १९१०-७५)
बृन्दा (गायक १९१२-९६)
मुक्ता (गायक, जन्म १९१४)
कोदण्डरमन (१९१६-७३)
अभिरामसुन्दरी (वॉयलिनवादक, १९१९-७४)
गोर्वधन (१९२१-७७)
(पाँच बच्चे)
(दो पुत्र)
वेगवाहिनी (गायक, जन्म १९४४)
लक्ष्मीरत्नम् (जन्म १९४२)
रसिका (जन्म १९७३)
(दो पुत्रियाँ)

कंडप्पा

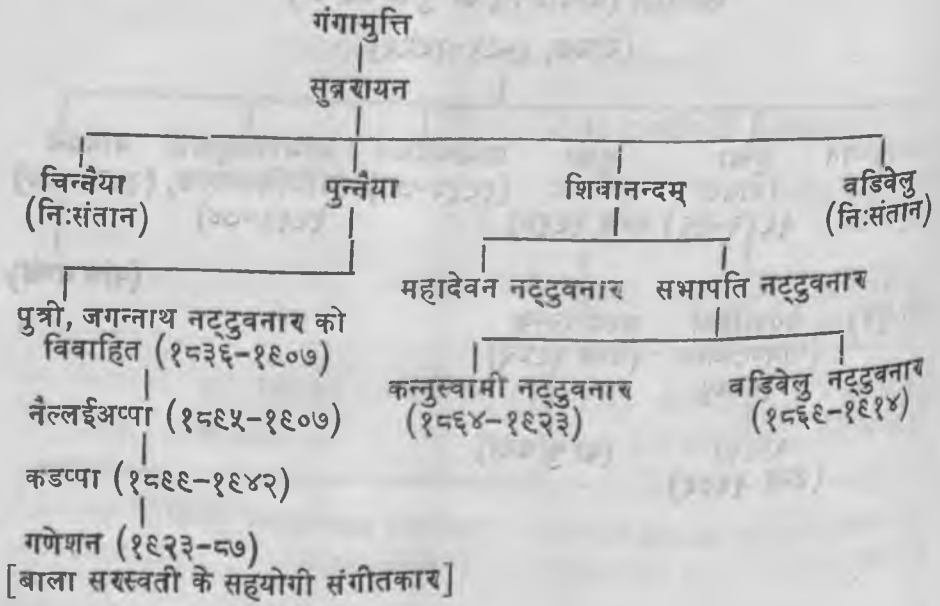
गंगामुत्ति
सुब्रायन
चिन्नैया (निःसंतान)
पुन्नैया
शिवानन्दम्
वडिवेलु (निःसंतान)
महादेवन नट्टुवनार
सभापति नट्टुवनार
पुत्री, जगन्नाथ नट्टुवनार को विवाहित (१८३६-१९०७)
कन्नुस्वामी नट्टुवनार (१८६४-१९२३)
वडिवेलु नट्टुवनार (१८६९-१९१४)
नैल्लईअप्पा (१८९५-१९०७)
कडप्पा (१८९९-१९४२)
गणेशन (१९२३-८७)
[बाला सरस्वती के सहयोगी संगीतकार]

□□□

कंजीवरम् एल्लप्पा पिल्लै

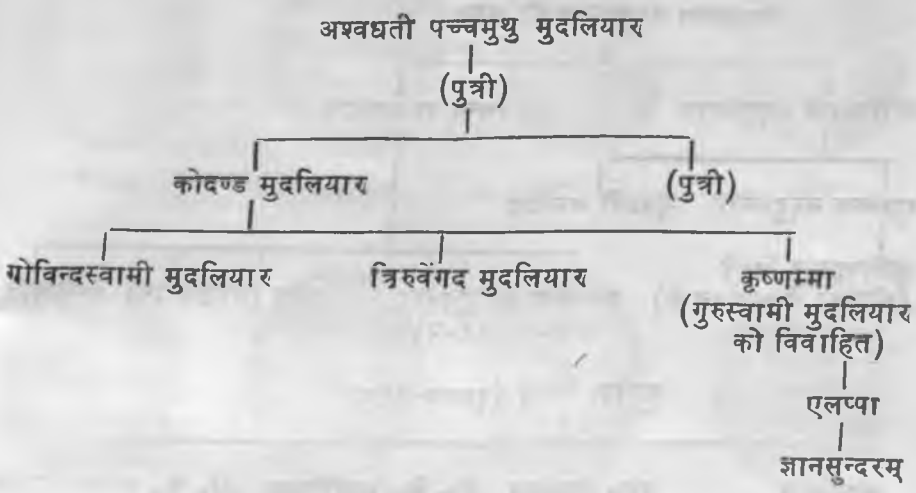

□ □ □

तिरुविदैमरुदुर कुप्पैया पिल्लै

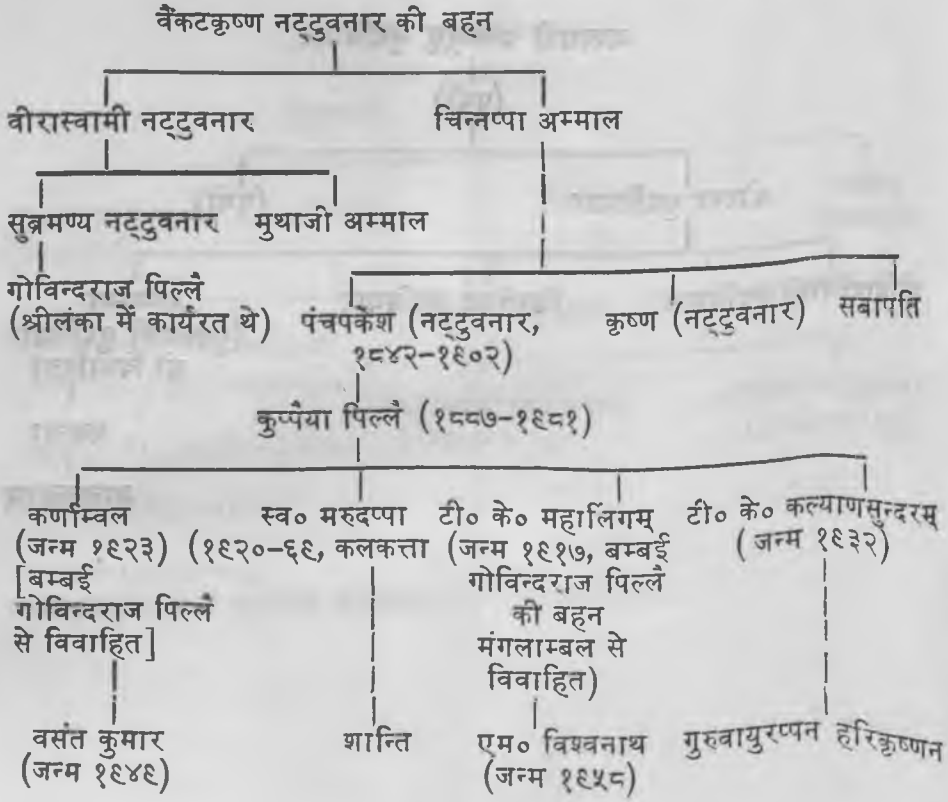

□□□

चिन्नैया

पुन्नैया

शिवानन्दनम्

वडिवेलु

महाराजा स्वाति
तिरुनाल के दरबार में वडिवेलु

नट्टुवनार कन्नुस्वामी
(बड़ौदा स्टेट)

नट्टुवनार वडिवेलु
(रामनद स्टेट)

कन्नप्पा

मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै

सुब्बैया पिल्लै

किट्टप्पा

मुथुकुमार पिल्लै

बी० एस० मुथुस्वामी पिल्लै

चोक्कलिंगम् पिल्लै

सुब्बराय पिल्लै

एलप्पा और उनके पुत्र
ज्ञान सुन्दरम्

सामराज विद हिज फादर रमैया पिल्लै

एस० के० राजरत्नम्

दण्डायुध पाणि पिल्लै

के० एस० दक्षिणामूर्ति

स्वामीनाथ पिल्लै

पंचपकेश भट्टुबगार

कुप्पैया पिल्लै

गोविन्दराज पिल्लै

टी० के० महालिंगम् पिल्लै

टी० के० कल्याण सुन्दरम्

मैलापुर गौरी अम्मा

स्वयं सरस्वती

कुबेरनाथ तञ्जारकर

यू० एस० कृष्णराव और यू० के० चन्द्रभागा देवी

पार्वती कुमार

नाना कसार

सी० वी० चन्द्रशेखर और जया चन्द्रशेखर

यन्कमणि कुट्टी

अड्यार के० लक्ष्मण

अञ्जलि मेढ़

ममता नियोगी-नाथ

□ □ □

नृत्य लिपि

प्राचीन काल में वेदोक्त गायन के लिए स्वरलिपि पद्धति का विकास हुआ। स्वरों को उच्च तथा निम्न अवस्था में प्रदर्शित करने वाले चिह्न वैदिक साहित्य में आज भी मिलते हैं। मन्त्रों के उच्चारण में विभिन्न हस्त मुद्राओं का प्रयोग भी किया जाता है, जो सिद्ध करता है कि शब्द शक्ति का सम्बन्ध तत्त्वों से है।

नृत्य के लिए प्राचीनकाल में किसी लिपि का आविष्कार नहीं हुआ लेकिन मध्यकाल के पत्थरों पर उत्कीर्ण ऐसी छाप अवश्य मिलती हैं, जिनके द्वारा अनुकरण करने की भावना प्रकट होती है और इसी को हम प्राचीन नृत्यलिपि कह सकते हैं। आगे चलकर विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा अपना-अपना नृत्यांकन प्रस्तुत करने के लिए विभिन्न प्रकार की रेखाओं और चिह्नों का प्रयोग किया गया, अतः नृत्यलिपि की कोई एक सर्वमान्य पद्धति आज तक उपलब्ध नहीं है।

अडवुओं का अभ्यास करने के लिए यदि विद्यार्थियों को नृत्य-लिपि का कुछ ज्ञान करा दिया जाय तो उसे नृत्य का अभ्यास करने में सुगमता रहती है। लेकिन इस सम्बन्ध में विशिष्ट गुरुओं द्वारा प्रचलित अपनी-अपनी स्वतन्त्र पद्धतिओं को अपनाना पड़ेगा अतः गुरु प्रदत्त मार्ग दर्शन प्राप्त करके तत्सम्बन्धी नृत्यलिपि का अनुसरण करना चाहिए। यदि विद्यार्थी अपने ढंग से नृत्यलिपि का अङ्कन करना चाहे, तो गुरु की आज्ञा से वैसा भी कर सकता है।

नृत्यलिपि के निर्माण में जिन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए, वे इस प्रकार हैं—हाथ और पैरों की स्थिति स्पष्ट होनी चाहिए, उन्हें संकुचित और प्रसारित करने वाले ग्राफ़ का समुचित प्रयोग किया जाना चाहिए। शारीरिक जोड़ों को दिखाते हुए मुद्राओं का सचालन ठीक प्रकार से ज्ञात होना चाहिए। इस सब के साथ नृत्यलिपि में ताल और लय की स्थिति भी स्पष्ट होनी चाहिए।

भरतनाट्यम् में विभिन्न अडवू एक प्रकार से नृत्यलिपि के प्रतीक हैं अतः उनके आधार पर चित्रांकन द्वारा नृत्यलिपि का विकास किया जा सकता है। स्वर की अभिव्यक्ति और शरीर की अभिव्यक्ति में बहुत अन्तर है। स्वराभिव्यक्ति को स्वरांकन द्वारा बताना जितना सरल है उतना ही कठिन नृत्यलिपि को प्रदर्शित करना है। इसीलिए विभिन्न गुरुओं ने नृत्यलिपि का सहारा न लेकर अडवुओं के प्रदर्शन की मौखिक परम्परा द्वारा ही नृत्य का शिक्षण देना उचित समझा और यही अब तक होता आया है। लेकिन भविष्य में कम्प्यूटर के कारण नृत्य की एक सर्वमान्य चिह्न प्रणाली का विकास अवश्य होगा, इसका हमें विश्वास है। अडवू स्वयं में नृत्यलिपि हैं, जिनके उच्चारण से विद्यार्थी के मस्तिष्क में नृत्य की आकृति स्वय उत्पन्न हो जाती है। उसे लिपिबद्ध करने के लिए गुरु उपदिष्ट मार्ग का अवलोकन करना ही श्रेष्ठ रहता है।

उत्तर भारतीय कथक नृत्य की पद्धति में कवित्त और मात्राओं के अनुसार नृत्य को आसानी से लिपिबद्ध कर लिया जाता है, लेकिन दक्षिण भारतीय भरतनाट्यम् में ऐसा अभी तक नहीं हो पाया है, जिसकी आज आवश्यकता है। यदि नृत्यलिपि का समुचित विकास हो सके, तो सम्पूर्ण नृत्य जगत उससे लाभान्वित होगा।

□ □ □

भरतनाट्यम् नृत्य से सम्बन्धित विभिन्न संस्थाओं का पाठ्यक्रम

अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल, मुम्बई-१ द्वारा ८७से

भरतनाट्यम्

प्रवेशिका : प्रथम वर्ष

पूर्णांक : ७५, न्यूनतम : २५
क्रियात्मक : ६०, शास्त्र (मौखिक) : १५

क्रियात्मक तथा शास्त्र

१. 'भरतनाट्यम्' की सभी शारीरिक क्रियाएँ (Exercises), पारम्परिक निर्धारित क्रियाएँ।

२. 'भरतनाट्यम्' के आड्ड (Basic Steps) दस : तीनों लयों में।

३. 'भरतनाट्यम्' के पारिभाषिक शब्द जैसे कि अडवू, कोरवै, जाति, काल, सबकी मौखिक जानकारी।

४. कर्नाटिक संगीत के सात-ताल और उनकी पाँच जातियों के नाम।

५. 'भरतनाट्यम्' शैली के प्रसिद्ध गुरु और प्रसिद्ध संस्थाओं की प्राथमिक जानकारी और नाम।

६. भारत की प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य पद्धतियों के नाम :—

कत्थक, मणिपुरी, कथकलि, ओडिसी, भरतनाट्यम्, मोहिनीअट्टम्—इनकी प्रादेशिक जानकारी।

प्रवेशिका : द्वितीय वर्ष

क्रियात्मक तथा शास्त्र

पूर्णांक : १२५, न्यूनतम : ४१

शास्त्र : ५०, क्रियात्मक : २५

१. 'भरतनाट्यम्' की सभी शारीरिक क्रियाएँ । विस्तार और दक्षता के साथ प्रस्तुत करना ।

२. 'भरतनाट्यम्' के सब आड्ड प्रथम वर्ष के तथा बाकी के तीनों लय में प्रस्तुत करना ।

३. अलारिपु-तिस्रम् ।

४. हस्तमुद्राएँ—संयुत और असंयुत—केवल नाम तथा प्रात्यक्षिक ।

५. निम्नलिखित पारभाषिक शब्दों की जानकारी ।

अलारिपु, जतिस्वरम्, शब्दम्, पदम्, तिल्लाना और प्रथम वर्ष के सभी पारिभाषिक शब्द । उनकी व्याख्याएँ ।

६. शिर सञ्चालन, दृष्टि सञ्चालन, ग्रीवा सञ्चालन—अभिनय दर्पण में निर्देशित ।

मध्यमा : प्रथम वर्ष

पूर्णांक : २००, न्यूनतम : ७०

शास्त्र : ७५ न्यूनतम : १९

क्रियात्मक : १२५ न्यूनतम : ४१

क्रियात्मक

१. त्रिकाल जाति-आदि ताल में ।

२. अलारिपु-मिस्रम् (७ मात्रा) में ।

३. जातिस्वरम्-गायन के साथ ।

४. प्रवेशिका पूर्ण तक के क्रियात्मक सब आड्ड, शुद्ध-अंग और दक्षता से प्रस्तुत करना ।

५. हाथ से ताली देकर पाँच जातियों के बोल बोलना ।

शास्त्र

१. 'भरतनाट्यम्' नृत्य का इतिहास ।

२. 'भरतनाट्यम्' कथकली, कत्थक, मणिपुरी, ओडिसी, कुच्चीपुड़ी, मोहिनी अट्टिम्, कुरवनो रासलीला—सबकी संक्षिप्त जानकारी ।

३. 'भरतनाट्यम्' शैली के सम्प्रदायों की जानकारी—
तंजोरबन्धु (Tanjore quartet), मीनाक्षी सुन्दरम् वडिवेलु पिल्लै चिन्नैया पिल्लै, पदनल्लुर सम्प्रदाय ।

४. 'भरतनाट्यम्' शैली के नर्तक :—
(१) बाला सरस्वती, (२) रुक्मिणीदेवी, (३) मृणालिनी साराभाई,
(४) यामिनी कृष्णमूर्ति, (५) कमला लक्ष्मण ।

५. प्रवेशिका पूर्ण तक के मौखिक शास्त्र को लिखने में पुनरावर्तन ।

मध्यमा : द्वितीय वर्ष

पूर्णांक : २५०, न्यूनतम : ९०

शास्त्र : १००, न्यूनतम : २५

क्रियात्मक : १५०, न्यूनतम :५४

क्रियात्मक

१. पद्म—दक्षिण भारत की किसी भाषा में—गायन के साथ ।
२. तिल्लाना—गायन के साथ ।
३. लोकनृत्य—अपने प्रदेश के ।
४. तिरमाणम्—अडवु पाँच जातियों में ।
५. हस्तों का विनियोग—संयुत ।
६. पहले किया हुआ सभी अभ्यास; दक्षता के साथ ।

शास्त्र

१. दक्षिण भारत की पद्धति की विशेष जानकारी ।
२. दक्षिण के केरल प्रदेश के लोकनृत्य की जानकारी ।
कोलाट्टम् कुम्भी, कैकोटिकली, कीलकली ।
३. भारतीय नृत्य का पुनरुत्थान काल ।
टैगोर, उदय शंकर, वल्लाथोल, रुक्मिणीदेवी, मेनका आदि के कार्य की जानकारी ।
४. देवदासी प्रथा का निर्मूलन तथा नृत्य विरोधी आन्दोलन ।
५. वर्तमान समाज में नृत्य का स्थान ।
६. सबकी विशेष जानकारी—नृत्य, नृत्त, नाट्य, तांडव, लास्य, अंग, प्रत्यग उपांग, अंगिकाभिनय, वाचिकाभिनय, आहार्याभिनय, सात्विकाभिनय ।

विशारद : प्रथम वर्ष

पूर्णांक : ३००, न्यूनतम : १०५

शास्त्र : १००, न्यूनतम : २५

क्रियात्मक : २००, न्यूनतम : ६७

क्रियात्मक

१. शब्दम्, श्लोकम्, पदम् ।

२. सात ताल और पाँच जाति; हाथ से ताली और खाली बताते हुए पारिभाषिक शब्दों को बोलने का अभ्यास ।

३. सभी विषयों की जाति को बोलना ।

४. दो लोकनृत्य ।

शास्त्र

१. असंयुत हस्तों के विनियोग ।

२. नवरस की जानकारी ।

३. नायक-नायिका भेद ।

४. वेषभूषा—अपनी शैली के नृत्य की जानकारी—आहार्य ।

५. 'भरतनाट्यम्' नृत्य के आनुषंगिक ग्रन्थों की जानकारी ।
सस्कृत के प्राचीन तथा आधुनिक युग के कुछ ग्रन्थों में उपलब्ध ।
'अभिनयदर्पण' तथा 'भरतार्णव' ग्रन्थों का अध्ययन ।

६. प्रादेशिक लोकनृत्य की जानकारी और उनके आयोजन का विचार ।

७. पाश्चिमात्य नृत्य—बैले की जानकारी ।

विशारद : द्वितीय वर्ष

पूर्णांक : ४००, न्यूनतम : १६०

शास्त्र : १५० न्यूनतम : ४५

क्रियात्मक : २५० (मौखिक २००+मंच प्रदर्शन : ५०) न्यूनतम : १००

शास्त्र

प्रश्नपत्र : प्रथम, अंक ७५

१. प्राचीन—नृत्य सम्बन्धी ग्रन्थों की जानकारी ।

२. मध्य-युगीन ग्रन्थों की जानकारी ।

३. नव रसों का पूर्ण ज्ञान ।

४. नायिका-भेद का विस्तृत ज्ञान ।

(क) धर्म भेद से नायिका, स्वकीया, परकीया, सामान्या ।
(ख) आयु विचार से नायिका : मुग्धा, मध्या, प्रौढा ।
(ग) प्रकृति अनुसार नायिका : उत्तमा, मध्यमा, अधमा ।
(घ) जाति भेद से नायिका : पद्मिनी, चित्रणी, शंखिनी और हस्तिनी ।
(ङ) परिस्थिति अनुसार अष्ट नायिका : खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा आदि ।

५. अन्य शास्त्रीय शैलियों का विस्तृत विवेचन तथा उनमें प्रयोग होनेवाली शाब्दिक परिभाषाओं का ज्ञान तथा अंग–वस्त्रों की जानकारी ।
६. लय और ताल का उद्गम तथा कत्थक नृत्य में महत्व ।
७. नाट्यशास्त्र तथा अभिनय दर्पण की मुद्राएँ, सिर संचालन, ग्रीवा तथा दृष्टि भेद में तुलना ।
८. भारतीय तथा पाश्चात्य नृत्यों में अन्तर ।
९. भारतीय रंगमंच : स्वरूप और परम्परा ।
१०. नृत्य, नाटिका, बैले, नौटंकी तथा ओपेरा में अन्तर तथा उनके नियम ।

प्रश्न पत्र द्वितीय, अंक : ७५

१. अपने तैयार नृत्य के संगीत का नोटेशन ।
२. नृत्य नाटिका (बैले) की संक्षिप्त जानकारी ।
३. नृत्य और स्वास्थ्य का सम्बन्ध, शारीरिक रचना की वैज्ञानिक जानकारी ।
४. रंगभूषा, वेषभूषा, किस तरह की जाएँ (पात्र के अनुसार) उसकी जानकारी ।
५. मुद्राओं की विशिष्ट जानकारी; जैसे—
   दशावतार, नवग्रह, देवता, बांधव, वर्ण इत्यादि ।
६. प्रकाश आयोजन, रंगभूमि की सजावट—सब का ज्ञान ।
७. शास्त्रीय नृत्य तथा चलचित्र के सम्बन्ध ।

क्रियात्मक

१. 'वर्णम्'—गायन के तथा पठन के साथ ।
२. 'नटुवांगम्'—अपने तैयार नृत्य के ।
३. अपने नृत्य-संगीत को लिपिबद्ध (नोटेशन) करना ।
४. अलारिपु, श्लोकम्, शब्दम्, पद्म और वर्णम् तथा तिल्लाना दक्षता के साथ प्रस्तुत करना ।
५. दो पद्म—किसी भी दक्षिण भारतीय भाषा में ।
६. दो लोकनृत्य । □□□

अखिल भारतीय गान्धर्व महाविद्यालय मण्डल-मुम्बई–१९८७ से

भरतनाट्यम्

प्रथम वर्ष

पूर्णांक ५००

शास्त्र २००

क्रियात्मक ३००

(क्रियात्मक २००+मंच १००)

शास्त्र

प्रश्नपत्र प्रथम अंक १००

१. भारतीय सौंदर्य शास्त्र :—विशेष रूप से भरत द्वारा निर्देशित रससिद्धान्त का विवेचन तथा उस सिद्धान्त पर अभिनव गुप्त की टीका का परामर्श ।

२. संस्कृत साहित्य का भारतीय नृत्यकला के साथ सम्बन्ध ।
(नाट्य, काव्य, पारिभाषिक ग्रन्थ आदि)

३. हिन्दू धर्म तथा भारतीय तत्त्वज्ञान की छः विचार धाराएँ ।
उनका ऐतिहासिक विकास और भारतीय नृत्य पर उनका प्रभाव ।

हिंदू धर्म

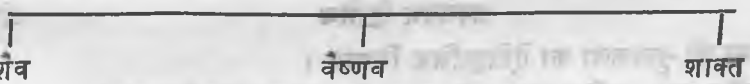

संगीत अलंकार

प्रश्नपत्र द्वितीय अंक १००

१. भारतीय कला का ध्येय ।

२. भारतीय कलाओं का अन्तर्गत परस्पर सम्बन्ध । शिल्प, चित्र (Iconography) वस्तुचित्र, नाट्य संगीत, नृत्य आदि ।

भरतनाट्यम्

अलंकार प्रथम वर्ष

अंक ३००

(क्रियात्मक २००+मंच प्रदर्शन १००)

क्रियात्मक

१. ताल वर्णम् (आदि, रूपक)।

२. अभिनय—जयदेव की अष्टपदी।

३. अष्ट रसों का अभिनय-निरूपण : भरत के श्लोकों पर आधारित।
(अध्याय—६ रसाध्याय, भाविकल्प, अध्याय ७)

४. किसी अपरिचित 'जाति' तथा स्वर की संहिता के आधार पर नृत्य रचना का आविष्कार (choreography)।

५. अपरिचित 'वर्णम्' अथवा 'पदम्' की पंक्ति के आधार पर नृत्य रचना को (choreograph) संचारी भाव के साथ प्रस्तुत करना।

अलंकार द्वितीय वर्ष

पूर्णांक ५००

शास्त्र २००

क्रियात्मक ३००

(क्रियात्मक २००+मंच १००)

शास्त्र

प्रश्नपत्र प्रथम अंक १००

१. नृत्य से सम्बन्धित किसी विषय पर, १००० से १५०० शब्दों तक ३ निबंध।

प्रश्नपत्र द्वितीय अंक १००

१. विश्व की नृत्यकला का ऐतिहासिक विकास।
प्राचीन नृत्य, आदिम नृत्य, लोकनृत्य, रंजनात्मक शास्त्रीय नृत्य।

(पौर्वात्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के दृष्टिकोण से उनके विकास का तौलनिक अभ्यास)

२. एशिया के प्राचीन समग्र रंगमंच की संकल्पना। ग्रीक रंगमंच के साथ उसकी तुलना तथा विकास की अवस्थाएँ।

अलंकार–द्वितीय वर्ष

क्रियात्मक

पूर्णांक ३००

(क्रियात्मक २००+मंच १००)

१. अपरिचित तथा संक्षिप्त पद्य पर आधारित नृत्य रचना (choreograpy), पल्लवी, अनुपल्लो और चरण के साथ ।

निर्धारित समय एक घण्टा ।

२. (i) अपरिचित त्रिकाल तिरमानम् पर नृत्य रचना ।
निर्धारित समय आधा घण्टा ।

(ii) किसी भी जाति में अडबुओं की जटिल रचना पर आधारित नृत्य रचना, तिरमानम् के साथ समापन (उसी समय नृत्य)
(पूर्व निर्धारित समय नहीं दिया जायेगा)

३. नटुवांगम् : परीक्षार्थी को उपर्युक्त रचनाओं को सम्बन्धित बोल का पठन करते हुए लकड़ी अथवा ताल से बजाकर प्रस्तुत करना ।

□ □ □

BHARATANATYAM

Theory

PRATHAMA

1. Origin of Indian Dance in Mythology.
2. Technical terms used in Bharata Natyam (Nritta, Nritya, Natya).
3. General introduction to the four main classical dance forms in India.
4. Basic knowledge of the South Indian Tala System.
5. Introduction to Abhinaya Darpan.
6. Contribution of the 4 brothers (Chinlah, Ponniah Sivanadan Vadivelu) to Bharata Natyam.
7. Ability to write all the bols and Talas learnt according to the South Indian Notation system.

PRACTICAL

I Year : 1. Exercises in Bharata Natyam.
2. Practice of all Adaus in three Kalas.
3. Drishti, Griva and Shirobhed.
4. Sapta Tal and Pancha Jatis.

II Year : 1. Hastas :-Asamyukta, Samyukta.
2. Nadai Adaus.
3. Alarippu Tisram.
4. Jethiswaram.
5. Tala knowledge of seven Talas in 5 Jatis with Clapping.

MADHYAMA THEORY

Revision of the theory perhin of the Previous Course

1. Brief study Natya Shastra, pertaining to dance.
2. Basic knowledge of the North Indian Talas.
3. Broad acquaintance of the story content of Mahabharat and Ramayana and the place of dance in it.

4. The different schools of Bharata Natyam-
5. Introduction to the Origin and history of Bharata Natyam.
6. Definitions of the terms–Tandava and Lasya in Bharata Natyam.
7. Life sketches of Rukmani Devi, Bala Saraswathi.
8. Ability to write all the Talas and bols learnt according to the South Indian Notation system.

PRACTICAL

III Year : 1. Hastas, Asamyukta, Viniyoga, Pada Bhedas, Mandalam.
2. Sabdam 1
3. Padam 2
4. Tillana 1
5. Kirtanam 1

VISHARAD PART I : THEORY

1. Explaination of the term Abhinaya and its four parts.
2. Comparative study of the four main classical dance forms in India.
3. Broad outline of the history of Indian Dance (Chola Pallava Period).
4. Stories of the dance of Shiva (Tandavas)
5. Study of Nava Ras.
6. Comparative study of the Tal system of North and South India.
7. Study of the lesser known classical dance Oddissi Mohini Attam and Kuchchipudi.
8. Ability to write all the Talas and bols learnt according to the South Indian Tal System along with the sketches.

PRACTICAL

IV Year : 1. Devatahastas, Jatiya Hastas, Bandhava Hastas.
2. Kirtanam or Javali or Padam I
3. Kshetriya Padam or Ashtapadi (Jaideva) I
4. Varnam I
5. Slokam I

VISHARAD PART II THEORY

1. Camparative study of Abhinaya Darpan and Natya Shastra.
2. Devadasi cult in Bharata Natyam.
3. Dances of Krishna (Ras Lila and Kaliya Mardan).

4. Nayak and Nayika Bhed in Indian Dance.
5. Renaissance in Indian Dance.
6. Detail study of the origin and history of Bharata Natyam.
7. Inroduction to the other relatively lesser known classical dances (Bhagwat Mela, Yakshagana and Chou).
8. Ability to write all the Bois and Talas learnt accord:ng to the South Indian Tal System.

PRACTICAL

V Year : 1. Dashavatara hastas and Navgraha.
2. Kavutwam 1
3. Jetiswaram 1
4. Shabdam 1
5. Javali or Padam 1
6. Kshetriya Padam or Ashtapadi 1
7. Tillana 1
8. Slokam 1

□ □ □

प्रयाग संगीत समिति, इलाहाबाद

भरतनाट्यम्

प्रथम वर्ष

क्रियात्मक परीक्षा १०० अंकों की तथा शास्त्र का एक प्रश्न-पत्र ५० अंकों का।

क्रियात्मक

१. घुंघरू बाँधकर अभ्यास करना अनिवार्य है।

२. निम्नलिखित १५ अडवु तथा उनके पद-संचालन प्रकारों (Steps) को ठाह, दुगुन तथा चौगुन लयों में हस्त तथा पद-संचालन द्वारा व्यक्त करना :—

१. तत् (Tatta)—५ प्रकार के अडवु पद संचालन (Steps)।

२. नत् (Natta)—६ प्रकार के अडबु पद-संचालन (Steps)।

३. ता तेई तेई ता (Ta Tai Tai Ta)—३ प्रकार के अडवु पद-संचालन (Steps)।

४. कुदित्तू मेत्तू (Kudittu Mettu)—४ प्रकार के अडवु पद-संचालन (Steps)।

५. तैया तैई (Taya Taiyi)—३ प्रकार के अडवु पद-संचालन (Steps)।

६. तत् तेई ता हा (Tat Tai Ta Ha)—४ प्रकार के अडवु पद-संचालन (Steps)।

७. तत् तेई तम (Tat Tai Tam)—३ प्रकार के अडवु पद-संचालन (Tteps)।

८. तधिंगनतम (Tadhingnatom)—३ प्रकार के अडबु पद-संचालन (Steps)।

९. कितत् कटारी कितातम (Kitata Katari Kitatom)—४ प्रकार के अडवु पद-संचालन (Steps)।

१०. तेई-तेई-दत्ता (Tait-tai-datta)—२ प्रकार के अडवु पद-संचालन(Steps)।

११. धितेईंदतातेई (Dhitai-datatai)—३ प्रकार के अडवु पद-संचालन (Steps)।

१२. मडी (Mardi)—३ प्रकार के अडवु पद-संचालन (Steps)।

१३. सरिक्कल (Sarikkal)—२ प्रकार के अडवु पद-संचालन (Steps)।

१४. तकिटा (Takita)—२ प्रकार अडवु पद-संचालन (Steps)।

१५. तेई तेई तेई तेई तेई तेई तेई धिधि तेई (Tai Tai Tai Tai Tai Tai tai Dhidhi Tai) का अडवु पद-संचालन (Steps)।

३. तिस्रम्, रूपकम्, चतुस्रम् अथवा आदि ताल को हाथ से ताली देकर बताना।

४. थट्टु-अडवु (Thattu-adavu) नट्टु (Nattu adavu) तथा मेत्तु-अडवु (Mettu Advu) का पूर्ण ज्ञान।

शास्त्र

१. भरतनाट्यम् के तालों में से तिस्रम्,रूपकम्, चतुस्रम् आदि ताल चम्पू या मिश्र-ताल का ज्ञान (३, ६, ८ और ७ मात्राओं (अक्षरों) के, अट्टाताल १४ मात्राओं (अक्षरों) का तथा जम्पू ताल १० मात्राओं (अक्षरों) का त्रिपुट-ताल के चतस्र-जाति का विशेष ज्ञान जैसे आदि-ताल ८ मात्रा और रूपक चतस्र जाति ६ मात्रा।

१. ताल की पाँच जातियों (तिस्र, चतस्र, खण्ड,मिश्र तथा संकीर्ण) तथा तीन लय (लघु, द्रुत और अणुद्रुत) का ज्ञान।

३. अडवु की परिभाषा। उपर्युक्त १५ प्रकार के अडवु तथा हर अडवु के पद-संचालन (Steps) के प्रकारों का पूर्ण ज्ञान।

४. भरत-नाट्यशास्त्र की २८ हस्त-मुद्राओं में से निम्नलिखित १० असंयुक्त-मुद्राओं का अर्थ सहित ज्ञान :—

पताका, त्रिपताका, अल्पद्म, कटकामुख, सूची, अर्धचन्द्र, शुकतुण्ड, मुष्टि, शिखर तथा मृगशीर्ष। □□

द्वितीय वर्ष

(जूनियर डिप्लोमा)

क्रियात्मक परीक्षा १०० अंकों की तथा शास्त्र का एक प्रश्न-पत्र ५० अंकों का। इस पाठ्यक्रम में प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम भी सम्मिलित है।

क्रियात्मक

१. अलारिपु– तीन लयों (ठाह, दुगुन और चौगुन) में करके बताना।

२. यति-स्वरम् की विभिन्न यतियों (जातियों) का अभ्यास।

३. प्रथम वर्ष के अडवु मुद्रा सहित करके बताना।

४. हाथ और सिर का साधारण संचालन तीन-लयों में।

शास्त्र

१. अलारिपु तथा यतिस्वरम् का अर्थ सहित पूर्ण ज्ञान।

२. सप्त-तालों का साधारण परिचय।

३. भरत-नाट्यशास्त्र की निम्न १० संयुक्त मुद्राओं के श्लोक तथा उनका अर्थ सहित पूर्ण ज्ञान :—

अंजलि, कपोत, पुष्पपुट, शिवलिंग, करकट, कटका-वर्धन, शंख, स्वस्तिक, शकट और चक्र।

४. रुक्मिणी देवी अरुण्डेल तथा बाला सरस्वती की जीवनी तथा भरतनाट्यम् में उनका योगदान।

५. भरतनाट्यम् का संक्षिप्त इतिहास।

६. ध्वनि : ध्वनि की उत्पत्ति, कम्पन, आन्दोलन, आन्दोलन-संख्या तथा नाद की संक्षिप्त व्याख्या।

□ □

तृतीय वर्ष

क्रियात्मक परीक्षा १०० अंकों की तथा शास्त्र का एक प्रश्न-पत्र ५० अंकों का। इस पाठ्यक्रम में पिछले वर्षों का पाठ्यक्रम भी सम्मिलित है।

क्रियात्मक

१. अलारिपु, यतिस्वरम् तथा शब्दम् को बसन्त, भैरवी तथा कल्याणी किसी एक राग में आदि-ताल ८ मात्रा में करने का अभ्यास।

२. कर्नाटिक ताल-पद्धति के चतुस्र-ताल, आदि-ताल, रूपकम्-ताल, त्रिस्र-ताल को हस्त द्वारा दक्षिण-भारतीय (कर्नाटिक) पद्धति में ताली लगाकर बताने का अभ्यास।

३. निम्नलिखित सिर-संचालन का श्लोक सहित ज्ञान :—

सम-शिर, उद्वाहित-शिर, अधोमुख-शिर, आलोलित-शिर,
धूत-शिर, कम्पित-शिर, परावृत्त-शिर, परवाहित-शिर।

४. निम्नलिखित दृष्टि-भेद का श्लोक सहित ज्ञान :—
आलोकित-दृष्टि, सांची-दृष्टि, प्रलोकित-दृष्टि, मीलित-दृष्टि, उल्लोकित दृष्टि, अनुवृत्त-दृष्टि, अवलोकित-दृष्टि ।

५. निम्नलिखित ग्रीवा-भेद का श्लोक सहित ज्ञान :—
सुन्दरी-ग्रीवा, तिरश्चीन-ग्रीवा, परिवर्तिता-ग्रीवा, प्रकंपित-ग्रीवा ।

शास्त्र

१. प्रथम तथा द्वितीय वर्षों के पाठ्यक्रमों का विशेष अध्ययन ।

२. शब्दम्—शब्द का अर्थ सहित पूर्ण ज्ञान ।

३. नव-रसों का पूर्ण ज्ञान ।

४. भरतनाट्य-शास्त्र को २४ असयुक्त मुद्राओं का श्लोक सहित अर्थ का ज्ञान ।

५. अभिनय-दर्पण को २८ असंयुक्त मुद्राओं का श्लोक सहित ज्ञान ।

६. आंगिक, वाचिक तथा आहार्य-अभिनय के भेद ।

७. द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम की १० संयुक्त मुद्राओं का किन-किन अर्थों में प्रयोग होता है, उसका ज्ञान ।

८. मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै, चोकलिंगम् पिल्लै तथा पुन्नैया पिल्लै की जीवनी तथा भरतनाट्यम् में उनका योगदान ।

९. नाद की तीन विशेषताएँ, नाद-स्थान, श्रुति, स्वर, स्वर के प्रकार सप्तक, सप्तक के प्रकार (मन्द्र, मध्य और तार) आदि के विषय में साधारण ज्ञान ।

□ □

चतुर्थ वर्ष

(सीनियर डिप्लोमा)

क्रियात्मक परीक्षा १०० अंकों की तथा शास्त्र का एक प्रश्न-पत्र ५० अंकों का। पिछले सभी वर्षों का पाठ्यक्रम भी सम्मिलित है ।

क्रियात्मक

१. प्रथम से तृतीय वर्षों के पाठ्यक्रम के अनुसार अलारिपु, यतिस्वरम्, शब्दम्, वर्णम्, पद-वर्णम्, चौक-वर्णम्, तन-वर्णम् आदि का क्रियात्मक ज्ञान ।

२. एक शब्दम् का त्रिपुट-ताल (७ मात्रा) में काम्भोजी या राग-मालिका में एक पद्म अथवा श्लोकम् के साथ अभ्यास ।

शास्त्र

१. वर्णम्, पद-वर्णम्, चौक-वर्णम्, तन-वर्णम् का पूर्ण ज्ञान ।

२. नवग्रह-हस्त का श्लोक सहित लिखना जैसे :—सूर्य-हस्त, चन्द्र-हस्त, कुंज-हस्त, बुद्ध-हस्त, गुरु-हस्त, शुक्र-हस्त, शनि-हस्त, राहु-हस्त, केतु हस्त तथा देव-हस्त ।

३. मण्डल के भेदों का श्लोक सहित पूर्ण ज्ञान जैसे:—स्थानक-मण्डलम् आयात-मंडलम्, आलीढ़-मंडलम्, प्रत्यालीढ़-मण्डलम्, प्रेषण-मण्डलम्, प्रेरित-मण्डलम्, पार्श्व-मण्डलम्, स्वास्तिक-मण्डलम्, मोटित-मण्डलम्, समशुचि-मण्डलम् आदि ।

४. स्थान भेद का श्लोक-सहित पूर्ण ज्ञान जैसे :—समपाद-स्थानम्, एकपाद-स्थानम्, नागबन्ध-स्थानम्, ओन्द्रक-स्थानम्, गरुड़-स्थानम्, ब्रह्म-स्थानम् आदि ।

५. उत्प्लावन-भेद का श्लोक सहित पूर्ण ज्ञान जैसे :—अलोगत-प्लावनम्, उत्प्लावन-कर्तरी, अश्व-प्लावनम्, मोटित-प्लावनम्, कृपाल-गोत-प्लावनम् ।

६. भ्रमरी लक्षणम् का श्लोक सहित पूर्ण ज्ञान जैसे:—उत्प्लुत-भ्रमरी चक्र-भ्रमरी, गरुड़-भ्रमरी, एकपाद-भ्रमरी; कुंचित-भ्रमरी, आकाश-भ्रमरी, अङ्ग-भ्रमरी आदि ।

७. चारी भेद का श्लोक सहित पूर्ण ज्ञान जैसे :—चलनचारी, चंक्रमण-चारी, शरणम्चारी, वेगिनीचारी, कुट्टनम्चारी, लुठितम्चारी, लोलितम्चारी विषम-संचारक-चारी आदि ।

८. गति भेद का श्लोक सहित पूर्ण ज्ञान जैसे :—हंस-गति, मयूरी-गति मृगी-गति, गज-गति, तुरंगिनी-गति, सिंहनी-गति, भुजंगनी-गति, मंडूकी-गति वीरा-गति, मानवी-गति आदि ।

९. निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों का पूर्ण ज्ञान :—
नृत्य, नाट्य, ताण्डव, लास्य, आरोह, अवरोह वर्ण, अलंकार, थाट, राग ।

१०. कर्नाटिक ताल-पद्धति का पूर्ण ज्ञान ।

११. चिन्नैया, पुन्नैया, शिवानन्द तथा बड़ीमेलु की संक्षिप्त जीवनी तथा भरतनाट्यम् में उनका योगदान ।

□ □

पंचम वर्ष

क्रियात्मक परीक्षा १०० अङ्कों की तथा शास्त्र का एक प्रश्न-पत्र ५० अंकों का। पिछले सभी वर्षों का पाठ्यक्रम भी सम्मिलित है।

क्रियात्मक

१. पद्म को करके दिखाने की क्षमता जैसे :—

कलाई थूकी (Kalai Thaoki), मञ्चो दिनामू (Manchi Dinamu), मथुरा नगारिलो (Mathura Nagarilo) तमारक्षा (Tamaraksha), रारसीता (Rara Sita), कृष्ण की वेगामे Krishna ki Vegame) एन-पल्लो-कोंदिर (En-Palli-Kondir)।

२. राग आनन्दभैरवी, यदुकुल खम्भोजी, हिंडोल-बसंत, यमन, मोहन में पद्म करने की क्षमता अथवा अपने गुरु द्वारा बताये गये राग पर पद्म करने की क्षमता।

३. चतुस्र जाति-त्रिपुटताल, तिस्र जाति-त्रिपुटताल, तिस्र जाति एक ताल, मिस्र जाति-एकताल में पद्म करने की क्षमता अथवा अपने गुरु द्वारा बताए गए ताल में पद्म करने की क्षमता।

४. तिल्लाना-आदि ताल अथवा रूपक करने की क्षमता।

५. जयदेव को अष्टपदी पर नृत्य करने की क्षमता।

६. ताण्डव और लास्य का एक-एक पदम्।

शास्त्र

१. पिछले सभी वर्षों के पाठ्यक्रम का विस्तृत अध्ययन।

२. दक्षिण-भारतीय लोक-नृत्य का पूर्ण ज्ञान।

३. भरतनाट्यम् का पूर्ण इतिहास।

४. भरतनाट्यम् के गुरुओं के पृथक्-पृथक् मतों का पूर्ण ज्ञान और उनका योगदान।

५. कुछ कर्नाटकी तथा उत्तर-भारतीय रागों का ज्ञान।

६. उत्तर-भारतीय ताल-पद्धति का साधारण ज्ञान।

७. भरतनाट्यम्, कथकली, मणिपुरी, उड़िसी तथा कत्थक-नृत्य-शैलियों का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन।

८. भरतनाट्यम् की रूप-सज्जा, वेशभूषा तथा रंगमंच-सज्जा (Stage-Setting) का पूर्ण ज्ञान।

९. भरतनाट्य में प्रयोग होने वाले वाद्यों का पूर्ण परिचय।

१०. संगीत (नृत्य) सम्बन्धी सामान्य विषयों पर लेख लिखने की क्षमता।

११. पाश्चात्य देशों के नृत्य का साधारण ज्ञान।

□ □

षष्ठम् वर्ष

(संगीत प्रभाकर)

क्रियात्मक परीक्षा २०० अङ्कों की तथा शास्त्र का एक प्रश्न-पत्र १०० अङ्कों का। पिछले सभी वर्षों का पाठ्यक्रम भी सम्मिलित है।

क्रियात्मक

१. अलारिपु, यतिस्वरम् शब्दम्, वर्णम् पदवर्णम् चौकवर्णम्, तनवर्णम् तिल्लाना, श्लोकम्, नटनम्-अड़िनार तथा जयदेव की अष्टपदी करने का पूर्ण अभ्यास।

२. पाठ्यक्रम के सभी तालों को हाथ से ताली देकर बोलने का अभ्यास।

३. कोई भी चार दक्षिण-भारतीय-लोकनृत्य तथा कोई भी चार उत्तर भारतीय-लोकनृत्य करने की क्षमता।

शास्त्र

१. पिछले सभी वर्षों के पाठ्यक्रम का विस्तृत अध्ययन।

२. तिल्लाना तथा नटनम्-अड़िनार का पूर्ण वर्णन सहित ज्ञान।

३. भरतनाट्यम् में जयदेव के श्लोकम् का पूर्ण ज्ञान।

४. नवरसों तथा नायक, नायिकाओं के भेदों का पूर्ण ज्ञान।

५. भरतनाट्यम् शास्त्र तथा अभिनय-दर्पण की सारी मुद्राओं के श्लोकों का अर्थ सहित ज्ञान।

६. दक्षिण-भारतीय तथा उत्तर-भारतीय लोक-नृत्यों तथा सामूहिक नृत्यों का ज्ञान।

७. दक्षिण-भारतीय तथा उत्तर-भारतीय रागों में भेद तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन।

८. दक्षिण-भारतीय तथा उत्तर-भारतीय ताल पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन।

९. सम्पूर्ण अडवु का विस्तार सहित पूर्ण ज्ञान।

१०. शृंगार रस के अवस्था भेद-भाव का लक्षण जैसे :—

चिंता, संकल्प, गुणकीर्तनम्, क्रियादेशः, तपः, लज्जात्यागः, उन्मादः, मूर्छा—इनका पूर्ण विवरण सहित ज्ञान।

११. नृत्यकला की उत्पत्ति शास्त्रीय-श्लोकम् के आधार पर।

१२. भरतनाट्यम् का क्रमिक विकास तथा भरतनाट्य-शास्त्र और अभिनय-दर्पण का परिचय तथा आलोचना।

१३. भरतनाट्यम् में प्रयुक्त सभी तालों का उनकी पाँचों जातियों सहित पूर्ण ज्ञान।

१४. करण, रेचक और अङ्गहार का पूर्ण ज्ञान।

१५. विष्णुदिगम्बर तथा भातखण्डे ताल-लिपि पद्धतियों का ज्ञान।

१६. सगीत (नृत्य) सम्बन्धी सामान्य विषयों पर निबन्ध लिखने की क्षमता जैसे :—भरतनाट्यम् की उपयोगिता, भरतनाट्यम् का लोकप्रिय होने का कारण, भरतनाट्यम् और आधुनिक-युग नृत्यकारों के गुण तथा दोष, प्रचलित भारतीय शास्त्रीय-नृत्यों में पारस्परिक भेद, नृत्य में कुतप अथवा वृन्दवादन (Orchestra) की उपयोगिता, नृत्य में वेषभूषा और रूपसज्जा की आवश्यकता, भारतीय संगीत में नृत्य का स्थान आदि।

□ □ □

प्राचीन कला केन्द्र, चण्डीगढ़ १९६०

एकादश अध्याय

भरतनाट्यम् नृत्य

Bharat Natyam Nritya

प्रारम्भिक प्रथम खण्ड

(Prarambhik Part I)

पूर्ण संख्या १०० (शास्त्र–२५ क्रियात्मक-७५)

शास्त्र (Theory) **मौखिक** (Oral)

१. पुराण में भारतीय नृत्य का उद्गम।
२. भरतनाट्यम् में तालों के नाम तथा जाति।
३. तीन मात्राओं से रचित (तिस्र जाति) दक्षिण भारतीय तालों का ज्ञान।
४. पहली पाँच असंयुक्त हस्त मुद्राओं का ज्ञान।

क्रियात्मक (Practical)

१. प्रारम्भिक शारीरिक चलन।
२. दादरा अथवा कहरवा ताल में कुछ नृत्य रचनाएँ।
३. एक गुण तथा द्विगुण लय में आडव १ से १४ तक। □ □

प्रारम्भिक पूर्ण

[Prarambhik Final]

[Junior Diploma]

पूर्ण संख्या १०० (शास्त्र–२५, क्रियात्मक–७५)

शास्त्र (Theory) **मौखिक** (Oral)

१. भरतनाट्यम् में तालों की जाति का ज्ञान।

२. निम्नलिखित का ज्ञान—
(क) पाँच मात्राओं के रचित ताल ।
(ख) सात मात्राओं के रचित ताल ।
३. प्रथम दस असंयुक्त हस्त मुद्राओं का ज्ञान ।

क्रियात्मक (Practical)

१. १५ नम्बर से २३ तक आड़व ।
२. निम्नलिखित तालों में नृत्य रचना—
(क) पाँच मात्राओं के ताल ।
(ख) सात मात्राओं के रचित ताल ।
३. चार प्रकार के ग्रीवा चलन का ज्ञान ।

□ □

नृत्य भूषण प्रथम खण्ड

Nritya Bhushan (Part I)

पूर्ण संख्या : १५० (शास्त्र–५०, क्रियात्मक–१००)

शास्त्र (Theory)

१. भरत नाट्यम् का उद्गम तथा विकास ।
२. एक गुण तथा द्विगुण लय में दक्षिण भारतीय तालों का उनकी जाति के अनुसार ज्ञान ।
३. चतस्र जाति का त्रिपुट, तिस्र जाति एक तालम् ।
४. सभी एकाकी हस्त मुद्राओं (असंयुक्त हस्त) का ज्ञान ।
५. भारत के मुख्य शास्त्रीय नृत्य प्रकारों का सामान्य ज्ञान ।

क्रियात्मक (Practical)

१. २४. नम्बर से ५० तक आड़व ।
२. एकाकी हस्त मुद्रा (असंयुक्त हस्त) का क्रियात्मक ज्ञान ।
३. शिर संचालन का क्रियात्मक प्रदर्शन ।
४. निम्नलिखित में आधुनिक नृत्य ।
(क) सात मात्राओं के रचित ताल ।
(ख) दस मात्राओं के रचित ताल ।
५. दक्षिण भारतीय स्वर लिपि पद्धति के अनुसार सीखे सभी बोल तथा ताल लिखने की योग्यता ।

□ □

नृत्य भूषण द्वितीय खण्ड

Nritya Bhushcn (Part II)

पूर्ण संख्या–१५० (शास्त्र–१००, क्रियात्मक-५०)

शास्त्र (Theory)

१. निम्नलिखित में से किन्हीं दो का जीवन परिचय—
   (क) बाला सरस्वती ।
   (ख) रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ।
   (ग) शिवन्नदम् ।
२. भरत नाट्यम् में प्रयुक्त संगीत तथा वाद्य यन्त्रों का ज्ञान ।
३. भरत नाट्यम् में देवदासी परम्परा ।
४. भरत नाट्यम् के विकास का इतिहास ।
५. आडव तथा अल्लारिपु के बोल ।

क्रियात्मक (Practical)

१. नम्बर ५१ से ७८ तक आडव ।
२. अलारिपु (क) तिस्र जाति एकतालम् अथवा (ख) तिस्र जाति रूपक ।
३. सयुक्त हस्त मुद्राओं का क्रियात्मक ज्ञान ।
४. जतिस्वरम् का अभ्यास ।
५. रेखा चित्रों के साथ दक्षिण भारतीय स्वर लिपि पद्धति के अनुसार सीखे गए तालों तथा बोलों को लिपिबद्ध करने का ज्ञान ।

नोट—पूर्व वर्षों का पाठ्यक्रम संयुक्त रहेगा ।

□ □

नृत्य भूषण पूर्ण

Nritya Bhushan Final
(Senior Diploma)

पूर्ण संख्या–१५० (शास्त्र–५०, क्रियात्मक–१००)

शास्त्र (Theory)

१. भरतनाट्यम् तथा कत्थक शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन ।
२. नृत्य, नृत्त तथा नाट्य का ज्ञान ।
३. दक्षिण भारतीय ताल पद्धति का प्रारम्भिक ज्ञान ।

४. निम्नलिखित का जीवन इतिहास तथा योगदान :—
(क) स्व० मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै
(ख) वादेवेलू
(ग) चिन्नैया
(घ) पुन्नैया

५. परिभाषा :—नटराज, लास्य, तांडव, लघु, द्रुतम्, अनुद्रुतम्, आडव ।

क्रियात्मक (Practical)

१. तिस्रजाति त्रिपुट ताल के साथ किसी दक्षिण भारतीय राग में एक जातिस्वरम् ।
२. शब्दम्
तिस्र जाति रूपक ताल के साथ राग मालिका
३. दक्षिण भारतीय पद्धति में कोई लोक नृत्य
४. सप्त ताल, पंच जातियों का पूर्ण ज्ञान
५. दक्षिण भारतीय स्वरलिपि पद्धति के अनुसार सीखे हुए ताल तथा बोल लिखने की योग्यता ।

नोट—पूर्व वर्षों का पाठ्यक्रम संयुक्त रहेगा ।

□ □

नृत्य विशारद प्रथम खण्ड

Nritya Visharad (Part I)

चतुर्थ वर्ष (4th year)

पूर्ण संख्या–१५० (शास्त्र–५०, क्रियात्मक–१००)

शास्त्र (Theory)

१. प्राचीन काल से मध्य युग तक भारतीय नृत्यों का इतिहास ।
२. संगीत तथा नृत्य में तालों की उपयोगिता ।
३. नव रस का अध्ययन ।
४. दक्षिण भारतीय संगीत तथा नृत्य पर पाश्चात्य नृत्य कला संस्कृति का प्रभाव ।
५. भरतनाट्यम् तथा अन्य दक्षिण भारतीय नृत्यों की शैली के विकास का ज्ञान ।
६. भारतीय नृत्य में नायक तथा नायिका ।

७. शिव (तांडव) नृत्य की कथाएँ।
८. अभिनय तथा इसके चार भागों का वर्णन।

क्रियात्मक (Practical)

१. वर्णम्

चतुस्रजाति त्रिपुट ताल अथवा चतुस्रजाति रूपक ताल के साथ।

२. किन्हीं तीन राज्यों के लोक नृत्य।

३. श्लोकम्

राग आसावरी अथवा हंसध्वनि तिस्र जाति त्रिपुट ताल में।

४. लास्य तथा तांडव जाति में एक पद्म।
५. देवी-देवता हस्त, जातियाँ हस्त, इत्यादि।
६. कीर्तनम् अथवा पद्म का व्यावहारिक ज्ञान।
७. पद्म अथवा अष्टपदी (जयदेव)
८. दक्षिण भारतीय स्वरलिपि पद्धति के अनुसार सीखे हुए ताल तथा बोल लिखने की योग्यता।

□ □

नृत्य विशारद पूर्ण

(Nritya Visharad Final)

पंचम वर्ष (Fifth year)

पूर्ण संख्या–३००, (शास्त्र १००, प्रथम पत्र–५०, द्वितीय पत्र–५०, क्रियात्मक २००)

शास्त्र (Theory)

प्रथम पत्र (First Paper)

१. शास्त्रीय तथा लोक नृत्य में तुलना।
२. हिन्दुस्तानी तालों तथा दक्षिण भारतीय तालों का तुलनात्मक अध्ययन।
३. प्राचीन काल से आधुनिक युग तक भारतीय नृत्यों का विकास।
४. विश्व विख्यात भारतीय नर्तकों का जीवन इतिहास।
५. भरतनाट्यम्, कथकली, मणिपुरी तथा कथक शैलियों की वेशभूषा तथा रंग भूषा का ज्ञान।

६. समूह तथा बैले नृत्यों की सरचना का ज्ञान ।
७. भरतनाट्यम् शैली के पारिभाषिक शब्दों का अध्ययन ।
८. भारतीय नृत्य की चार प्रमुख शैलियों का अध्ययन ।
९, ओडिसी, मोहिनी अट्टम् तथा कुचीपुड़ी का ज्ञान ।
१०. 'अभिनय दर्पण' तथा 'नाट्य शास्त्र' का तुलनात्मक अध्ययन ।
११. कृष्ण (रासलीला) के नृत्य तथा कालिय-दमन ।
१२. भारतीय नृत्यों में पुनर्जागरण ।
१३. अन्य शास्त्रीय नृत्यों (भागवत मेला, यक्षगण इत्यादि का ज्ञान ।)

द्वितीय पत्र (Second Paper)

१. दक्षिणी ताल पद्धति का अध्ययन तथा गुरु, लघु, द्रुत तथा अनुद्रुत के वर्णन के साथ हिन्दुस्तानी ताल का प्रयोग ।
२. २३ हस्त मुद्राओं का ज्ञान तथा नृत्य में उनका प्रयोग ।
३. प्राचीन हस्त मुद्राओं का विस्तृत अध्ययन ।
४. भारतीय मंच सज्जा, प्रकाश तथा रंगभूषा आदि के इतिहास का ज्ञान ।
५. भरतनाट्यम् के प्रसंग में लास्य तथा ताण्डव की विभिन्न विशेषताओं का ज्ञान ।
६. निम्नलिखित का अध्ययन :—
नृत्य नाटिका, अपेरा, बैले ।
७. समय-समय पर भरतनाट्यम् में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न वाद्ययन्त्रों का सर्वेक्षण ।
८. भरतनाट्यम् नृत्य से सम्बन्धित प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन ।
९. दशावतारों का अध्ययन ।
१०. नए विषयों पर नए नृत्यों को रचना की योग्यता ।
११. निबन्ध लेखन की योग्यता ।
१२. आधुनिक नृत्य कलाकारों के जीवन चरित्र तथा योगदान ।

क्रियात्मक (Practical)

१. खण्ड जाति के रूपक ताल में बसंत राग में एक जाति स्वरम् ।
२. तिल्लाना—चतस्र जाति के त्रिपुट ताल में अथवा चतस्र जाति के रूपक ताल में ।
३. तांडव जाति पद्धति का एक पदम् ।

४. दक्षिण भारत के विशेष उत्सव के अवसर पर नाचा जाने वाला नृत्य ।
५. पाँच भारतीय लोक नृत्यों का व्यावहारिक ज्ञान ।
६. तिल्लाना की जाति तथा वर्णम् के वर्णन का व्यवहारिक ज्ञान ।
७. एक श्लोकम् दशावतार तथा नवग्रह का क्रियात्मक प्रदर्शन ।
८. पढ़न्त का अभ्यास ।

नोट :—पूर्व वर्षों का पाठ्यक्रम संयुक्त रहेगा ।
मंच प्रदर्शन :—परीक्षार्थी को ४५ मिनट तक उत्तम प्रदर्शन करना होगा ।

□ □

नृत्य भास्कर प्रथम खण्ड

Nritya Bhaskar (Part I)

षष्ठ वर्ष Sixth year

पूर्ण संख्या-४००, (शास्त्र प्रथम पत्र १००, द्वितीय पत्र-१००)

(क्रियात्मक-१२५, मंच प्रदर्शन ७५)

शास्त्र (Theory)

प्रथम पत्र (First Paper)

१. रामायण, महाभारत तथा बुद्ध काल के नृत्यों तथा नृत्य नाटकों का विस्तृत ज्ञान ।

२. भारतीय तथा पश्चिमी नृत्यों का तुलनात्मक अध्ययन तथा भरतनाट्यम् पर पश्चिमी नृत्यों का प्रभाव ।

३. प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक युगों में विद्यमान भरतनाट्यम् का विस्तृत अध्ययन ।

४. प्राचीन मध्यकालीन तथा आधुनिक नृत्य रचनाओं के सिद्धांत तथा विशेषताएँ ।

५. भरतनाट्यम् शैली के क्षेत्र में विभिन्न घरानों की उत्पत्ति, विकास तथा विशेषताएँ ।

६. भरतनाट्यम् शैली से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्दों का विस्तृत अध्ययन ।

७. प्राचीन तथा आधुनिक नृत्यों के प्रकार, शैली से सम्बन्धित विस्तृत तत्त्व ।

८. विभिन्न युगों में भरतनाट्यम् नृत्य शैली से सम्बन्धित प्राचीन ग्रन्थों का विस्तृत अध्ययन ।

९. दक्षिण भारत के लोकनृत्यों का विस्तृत अध्ययन।

१०. भारतीय संस्कृति तथा लोक नृत्यों से सम्बन्धित निबन्ध लेखन की योग्यता।

११. वैदिक युग में नृत्य कला के स्थान का विस्तृत अध्ययन।

द्वितीय पत्र (Second Paper)

१. प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक युगों में भरतनाट्यम् का प्रगतिशील विकास।

२. असंयुक्त तथा संयुक्त हस्त मुद्राओं के प्रयोगों का विस्तृत ज्ञान।

३. एकाकी नृत्य, युगलनृत्य तथा समूह नृत्य तैयार करने के सिद्धान्त।

४. शास्त्रीय, सुगम तथा लोक नृत्यों से सम्बन्धित लय।

५. नृत्यों की विभिन्न शैलियों का इतिहास, उनकी तुलना तथा विशेषताएँ।

६. भारतीय तथा पश्चिमी स्वरलिपि पद्धति का ज्ञान।

७. भरतनाट्यम् के विकास में भारतीय नरेशों की भूमिका का विस्तृत अध्ययन।

८. आम लोगों पर भारतीय लोक नृत्यों के प्रभाव का अध्ययन।

९. घुँघरू की उत्पत्ति तथा विकास और नृत्य में इसका महत्व।

१०. निम्नलिखित का विस्तृत ज्ञान।

(क) शिरोभेद।

(ख) चक्षु-भेद।

(ग) ग्रीवा-भेद।

११. निम्नलिखित का ज्ञान—

करण, नृत्त, हस्त, रेचित, पिण्डी, तांडव, ताल, पुष्पपुट तथा कलाक्षेत्र।

१२. कर्नाटिकी ताल पद्धति का विस्तृत अध्ययन, इसके विभिन्न पहलू, कर्नाटिकी तथा उत्तरी ताल पद्धति में तुलना, कर्नाटिकी ताल पद्धति की स्वरलिपि लिखने का ज्ञान।

क्रियात्मक (Practical)

१. किसी भी सप्त ताल के साथ जातिस्वरम् का विभाजन जो तिस्र जाति अथवा चतुस्र जाति में होना चाहिए।

२. दक्षिण भारतीय नृत्यों की अन्य शैलियों जैसे :— कुचीपुड़ी अथवा मोहिनी अट्टम् का क्रियात्मक ज्ञान।

३. दक्षिण भारतीय लोक नृत्य जैसे :— जानेरी अथवा ओनम्।

४. भरतनाट्यम् में 'माखन चोरी' अथवा 'पूतना वध' का प्रदर्शन।

५. दक्षिण भारतीय तालों की मात्राओं के विभाजन के अनुसार उत्तर भारतीय तालों को बोलों में बदलना।

६. निम्नलिखित नृत्य शैलियों में किसी एक के क्रियात्मक प्रदर्शन की योग्यता— मणिपुरी अथवा कथक।

७. मध्य भारत तथा उत्तरी भारत के कुछ लोक नृत्यों के प्रदर्शन का ज्ञान।

८. आधुनिक नृत्यों के प्रदर्शन की क्षमता।

९. अंग, प्रत्यंग तथा उनके उपांगों का क्रियात्मक प्रदर्शन।

१०. किसी एक पद्धति में नृत्य—

(क) उदयशंकर नृत्य शैली।

(ख) आधुनिक नृत्य।

११. अंगों व अंगहारों के उनके समस्त प्रकारों सहित प्रदर्शन की क्षमता।

१२. निम्नलिखित नृत्य भागों को कुशलता पूर्वक करने का अभ्यास :— अलारिप्पु, जतिस्वरम्, शब्दम्, वर्णम्, पदम्, कीर्तनम् तथा श्लोकम्।

नोट :—पूर्व वर्षों का पाठ्यक्रम संयुक्त रहेगा। परीक्षार्थी को ४५ मिनट तक मंच पर पाठ्यक्रम में निर्धारित नृत्य का प्रदर्शन करना होगा।

□ □

नृत्य भास्कर पूर्ण

Nritya Bhaskar Final

सप्तम वर्ष (Seventh Year)

पूर्ण संख्या–४०० (शास्त्र प्रथम पत्र–१००; द्वितीय पत्र–१००; क्रियात्मक–१२५; मंच प्रदर्शन ७५)

शास्त्र (Theory)

प्रथम पत्र (First Paper)

१. मंच प्रकाश के उद्गम तथा विकास का इतिहास तथा मंच प्रकाश का नृत्य से सम्बन्ध। प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक युगों में मंच प्रकाश में विभिन्न सुधार तथा परिवर्तन।

२. नृत्य, नाट्य तथा नृत्तों में तुलना। नाट्य का उद्गम। मानवीय जीवन के साथ नृत्य, नाट्य तथा नृत्त का सम्बन्ध तथा भरतनाट्यम् में इसका महत्त्व।

३. लास्य तथा ताण्डव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा आलोचनात्मक अध्ययन, इनके विभिन्न भेद, इनके उपयोग तथा मानवीय जीवन पर इनका प्रभाव, इनकी विशेषताएँ तथा भरतनाट्यम् से इनका सम्बन्ध।

४. (क) नृत्य में पोशाक का स्थान तथा प्रभाव, पोशाक तथा भाव से सम्बन्ध।

(ख) भरतनाट्यम् में प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक युगों में परिवर्तन तथा किन कारणों से परिवर्तन हुए।

(ग) प्राचीन, मध्यकाल तथा आधुनिक युगों में प्रयोग की गई रंगभूषा तथा पोशाक का विस्तृत ज्ञान।

५. प्राचीन, मध्यकाल तथा आधुनिक युगों में मंच के उद्गम तथा विकास का विस्तृत अध्ययन तथा मंच की आवश्यकता।

६. प्राचीन मध्यकालीन तथा आधुनिक युगों में भरतनाट्यम् से सम्बन्धित ग्रन्थों का आलोचनात्मक अध्ययन। इन कालों के विख्यात भरतनाट्यम् कलाकारों के जीवन चरित्र।

७. भारतीय शास्त्रीय नृत्यों का तुलनात्मक अध्ययन, उनकी उत्पत्ति तथा विशेषताएँ।

८. भारत के लोक नृत्यों का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन तथा लोगों के जीवन में उनका महत्व।

९. (क) भरतनाट्यम् में वाद्यवृन्द यन्त्र का स्थान तथा महत्व।

(ख) वाद्यवृन्द यन्त्र का सिद्धान्त।

(ग) भरतनाट्यम् में वाद्य वृन्द यन्त्र की आवश्यकता।

(घ) सुधार के सुझाव।

१०. घुँघरुओं का उद्गम तथा विकास, नृत्य में घुँघरुओं का स्थान, घुँघरुओं से उत्तम प्रभाव लेने के साधन।

११. बैले, ओपेरा, रासलीला, अभिनय आदि का विस्तृत तथा आलोचनात्मक अध्ययन।

१२. मिश्र से भारत तक देवदासी परम्परा का ज्ञान।

१३. भरतनाट्यम् के विभिन्न घरानों का विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन।

१४. भरतनाट्यम् नृत्य के प्रसंग में भारतीय नृत्य में प्राचीन तथा ऐतिहासिक परम्पराओं का विस्तृत अध्ययन।

१५. नृत्य की कला से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर निबन्ध लेखन का ज्ञान।

१६. नन्दिकेश्वर द्वारा प्रतिपादित 'दश अवतार' अथवा 'दशगति' का ज्ञान।

१७. अङ्गहार का ज्ञान, इसके विभिन्न प्रकार तथा भरतनाट्यम् नृत्य में इसका महत्व।

द्वितीय पत्र (Second Paper)

१. अभिनय के विभिन्न पहलुओं की परिभाषा, अभिनय तथा नृत्य में तुलना।

२. (क) नृत्य का चित्रकला, मूर्तिकला तथा अन्य ललित कलाओं से सम्बन्ध।

(ख) भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के सम्बन्ध में अजन्ता तथा एलोरा की गुफाओं की चित्रकला तथा मूर्तिकला का अध्ययन।

३. रस तथा भाव में सम्बन्ध, मानव जीवन पर इनका प्रभाव।

४. पश्चिम के विख्यात नृत्यों का इतिहास, उनकी विशेषताएँ तथा उनके निपुण कलाकारों के नाम, उनके जीवन चरित्र। पश्चिमी नृत्यों में वाद्य वृन्द का स्थान। पश्चिमी नृत्यों में भावों के प्रदर्शन, ताल तथा लय का महत्व।

५. (क) भरतनाट्यम् नृत्य शैली के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत तथा आलोचनात्मक अध्ययन।

(ख) भरतनाट्यम् में रस तथा भाव का स्थान।

(ग) भरतनाट्यम् में मंच, मंच प्रकाश, वृन्द वाद्य तथा पोशाक की आवश्यकता।

(घ) भरतनाट्यम् तथा कत्थक नृत्य शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन।

६. (क) मणिपुरी नृत्य शैली का विस्तृत अध्ययन।

(ख) मणिपुरी नृत्य शैली की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, रस, भाव, मुद्रा, पोशाक, रंग-भूषा, मंच प्रकाश आदि।

(ग) वाद्य वृंद की पृष्ठभूमि।

७. मणिपुरी तथा भरतनाट्यम् नृत्य शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन।

८. (क) कथकली नृत्य शैली का विस्तृत अध्ययन, ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि, शैली, रस, भाव, मुद्रा, मंच प्रकाश, रंग भूषा, वृन्द, पृष्ठ भूमि आदि।

(ख) कथकली तथा भरतनाट्यम् नृत्य शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन।

९. (क) आधुनिक नृत्यों के उद्गम तथा विकास और उनके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन।
आधुनिक नृत्यों में रस तथा भाव का स्थान।

(ग) पार्श्व संगीत का अध्ययन, आधुनिक नृत्यों में इसकी आवश्यकता तथा महत्व।

१०. भारतीय नृत्य में प्रयुक्त होने वाली हस्त मुद्राएँ, विभिन्न नृत्यों में इनका प्रयोग, रस तथा भाव के साथ इनका सम्बन्ध।

११. चारी की परिभाषा, इसके विभिन्न प्रकार तथा विभिन्न नृत्यों में इनका महत्व; रस, भाव से सम्बन्ध तथा भरतनाट्यम् नृत्य में महत्व।

१२. मण्डल की परिभाषा, विभिन्न नृत्यों में इसके विभिन्न पहलू तथा विभिन्न नृत्यों में इसका महत्व और रस, भाव से सम्बन्ध तथा भरतनाट्यम् नृत्य में महत्व।

१३. नायक तथा नायिका भेद, उनमें अन्तर तथा भरतनाट्यम् नृत्य में महत्व।

१४. नई स्वरलिपि पद्धति निर्माण करने के सुझाव।

१५. आधुनिक भारतीय नृत्य में कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा उदयशंकर के योगदान का ज्ञान।

१६. आधुनिक नृत्य कला के क्षेत्र में पूर्व जागरण आन्दोलन का विस्तृत अध्ययन।

क्रियात्मक (Practical)

१. राग आसावरी अथवा अड़ाना में श्लोकम् की रचना।

२. दक्षिण भारतीय कुचीपुड़ी नृत्य में अलंकरण का ज्ञान तथा उसका 'अलारिप्पु' से अन्तर।

३. स्वर यति तथा जति स्वरम् का पूर्ण ज्ञान तथा इनकी प्रमुख विशेषताएँ।

४. कर्ण तथा अङ्गहार का विस्तृत ज्ञान।

५. कुचीपुड़ी नृत्य के कुछ भाग का प्रदर्शन।

६. कवि जयदेव रचित कुछ भक्ति गीतों के साथ नृत्य प्रदर्शन ।

७. मन भजन राधिका अथवा सती की मृत्यु रचना पर भरतनाट्यम् नृत्य का प्रदर्शन ।

८. कृष्ण भीगानी बारी गीत के साथ एक पदम् ।

९. भरतनाट्यम् नृत्य तथा लास्य और ताण्डव में प्रयुक्त सभी हस्त मुद्राओं का क्रियात्मक प्रदर्शन ।

१०. अभिनय के विभिन्न भागों का कुशलता से प्रदर्शन ।

११. नायक तथा नायिका के भेदों का क्रियात्मक प्रदर्शन ।

१२. विभिन्न रसों तथा भावों को प्रदर्शित करने में निपुणता ।

१३. निम्नलिखित में से कोई एक नृत्य शैली प्रदर्शित करने की योग्यता ।
कथकली अथवा मणीपुरी ।

१४. विभिन्न राज्यों के लोकनृत्यों के पाँच प्रकार प्रदर्शित करने की योग्यता—

नोट :—पूर्व वर्षों का पाठ्यक्रम संयुक्त रहेगा ।

मंच प्रदर्शन—परीक्षार्थी को ४५ मिनट तक मंच पर अच्छा नृत्य प्रस्तुत करना होगा ।

□ □ □

21809

महिला संगीत अंक—लेख व स्वर० 200/-
मुहम्मद रफ़ी अंक–जीवनी व स्वरांकन 200/-
संगीत : सूफ़ी इनायत खाँ–वैज्ञानिक लेख 150/-
'संगीत' संस्मरण अंक–रोचक किस्से 200/-
'संगीत' रजत जयंती अंक–20 निबंध तथा 2000 संगीत-ग्रंथों की सूची 200/-
विश्व संगीत अंक—35 निबंध 200/-
संगीत परीक्षा अंक—परीक्षोपयोगी 200/-
संगीत शिक्षा अंक—संगीत शिक्षा 200/-
संगीत संस्था अंक—संगीत संस्थाओं एवं कलाकारों के पते व परिचय 200/-
संगीत शोध अंक—रिसर्च की दिशाएँ 200/-
संगीत कथा अंक—सांगीतिक कथाएँ 200/-
संगीत शोध लेख अंक—शोधपूर्ण लेख 200/-
काका हाथरसी स्मृति अंक— 200/-
गुरमति संगीत अंक–पंजाबी संगीत 200/-
पॉप म्यूज़िक अंक—लेख व जीवनियाँ 200/-
आवाज़ सुरीली कैसे करें—स्वर की मधुरता के लिए उपाय व औषधियाँ 125/-
पाश्चात्य संगीत-शिक्षा—विदेशी स्टाफ़ नोटेशन की विधिवत् सचित्र शिक्षा 125/-
A Guide to Indian Music (Eng.) 125/-
ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा 80/-

वाद्य संगीत (Instrumental Music)

वाद्यवादन अंक-विभिन्न वाद्यों की शिक्षा 200/-
जलतरंग अंक—जलतरंग शिक्षा 200/-
सं० ताल परिचय–1 (हाईस्कूल तक) 40/-
सं० ताल परिचय–2 (चतुर्थ वर्ष तक) 50/-
तबला अंक—शोधपूर्ण सचित्र लेख 200/-
ताल अंक—सचित्र तबला-शिक्षा 200/-
ताल प्रकाश–एम. ए. तक पूरा कोर्स 150/-
तबले पर दिल्ली और पूरब— एम. म्यूज. तक का शास्त्र व क्रियात्मक 125/-
तबला गायन प्रैक्टीकल नोट बुक 50/-
तालबोध—विद्यार्थियों के लिए उपयोगी 50/-
ताल तरंग अंक 200/-
कायदा और पेशकार—क्रियात्मक 50/-
अप्रचलित कायदे और गतें—तबले पर उच्चस्तरीय क्रियात्मक सामग्री 60/-
मृदंग अंक–शोधनिबंध व सचित्र शिक्षा 200/-
सितार शिक्षा–सचित्र शिक्षा व गत-तोड़े 200/-
सितार मालिका—वर्ष 1 से 8 तक 150/-
वेला विज्ञान–सचित्र वॉयलिन-शिक्षा 200/-
बैंजो मास्टर—सचित्र शिक्षा व धुनें 70/-
गिटार मास्टर—सचित्र शिक्षा व धुनें 70/-
म्यूज़िक मास्टर–हारमोनियम, तबला और बाँसुरी शिक्षा की सरल पुस्तक 70/-
बाँसुरी शिक्षा—थ्यौरी व प्रैक्टीकल 200/-

नृत्य

अभिनय दर्पण और गीतगोविन्द— नृत्य-शास्त्र एवं अष्टपदी 150/-
नृत्य भारती—प्रारम्भिक नृत्य शिक्षा 100/-
कथक नृत्य—प्रथम से अष्टम वर्ष तक नृत्य का पूरा कोर्स 400/-

'संगीत' मासिक पत्र

वार्षिक शुल्क (भारत के लिए)— जनवरी 2001 से वार्षिक मूल्य 230/-
(विदेशों के लिए)– US$ 10·50
आजीवन सदस्यता शुल्क (भारत) 2000/-
(विदेशों के लिए)– US$ 100/-
साधारण अंक (भारत के लिए) - 25/-
(विदेशों के लिए)— US$ 1/-

'संगीत' मासिक पत्र की महत्त्वपूर्ण फ़ाइलें
1982, 1984 से 1990 तथा 1994 से 2000 तक
उपलब्ध हैं—मूल्य, प्रति फ़ाइल रु० 300/-

ऑडियो कैसेट्स

क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग 1 (हिन्दी या अँग्रेज़ी में दो कैसेट्स का सैट मिनी बुक सहित) 100/-

आतखंडे व पळुस्कर के रंगीन चित्र

साइज़ 11"×18" (प्रति चित्र) 40/-
साइज़ 18"×22" (प्रति चित्र) 50/-

उपर्युक्त सभी सामग्री पर पैकिंग व डाक-व्यय आदि मूल्य के अलावा लगेगा।

प्रकाशक : संगीत कार्यालय, हाथरस–204 101 (उ० प्र०)
फ़ोन : (05722) 33701; 31111, 30123

संगीत कार्यालय के प्रकाशन

[मँहगाई के अनुसार समय-समय पर मूल्यों में वृद्धि होती रहती है ।]

■ कंठ-संगीत (Vocal Music)

बाल संगीत शिक्षा (3 भागों में) कक्षा 6,7 व 8 के लिए मूल्य क्रमशः 30/–, 40/– व 50/–

संगीत किशोर–कक्षा 9 व 10 के लिए 60/–

गांधर्व संगीत प्रवेशिका— 50/–

क्रमिक पुस्तक मालिका (भाग 1 से 6 तक, पाठ्यक्रमानुसार)–मूल्य क्रमशः 50/–, 250/–, 300/–, 350/–, 250/–, 300/–

Kramik Pustak, Part-I (English) 100/-

भातखंडे सरगम गीत संग्रह (स्वर मालिका) भातखंडे जी द्वारा संकलित 62 रागों में 123 सरगमें 85/–

क्रमिक तान आलाप—भाग-I 25/–, II 75/–, III 250/–, IV 250/–

राग विशारद, भाग-1–(एम.ए. तक) 300/–

राग विशारद, भाग-2–(एम.ए. तक) 300/–

अप्रकाशित राग (भाग-1)–73 बंदिशें 50/–

मधुर चीजें—111 मधुर राग-बंदिशें 70/–

सूर संगीत—सूरदास के स्वरबद्ध पद (प्रेस में)

वंदना संगीत—50 स्वरबद्ध प्रार्थनाएँ 60/–

ठुमरी गायकी—45 स्वरबद्ध ठुमरियाँ 70/–

मारवा ठाठ अंक—88 राग-रचनाएँ 200/–

अप्रचलित राग ताल अंक–शो०सा० 200/–

भक्ति संगीत अंक–102 स्वरबद्ध पद 200/–

मीरा संगीत— मीराबाई के 78 स्वरबद्ध पद 125/–

गज़ल अंक—स्वरलिपि-सहित ग़ज़लें 200/–

शमे-गज़ल—50 स्वरबद्ध ग़ज़लें 200/–

भजन-संध्या—45 स्वरबद्ध भजन 200/–

लोक संगीत अंक—लेख व स्वरलिपि 200/–

फ़िल्मी गज़ल अंक (भाग-1 व 2)— फ़िल्मों की स्वरबद्ध 35 ग़ज़लें प्रत्येक 200/–

फ़िल्मी शास्त्रीय गीत अंक—I फ़िल्मों के 52 स्वरबद्ध शास्त्रीय गीत 200/–

फ़िल्मी शास्त्रीय गीत अंक–II 50 स्वरबद्ध शास्त्रीय गीत 200/–

फ़िल्मी उल्लास गीत अंक— फ़िल्मों के 35 स्वरबद्ध उल्लास गीत 200/–

फ़िल्मी युगल गान अंक— फ़िल्मों के 35 स्वरबद्ध युगल-गीत 200/–

फ़िल्मी भजन अंक— फ़िल्मों के 35 स्वरबद्ध भक्ति-गीत 200/–

फ़िल्मी विविध गीत अंक (भाग 1–11)— फ़िल्मों के 35 स्वरबद्ध लोकप्रिय गीत प्रत्येक 200/–

फ़िल्मी विरह गीत अंक— फ़िल्मों के 35 स्वरबद्ध दर्द भरे गीत 200/–

फ़िल्मी राष्ट्रीय गीत अंक— फ़िल्मों के 50 स्वरबद्ध राष्ट्रीय गीत 200/–

सुनहरे फ़िल्मी गीत (भाग 1 व 2) फ़िल्मों के सदाबहार 50 स्वरबद्ध गीत प्रत्येक 200/–

संगीत 'विनय पत्रिका'–संत तुलसीदास के 70 स्वरबद्ध पद 200/–

आलाप तान अंक—विभिन्न रागों में आलाप व तानें 200/–

फ़िल्मी सहगान अंक—50 सस्वर गीत 200/–

20 टॉप्स फ़िल्म सोंग्स—20 सस्वर गीत 100/–

फ़िल्मी उत्सव गीत अंक–I 50 स्वरबद्ध उत्सव गीत 200/–

■ शास्त्र व इतिहास (Theory & History)

हाईस्कूल संगीत शास्त्र–पूरा कोर्स 60/–

संगीत शास्त्र – कक्षा 12 तक 60/–

भारतीय संगीत का इतिहास— 70/–

संगीत विशारद–एम.ए. तक का कोर्स 300/–

राग कोष—1438 रागों का विवरण 100/–

भातखंडे संगीत शास्त्र (भाग 3)– 300/–

संगीत-पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन— प्राचीन 10 संगीत ग्रन्थों का सार 100/–

संगीत निबंधावली— 26 निबंध 70/–

निबंध संगीत—76 शोधपूर्ण निबंध 300/–

संगीत चिंतामणि—आचार्य बृहस्पति के उच्चस्तरीय 31 विस्तृत शोध-निबंध 300/–

संगीत मकरंद: (नारद-कृत)—संस्कृत 70/–

राष्ट्रीय संगीत—लेख व स्वरलिपि 200/–

फ़िल्म संगीत इतिहास अंक 200/–

HINDI BOOKS ON INDIAN MUSIC

VOCAL MUSIC	Rs.
Baal Sangeet Shikshaa Vol. I 30/-, II 40/-.	III 50/-
Sangeet Kishore	60/-
Gandharv Sangeet Praveshika. Part I	50/-
Kramik Pustak Maalikaa Vol. I 50/-, II 250/- III 300/-, IV 350/-, V 250/-, VI 300/	
Bhatkhande Kramik Pustak Vol. I (In English)	100/-
Swar Maalikaa	85/-
Kramik Taan Aalaap, I 25/-, II 75/-, III 250/-, IV 250/-	
Raag Vishaarad (Part I and II Each)	300/-
Tukaanta Kosha	100/-
Madhur Cheezeen	70/-
Soor Sangeet	(Press)
Vandanaa Sangeet	60/-
Thumree Gaayakee	70/-
Maarwaa Thaat Ank	200/-
Aprachalit Raag Taal Ank	200/-
Bhakti Sangeet Ank	200/-
Meera Sangeet	125/-
Ghazal Ank	200/-
Shaame-Ghazal	200/-
Bhajan-Sandhya	200/-
Lok Sangeet Ank	200/-
Filmee Ghazal Ank (Part I and II) Each	200/-
Filmee Shaastreeya Geet Ank (I, II) each	200/
Filmee Ullaas Geet Ank	200/-
Filmee Yugal Gaan Ank	200/-
Filmee Bhajan Ank	200/-
Filmee Vividh Geet Ank Vol. I to XI each	200/
Filmee Virah Geet Ank	200/
Filmee Rashtriya Geet Ank	200/-
Sunahare Filmee Geet Ank (I, II) each	200/-
Sangeet Vinay Patrika	200/-
Aalaap Taan Ank	200/-
Filmee Sahgaan Ank	200/-
Filmee Utsav Geet Ank	200/-
20 Tops Film Songs	100/-

THEORY AND HISTORY	
High School Sangeet Shastra	60/-
Sangeet Shaastra	60/-
Bhaaratiya Sangeet-ka-Itihaas	70/-
Sangeet Vishaarad	300/-
Raag Kosh	100/-
Bhatkhande Sangeet-Shaastra, Part III	300/
Sangeet Paddhatiyon-Ka-Tulanaatmak Adhyayan	100/-
Sangeet Nibandhaavalee	70/-
Nibandh Sangeet	300/-
Sangeet Chintaamani	300/-
Sangeet Makarand	70/-
Rashtreeya Sangeet	200/-
Film Sangeet Itihas Ank	200/-
Mahilaa Sangeet Ank	200/-
Mohammad Rafee Ank	200/-
Sangeet : Soofee Inayat Khan	150/-
Sangeet Sansmaran Ank	200/-
'Sangeet' Rajat Jayantee Ank	200/-
Vishwa Sangeet Ank	200/-
Sangeet Pareekshaa Ank	200/-
Sangeet Shikshaa Ank	200/-
Sangeet Sansthaa Ank	200/-
Sangeet Shodh Ank	200/-
Sangeet Kathaa Ank	200/-
Sangeet Shodh Lekh Ank	200/-
Kaka Hathrasi Smriti Ank	200/-
Gurmati Sangeet Ank	200/-
Pop Music Ank	200/-
Aawaaz Sureelee Kaise Karen	125/
Paashchaatya Sangeet Shikshaa	125/-
A Guide to Indian Music (In English)	125/-
Braj-ke-Devaalayon mein Sangeet Parampara	80/-

INSTRUMENTAL MUSIC	
Vaadya Vaadan Ank	200/
Jalatarang Ank	200/-
Sangeet Taal Parichaya-I	40/-
Sangeet Taal Parichaya-II	50/-
Tabla Ank	200/-
Taal Ank	200/-
Taal Prakaash	150/-
Table Par Delhi aur Poorab	125/
Tabla Gayan Practical Note Book	50/-
Taal Tarang Ank	200/-
Taal Bodh	50/-
Kaayadaa Aur Peshkaar	50/-
Aprachalit Kaayde Aur Gaten	60/-
Mridang Ank	200/-
Sitaar Shikshaa	200/-
Sitaar Maalikaa	150/-
Belaa Vigyaan (Violin guide)	200/-
Benjo Master	70/-
Guitar Master	70/-
Music Master (Harmonium guide)	70/-
Baansuree Shikshaa	200/-

LITERATURE ON DANCE	
Abhinaya Darpan-Aur-Geet Govind	150/-
Nritya Bhaaratee	100/-
Kathak Nritya	400/-

JOURNAL ON MUSIC

'SANGEET' monthly magazine on Music & Dance. Yearly subscription for 2001 230/-

Foreign : US $ 10·50

US $ 30·00

Life Membership

Rs. 2000/- or US $ 100/-

■ AUDIO CASSETTES

Kramik Pustak, Vol. 1 (Basic Music-lessons with 30 compositions) Twin set Hindi/English with mini book 100/-

Foreign US $ 4·50

■ COLOUR PICTURES

Bhatkhande or Paluskar

Size 11"×15" each 40/-

Size 18"×22" each 50/-

[Prices are subject to increase from time to time.]

SANGEET KARYALAYA, HATHRAS-204 101 (India)

Phones : (05722) 33701, 31111, 30123

21809

21809
2/1/2002

भक्तनाट्यम्

SANGET KARYALAYA
HATHRAS 204101(U.P.)